प्राक्कथन

शिवनाथ शास्त्री के किसी लेख में एक बार पढ़ा था कि खेलने की जानकारी रहे तो कानी कौड़ी लेकर भी खेला जा सकता है। यानी कौड़ी के खेल में कौड़ी उपलक्ष्य है और असली चीज है खेल।

परन्तु साहित्य न तो कानी कौड़ी है और न खेलने की वस्तु ही। फिर भी यह बात मुझे इसलिए याद आयी कि बहुत दिन पहले—सम्भवतः सन् १९५८-५९ में दो मित्रों से उपन्यास-साहित्य पर चर्चा चल रही थी। जहाँ तक स्मरण है, मैंने उस दिन कहा था कि उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसे व्याकरण की बेड़ी से जकड़ा नहीं जा सकता है। उसके विस्तार एवं विकास को बँधी-बँधायी परिपाटी से सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। वह अपने-आपमें एक स्वाधीन और स्वतन्त्र सत्ता है। उपन्यास के सम्बन्ध में यद्यपि ऐसा मत किसी शास्त्र में लिपिबद्ध नहीं है, फिर भी उसके जन्म और विकास के इतिहास के पर्यवेक्षण के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। एक या दो नायक तथा एक या दो नायिकाएँ और फिर उनके मिलन और विरह में उलट-फेर को मद्देनजर रखकर करोड़ों उपन्यास लिखे गये हैं। कभी नायक के स्थान पर देश या इतिहास और कभी अतीत या वर्तमान को व्याख्यायित किया गया है। कभी-कभी उपन्यासकारों ने कला के साथ-साथ समाजशास्त्र के उद्देश्यों की पूर्ति करने की कोशिश की है।

मेरे मित्रों का कहना था कि उपन्यास-साहित्य की आयु ढल चुकी है और अब उसकी कार्य-क्षमता क्षीण हो गयी है। अतः अब उसे अवकाश ग्रहण कर लेना चाहिए। उनका मत था कि उन्हें सारे के सारे उपन्यास चर्चित-चर्वण प्रतीत होते हैं।

मैंने उस दिन कहा था कि खेलने की जानकारी रहे तो कानी कौड़ी लेकर भी खेला जा सकता है।

अपनी युक्ति की सार्थकता प्रमाणित करने के उद्देश्य से मैंने दो पुरुष और एक मानवेतर प्राणी पर केन्द्रित एक साधारण-सी कहानी का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए कहा था कि इस कानी कौड़ी को लेकर भी मैं उपन्यास लिखने की चेष्टा कर सकता हूँ।

मेरे मित्र मेरे विचारों से सहमत नहीं हुए थे और कहा था कि इस घटना को लेकर उपन्यास लिखा ही नहीं जा सकता ।

लेकिन यह साधारण-सी कहानी चौदह वर्षों तक मेरे भाव-जगत् को आन्दोलित करती रहेगी, इसकी मैंने कल्पना तक नहीं की थी । तब मेरी स्थिति यह थी कि सोते-जागते मैं इससे पिण्ड छुड़ा नहीं पा रहा था । अन्ततः १९६३ ईस्वी में एक पत्रिका के छह-सात अंकों में इस 'मैं' उपन्यास का प्रकाशन-क्रम चला और फिर एक दिन अचानक रुक गया । १९६५ ईस्वी में एक दूसरी पत्रिका में प्रकाशित होता रहा लेकिन वहाँ भी अधिक दिनों तक चलाना सम्भव न हुआ । अन्त में सन् १९६८ से १९७१ के सितम्बर मास तक एक तीसरी पत्रिका में ढाई वर्षों तक धारावाही प्रकाशन चलता रहा, पर फिर सहसा उसकी गति रुक गयी । बाकी बचे अंश को मैंने १९७२ ईस्वी के अगस्त महीने में समाप्त किया । इस अवधि में मेरे जीवन में इतनी विपत्तियाँ, इतने दुर्दिन और इतनी दुर्घटनाएँ आयीं, जिनका कोई अन्त नहीं । अनेकानेक स्थितियों में मेरे जैसा कर्म-विमुख व्यक्ति भी इस दुरूह संकल्प से क्यों नहीं विचलित हुआ, यह मेरे लिए भी घोर विस्मय की बात है । इस कृति का श्रेय किसे है, मुझे मालूम नहीं । एक बात और । जिन व्यक्तियों से चर्चा-परिचर्चा के फलस्वरूप 'मैं' का जन्म हुआ वे आज इस दुनिया में मौजूद नहीं हैं । रहते तो उनसे एक ही बात पूछता और वह यह कि कानी कौड़ी लेकर मैं खेलने में सफल हो सका हूँ या नहीं !

२८ अगस्त, १९७२ —विमल मित्र

अनुवादक की ओर से

महान् कलाकार देश और काल की सीमा लाँघकर सार्वदेशिक और सार्वकालिक होते हैं। बँगला के श्रेष्ठ उपन्यासकार विमल मित्र के सम्बन्ध में यह उक्ति अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है। वह बँगला के अतिरिक्त हिन्दी और तमिल के पाठकों के बीच समान रूप में लोकप्रिय हैं। उनकी लोकप्रियता उस कोटि की नहीं है जो साधारण स्तर के पाठकों को छूकर रह जाती है, बल्कि उस कोटि की है जो सामान्य और विशिष्ट दोनों वर्गों के पाठकों को अभिभूत कर लेती है। विमल मित्र की प्रतिभा बुद्धिजीवियों के हृदय को झिंझोड़कर उन्हें विस्मय की स्थिति में लाकर छोड़ देती है।

'मैं' विमल मित्र के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'आमि' का हिन्दी रूपान्तर है। यों विमल मित्र एक प्रयोगधर्मा उपन्यासकार हैं और उनके अन्वेषण की प्रक्रिया अब तक जारी है, लेकिन उनका यह 'मैं' उपन्यास समकालीन औपन्यासिक परम्परा से बिल्कुल भिन्न है—यह भिन्नता न केवल इसके कथ्य, शिल्प, संरचना और बुनावट तक ही सीमित है वरन् इसका कथानक भी परम्परित उपन्यासों से भिन्न है। उपन्यास की कथा केवल दो पुरुष और एक इतर प्राणी को केन्द्र मानकर चलती है, फिर भी इतने तंग दायरे में ही उन्होंने आज के मानव की विशेषकर भारतीय जनता की तमाम समस्याओं और जटिलताओं को विश्व-इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखा है और उनकी गहराई तक जाकर रेशे-रेशे को उधेड़कर छान-बीन की है तथा सत्य को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है।

आधुनिक जीवन के तमाम प्रश्नों—जैसे मनुष्य के अस्तित्व, अस्मिता, स्वतन्त्रता, मूल्य इत्यादि से उन्होंने साक्षात्कार किया है और उनकी विसंगतियों और विघटन को तटस्थता के साथ उकेरा है। 'मैं' में विमल मित्र के वैचारिक व्यक्तित्व के अनेक रूप हैं: उनका इतिहासवेत्ता, समाजशास्त्री, मानविकी-वेत्ता—रचना के स्तर पर उपन्यासकार विमल मित्र में समाहित हो जाते हैं।

वास्तव में 'मैं' बीसवीं शताब्दी के भारत की महागाथा है—एक कालजयी कृति। 'मैं' के दिगम्बर और नुट्ट भारतीय गाँवों के सर्वहारा वर्ग के प्रतीक हैं जिन्हें व्यवस्था पग-पग पर तोड़ती है और एक दयनीय स्थिति में लाकर छोड़ देती है। यों विमल मित्र को जीवित रखने के लिए 'साहब बीबी गुलाम',

'एकाई-दहाई-सैकड़ा', 'खरीदी कौड़ियों के मोल' जैसी कृतियाँ पर्याप्त हैं, फिर भी 'मैं' के अतिरिक्त उनकी समस्त कृतियों को नष्ट भी कर दिया जाये तो वह साहित्य-जगत् में अमर रहेंगे। एक सफल गोताखोर की तरह समय के अतल में प्रवेश कर उन्होंने बोध के मोती चुने हैं। 'मैं' एक समग्र काल-बोध है। और यह समग्र काल-बोध एक रचना ही नहीं है, बल्कि समस्त रचनाओं के लिए एक चुनौती भी है।

—योगेन्द्र चौधरी

एक

सुख के बारे में बहुतों ने बहुत कुछ सोचा है, बहुत माथापच्ची की है। सुख के पीछे-पीछे बहुत लोग भागते चले हैं। सुख की उम्मीद में गृहस्थी से नाता तोड़-कर वन चले गये हैं, इसका दृष्टान्त इतिहास मे मिलता है। लेकिन दुख? दुखी मनुष्य की बात कुछ और ही है। दुखियों में एक से दूसरे की कोई समानता नहीं होती है। दुनिया में सुख की मात्रा न कम होती है, न अधिक; इसीलिए सुखी आदमी पर नजर पड़ते ही वह पहचान में आ जाता है। लेकिन दुख उसके बनिस्बत कही गहरा, कही व्यापक होता है। दुख मनुष्य को स्वतन्त्र बनाता है, व्यक्तित्व प्रदान करता है। सुख का अन्त खोजने पर मिल भी सकता है लेकिन दुख अनन्त होता है। सुख की कामना करने पर वह प्राप्त भी होता है लेकिन दुख दुर्लभ होता है। सुख चाहने पर सुख न भी मिले, फिर भी लोग मन-प्राणों से सुख की ही कामना करते हैं। और, दुख बिन माँगे मिलता है, इसीलिए उसको अनादर की दृष्टि से देखा जाता है। लेकिन उसी अनादर की वस्तु को पूँजी के रूप में लगाकर कितने ही लोगों को पर्याप्त लाभांश मिला है और महाजन बन गये हैं। इतिहास में इसकी बेहिसाब मिसालें हैं।

आज मुझे गाली-गलौज करनेवाले लोगों की कमी नही है। प्रशंसा करने-वालो की तादाद भी बढ़ गयी है। रात-दिन केवल आदमी और आदमी से ही घिरा रहता हूँ। खाने के वक्त भी कोई एकान्त में चुपचाप खाने नही देता है। सामने आकर बैठ जाता है और कहता है, "यह आपका खान-पान कैसा है? इस तरह आपका स्वास्थ्य कैसे अच्छा रहेगा ज्योतिदा?"

कोई कहता है, "ज्योतिदा..."

और कोई कहता है, "ज्योतिर्मय बाबू..."

ज्योतिर्मय सेन खुद जानते हैं कि यह उनका बाहरी परिचय है। आँखों की ओट में कुछ और ही परिचय है, और ही विशेषणा। सब-के-सब विशेषण उन्हें अच्छे लगते हैं, बात ऐसी नही है। उससे उन्हें चोट भी पहुँचती है। यह शायद स्वाभाविक भी है। उन्होने अब्राहम लिंकन की जीवनी पढ़ी है। रूस के जार,

इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री आदि बहुत-से लोगों की जीवनियाँ उन्होंने पढ़ी हैं। उनमें से किसी ने दुख की कामना की थी ? या दुख मिलने पर वे क्या इनकी तरह स्वतन्त्र हो सके थे ? या कि टूट गये थे ? दुख ने उन लोगों को व्यक्तित्व की गरिमा दी थी ? हर व्यक्ति से उन्होंने अपनी तुलना की। अपने जीवन की घटनाओं से उन लोगों के जीवन की घटनाओं को तौला।

"ज्योतिदा···"

उनके चिन्तन में एकाएक बाधा पड़ी। बहुत दिनों के बाद ज्योतिर्मय सेन को इस तरह का आराम मिला है। वही मयनाडांगा है। नाम अब तक याद है—नटवर, नुटु। कौन जानता था कि इतने दिनों के बाद उन्हें फिर से मयनाडांगा आना पड़ेगा। सारी बातें कल रात से ही उनके मन में उमड़-घुमड़ रही हैं। उनके आने की बात की खबर इस जिले के लोगों को बहुत पहले ही मिल चुकी थी। यहाँ के जिला कांग्रेस कार्यालय, मण्डल कांग्रेस कार्यालय, एस. डी. ओ. सर्कल अफसर, पुलिस सुपर से लेकर ब्लाक अफसर, साधारण किरानी—यहाँ तक कि चौकीदार भी सतर्क हो गये हैं कि मन्त्रीजी आ रहे हैं। यह भी तो एक तरह का सम्मान ही है। हाँ, इसे राजसम्मान ही कहते हैं। पुराने जमाने में राजा-रजवाड़े प्रजा की गरदन उतरवा लेते थे। अब प्रजातन्त्र में गरदन उतरवाना बन्द हो गया है। लेकिन और ही तरह से गरदन उतरवायी जाती है। गरदन उतरवाना या उपाधि वितरण करना एक जैसी ही बात है। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि नाम में बदलाव आ गया है।

यह युवक हमेशा व्यस्त रहता है। स्थानीय कांग्रेस कार्यालय के प्रमुख व्यक्तियों में से एक है। खादी पहने हुए है। कल से ही मेरा बड़ा ही मान-सम्मान कर रहा है। कुछ ज्यादा ही। खुशामद करना चाहता है। या तो मुझसे कुछ उम्मीद करता है या सम्मान करने के उद्देश्य से ही मेरा सम्मान कर रहा है और सोच रहा है कि सामने आकर सेवा करेगा तो धन्य-धन्य हो जायेगा।

"रात में आपको कोई असुविधा तो नहीं हुई ? नींद आयी थी ? चाय पीने में कैसी लगी ?"

"अच्छी।"

"फिर और एक पाट बनाने को कहूँ···"

शंकर एक ही छलांग में बाहर चला गया। यानी वह मेरा सम्मान करेगा ही···

शंकर को पुकारकर रोक सकता था लेकिन मालूम नहीं क्यों, मैंने उसे रोका नहीं। फिर उन्हें खुशामद अच्छी लगती है ? कभी ऐसा जमाना था कि कोई अगर उनकी खुशामद करता था तो उन्हें अच्छा नहीं लगता था। अब

मन्त्री हो जाने से वह क्या खुशामद-पसन्द व्यक्ति हो गये हैं ? कहीं उन्होंने एक वाक्य पढ़ा था जो उन्हें अब तक याद है। आज वही वाक्य याद आ गया तो अच्छा लगा—The rich man despises those who flatter him too much, and hases thote who do not flatter him at all.[1]

उस युवक के हाव-भाव से स्पष्ट पता चलता है कि वह खुशामद कर रहा है। उसके बदन का रंग गोरा है। खाकी खादी का कुरता पहने हुए है। उम्र ज्यादा नहीं है। सम्भवत: छब्बीस साल से अधिक नहीं है।

"तुम्हारा घर कहाँ है शंकर ? इसी मयनाडाँगा में ?"

"नहीं ज्योतिदा; मैं बाघजोला में रहता हूँ। यहाँ से पच्चीस कोस की दूरी पर। लेकिन मुझे हर जगह घूमना-फिरना पड़ता है। उस बार बाढ़-पीड़ितों के लिए जो सहायता की जा रही थी मैं यहीं कुछ दिनों के लिए था। हम लोगों ने पानी में तैरकर सहायता का काम किया था।"

फिर एक क्षण के लिए वह रुका और कहा, "मैं खुद कलकत्ता गया था और आपके लिए चाय की पत्ती ले आया हूँ। बारह रुपये पाउण्ड की दर से…"

उन्होंने फिर से उस युवक के चेहरे को गौर से देखा, और देखकर पूछा, "सभा की कहाँ तक तैयारी हुई है ?"

"सब-कुछ तैयार है। अपने बताया था कि आप कुछ देर तक एकान्त में रहना चाहते हैं। इसीलिए कोई आपको तंग करने के लिए नहीं आ रहा है। सबको मना कर दिया है। आपकी देख-रेख करने के लिए केवल मैं ही यहाँ हूँ। कल रात भी मैं नीचे के कमरे में सोया था…"

अचानक ज्योतिर्मय सेन को कुछ याद आया और उन्होंने कहा, "मयना-डाँगा में दक्षिणपाड़ा नामक एक जगह है। तुम्हें मालूम है ?"

"दक्षिणपाड़ा ? दक्षिणपाड़ा के सभी आदमी आज आ रहे हैं। आपके यहाँ आकर सब-के-सब घुस जाते, लेकिन क्योंकि पुलिस दरवाजे पर है इसी वजह से…"

"पुलिस है क्या ?"

"पुलिस क्यों नहीं रहेगी ? पुलिस न रहती तो अब तक आप यहाँ नहीं टिक पाते।"

शंकर की बातें सुनने में बड़ी ही मजेदार लग रही थीं। "क्यों, टिक क्यों नहीं पाता ?" उन्होंने पूछा।

"वाह, जबकि आप आये हुए हैं तो कोई चुप रह सकता है भला ? वैसा

---

१. धनी आदमी उन्हें द्वेष दृष्टि से देखता है जो उसकी बहुत ज्यादा खुशामद करते हैं और जो उसकी खुशामद नहीं करते उन्हें घृणा की दृष्टि से।

नही होता तो अब तक आपके चरणों की धूल लेने के लिए लोगों में होड़ लग जाती।"

"चरणों की धूल !"

ज्योतिर्मय सेन ने आश्चर्यचकित होने का मान किया। अपने चरणों की धूल वह किसी को नहीं देते हैं, ऐसी बात नही है। लेकिन देने में उन्हें अच्छा नही लगता। इसके अतिरिक्त चरणों की धूल लेने में एक प्रकार का स्वामी और भृत्य का सम्बन्ध निहित है। सिवा ईश्वर के और किसी अन्य व्यक्ति के चरणों की धूल लेने से एक प्रकार की दरिद्रता प्रकट होती है। और उम्र बढ़ जाने के कारण पैरों की हालत ठीक नही है। एड़ियों के किनारे फट गये हे। थोड़ा-सा भी पसीना चलता है तो वहाँ धूल जम जाती है। दोनो पैर बड़े गन्दे दिखने लगते हैं। शर्म लगती है। उन लोगों को इस बात की जानकारी नहीं है और न इस बात को समझ ही पाते हैं। लोग सोचते हैं कि यह सब मैं निश्छलावश कर रहा हूँ। दरअसल पैर के चलते ज्योतिर्मय सेन के जीवन में इतनी बड़ी दुर्घटना घट चुकी है कि उसकी खबर इन लोगों मे से किसी को भी नही है। मालूम है तो सिर्फ नुटु—नटवर को। हो सकता है कि आज नटवर उन्हें पहचान ही नही सके। शायद नटवर तक किसी ने खबर ही नहीं पहुँचाई होगी कि उसका 'ज्योति' अब मन्त्री हो गया है और उसे हर तरह का सुख दे सकता है। पता नहीं, अब नटवर के पैरों की क्या हालत है। आश्चर्य की बात है कि विधाता को नटवर के पैरों पर ही सबसे अधिक आक्रोश था।

एक दिन उन्होने पूछा था, "नुटु, तुम्हें अपने पैरों के लिए तकलीफ महसूस नहीं होती ?"

"तकलीफ ? किस बात की तकलीफ ? लो, देखो···"

नटवर लँगड़े पैरों से ही ता-थैया नाच दिखाने लगा। नटवर के पैरों की दोनों एड़ियाँ टेढ़ी-मेढ़ी होकर अजीब ही शक्ल की हो गयी थी। लँगड़े पाँवों से चलते रहने के कारण तलवों का चमड़ा काफी खुरदरा हो गया था। उन्ही पाँवों से वह बैलगाड़ी हाँकता था, खेतों में काम करता था और बैकुण्ठ को अपने साथ लिये मैदानो का चक्कर काटा करता था।

आश्चर्य है कि उन्हें बैकुण्ठ की भी याद आयी।

"लो देखो, मैं लँगड़ा हूँ, मेरा बैकुण्ठ भी लँगड़ा है। हम दोनों माणिक-मुक्ता की जोड़ी हैं।"

बैकुण्ठ भी नुटु के साथ छलाँग लगाता था। इसी मयनाडाँगा के दक्षिणपाड़ा मे उन्हें एक झोपड़ी के अन्दर ही जैसे जीवन से साक्षात्कार हुआ था। जीवन का कोई अर्थ नही होता। शेक्सपियर से लेकर आज तक जितने कवि हुए हैं सभी ने इस बात को प्रमाणित करने की कोशिश की है। लेकिन यहीं इस

मयनाडाँगा में ही उनका जीवन से प्रथम साक्षात्कार हुआ था—बिल्कुल पहली बार। वही प्रथम साक्षात्कार था और अन्तिम भी। फिर कितना कुछ जीवन में घटित हो चुका है। इतिहास, भूगोल और मनुष्य मे कितना परिवर्तन आया। लेकिन आज मयनाडाँगा आने पर सिर्फ नटवर के पैरो की ही याद आ रही है। अंग्रेजी साहित्य मे पैरों पर बहुत अधिक नही लिखा गया है। लेकिन बँगला साहित्य में पाँवों के बारे में बहुत कुछ उल्लेख है। बँगला के कवि कवि नही हैं, पदकर्ता हैं। सम्पूर्ण पदावली साहित्य पद-वन्दना ही है। जयदेव ने लिखा है—पद पल्लव मुदारम्। 'चरण-कमल बन्दौ हरिराई'। चरण-कमल : रूपक कर्मधारय। कितना कष्ट सहकर मास्टर साहब व्याकरण पढाया करते थे।

क्या वह मात्र व्याकरण ही पढ़ाते थे ? हरिसाधन बाबू को पिताजी ने चुनकर पढ़ाने के लिए रखा था। काश हरिसाधन बाबू जिन्दा रहते। उनके भाग्य में यह देखना नही बदा था कि आज उनका छात्र क्या से क्या हो गया है।

मास्टर साहब बातचीत करते-करते सब-कुछ समझाया करते थे।

"देख, एक भूत था। उसका कोई दोस्त नही था···"

"भूत सचमुच हुआ करता है मास्टर साहब ?"

मास्टर साहब कहते थे, "धरती पर नही रह सकता है मगर कहानी की धरती पर तो है ही। सो वह भूत अकेला घूमता-फिरता रहता था और हमेशा यही सोचता था कि कब उसके नसीब में एक मित्र लिखा है। सोचते-सोचते दिन-पर-दिन, महीने-पर-महीने और साल-पर-साल गुजरने लगे। उसे कोई मित्र नही मिला। अन्त में उसे एक उपाय सूझा। शनिवार या मंगलवार को किसी आकस्मिक दुर्घटना से मरने से आदमी भूत हो जाता है, इस बात की उसे जानकारी थी। इसीलिए शनिवार और मगलवार को भूत बड़ी उम्मीद लगाये रहता था—हो न हो आज किसी को धक्का लगेगा और वह मर जायेगा। आज कोई आम तोड़ने के लिए पेड़ पर चढ़ेगा, डाल टूटेगी और वह मरकर भूत बनेगा। उसी को वह अपना मित्र बनायेगा। लेकिन उसका दुर्भाग्य कि कोई मरा नही। कलकत्ते में लोगों को ठोकर लगती थी, गिरते भी थे, लेकिन फिर से उठकर खड़े हो जाते थे। कोई भी भूत नही हो रहा था। अन्त में···"

"सर, भूत को अकेला रहना क्यों नही अच्छा लगता था ?"

"अकेला रहना किसी को भी नहीं अच्छा लगता है।" मास्टर साहब कहते थे।

"मैं तो सारा दिन अकेला ही रहा करता हूँ, सर !"

"तुम कोई भूत तो हो नही, तुम आदमी हो। और तुम अकेले रहते ही कहाँ हो ? तुम दिन-भर रघु से बातचीत कर सकते हो। उसके साथ खेल सकते हो। तुम्हारे लिए तुम्हारे बाबूजी ने खेल का मैदान बनवा दिया है, फुटबाल

खरीद दिया है, तुम्हारे पास किताबें हैं, लिखना-पढ़ना है, मैं हूँ···"

वह मोटे-ठिगने व्यक्ति थे। सुबह दो घण्टे और शाम दो घण्टे पढ़ाने आया करते थे। जब तक मास्टर साहब नही आ जाते थे, मुझे अच्छा नहीं लगता था। आज के लड़के उस बात की कल्पना हो नही कर सकते। सारा वक्त मुझे सूनापन महसूस होता था। इस कमरे से उस कमरे का चक्कर काटते-काटते कभी-कदा मुझे खो जाने की इच्छा होती थी। बाबूजी बड़े ही दबंग थे। उनका चेहरा सर आशुतोष मुखोपाध्याय की तरह गम्भीर दिखता था लेकिन उम्र उनसे कम थी। वह बहुत कुछ अंग्रेजी साहित्य के जी. के. चेस्टरटन की तरह लगते थे। जी. के. चेस्टरटन रसिक व्यक्ति था। बाबूजी भी रसिक थे लेकिन बाबूजी की जीभ बड़ी पतली थी। मन की समस्त अनुभूतियों को एक ही शब्द के माध्यम से व्यक्त कर बाकी बची रिक्तता को मौन से पाट देते थे। मौन ही जैसे पिताजी की आत्माभिव्यक्ति थी। बातचीत करना उनके लिए अवकाश का आमोद-प्रमोद था। बात तो हर कोई कर सकता है लेकिन चुप्पी ओढ़े रहना कितनों को मालूम है? पिताजी के लिए शब्द ही ब्रह्म था। वह उनका दुरुपयोग कर उन्हे कलंकित करने के पक्षधर नहीं थे।

याद है, नौकर-चाकर, नौकरानी, ड्राइवर सभी पिताजी के कारण सन्त्रस्त रहते थे। मैं घर-भर मे अकेला लड़का था। अतः मकान के अन्दर भी घूमते-घूमते थक जाता था। इच्छा होती थी कि मकान को जैसे एक ही मिनट में तय कर लूँ। पूरब के रोशनदान की फाँक से सवेरे कटी धूप की थिगलियाँ बिस्तर पर उतरती थी। फिर थोड़ी देर बाद बिछावन से सरककर घुटनों के बल दीवार पर चली जाती थी। धूप की वे थिगलियाँ बड़ी ही शरारती थीं। किसी भी हालत मे पकड़ में नही आती थी। हाथ से पकड़ना चाहता तो कूद-कर हाथ पर बैठ जाती थीं। फिर किसी भी हालत में पकड़ नही पाता था। अन्त में कब धूप के चकत्ते कमरे से भाग जाते, पता नही चलता था। कमरे से बरामदे पर और बरामदे से बगीचे मे। धूप कहाँ छिप जाती कि रात-भर उसका अता-पता ,नही चलता था। लगता कि धूप के चकत्ते भी मेरे पिता के जैसे हैं। बाबूजी को एक क्षण ही देख पाता था और देखते-न-देखते वह कही निकल जाते थे। बाबूजी को एक नहीं, अनेक काम थे। वह जिस कमरे मे काम किया करते थे वहाँ मैं नहीं जा सकता था। उस ओर जाने को होता तो रघ मुझे रोक देता था। "मुन्ना, उधर मत जाना, बाबू बिगड़ेंगे।"

वही बाबूजी एक दिन सीधे मेरे पढ़ने के कमरे में आये।

बाबूजी पर नजर पड़ते ही मास्टर साहब उठकर खड़े हो गये।

"मुन्ना की पढाई कैसी चल रही है?"

"जी, पढ़ने में बड़ा तेज है···"

बाबूजी की दृष्टि मेरी ओर मुड़ी। मैंने भी बाबूजी को देखा। बाबूजी को देखने का बहुत ही कम मौका मिलता था, इसलिए जब उन्हें देखता तो मैं उनकी ओर अपलक ताका करता था। उनका चेहरा खिचड़ी मूँछों से भरा हुआ था। माथे के नीचे और आँखों के ऊपर घनी भौंहें थीं। बाबूजी को देखने पर यह समझ में ही नहीं आता था कि उनके चेहरे पर स्नेह, प्यार या ममता—किसकी छाप है। कभी-कभी लगता कि बाबूजी बड़े ही अकलमन्द हैं। फिर लगता, बाबूजी बड़े ही बेवकूफ हैं। और फिर कभी-कभी लगता कि बाबूजी बड़े ही कड़े स्वभाव के हैं।

"ज्यादा जोर अंग्रेजी पर ही दीजिएगा, विदेशी भाषा है न!" फिर कहते, "अभी से आप इसके साथ अंग्रेजी में ही बातचीत किया करें···"

बस, इतना ही। फिर हो सकता है कि महीने-भर मुलाकात न हो। तब बाबूजी कहाँ रहते थे, कोई पता नहीं। रघु कहता था, "बाबू इलाहाबाद गये हुए हैं। कभी इलाहाबाद, कभी पटना और कभी बम्बई। वे शहर कहाँ हैं, मालूम नहीं था। मन-ही-मन उन शहरों की शक्ल की कल्पना किया करता था। वहाँ भी मेरे पिताजी की तरह और पिता हैं? मेरी तरह के लड़के हैं? वे क्या ऊँची दीवार से घिरे मकान में खेलते हैं?

शाम जब उतरती, कितने ही चमगादड़ मेरे सर के ऊपर से उड़-उड़कर दक्षिण की ओर चले जाते।

रघु कहता, "वे सब आँशफल खाने जा रहे हैं···"

"आँशफल कहाँ मिलता है जी?"

"टालीगंज में। टालीगंज के नवाब साहब का आँशफल का बगीचा है। चिड़ियाखाने से वहीं जा रहे हैं। सवेरे फिर लौट आयेंगे···"

चमगादड़ों के साथ जैसे मैं भी टालीगंज के नवाब साहब के बगीचे में द्रोण फल खाने के लिए पहुँच जाता। रात में जब मैं बिस्तर पर लेटा रहता, मुझे लगता कि मैंने एकाएक उड़ना सीख लिया है। अपने मकान की दीवार फाँदकर जैसे हवा में तैरता हुआ बहुत दूर जा रहा हूँ, बहुत ही दूर। न रघु है, न बाबूजी हैं और न मास्टर साहब ही कहीं हैं। अँधेरे आसमान की छाती को चीरकर मेरी पीठ की दोनों पाँखें आवाज कर रही हैं—हिस-हिस···उड़ते-उड़ते टालीगंज के नवाब साहब के बगीचे में खड़े आँशफल के पेड़ की फुनगी पर उतर गया हूँ। बीच-बीच में जुगनुओं की पाँत चमक रही है और चमगादड़ों की जमात मुझे घेरे हुए है। सारी रात मैं मजा लूट रहा हूँ। फिर सुबह होने के पहले ही फिर लौटकर दबे पाँवों बिछावन पर लेट गया हूँ। रघु को पता तक नहीं चला है। रघु सवेरे-सवेरे बिस्तर के पास आकर पुकारता था, "मुन्ना, उठो···"

बाबूजी ने रघु को कड़े-कड़े आदेश दे रखे थे। वे आदेश भी अजीब-अजीब थे। शुरू मे तलहथी में सरसों का तेल रखकर मुझे उँगली से दाँत माँजना पड़ेगा। फिर ब्रश से। उसके बाद नाश्ता। नाश्ते की सूची बँधी-बँधायी थी। आज अगर पूरी बनेगी तो कल पावरोटी, परसों टोस्ट, केला और दूध। जिन-जिन चीजों में विटामिन मिलता है, उन्हीं चीजों को चुन-चुनकर मेरे नाश्ते की सूची बनायी गयी थी। उससे तिल-मात्र इधर-उधर होना नहीं था। लेकिन नटवर! मोटे चावल का पानीदार बासी भात खाकर उसने कितनी शक्ति अर्जित की थी। नुटु अकेले अपनी बैलगाड़ी को छह मील हाँककर ले जाता था और फिर छह मील हाँककर ले आता था और वह भी काँसे की थाली-भर पानीदार बासी भात खाकर।

नुटु कहता था, "कभी कटहल के बीज की भुजिया के साथ पानीदार बासी भात खाया है?"

सिर्फ नुटु ही नहीं, वैकुण्ठ भी पानीदार बासी भात खाता था। खाते-खाते खासा मोटा-ताजा हो गया था। वैकुण्ठ का वैसा शरीर उन्होंने नहीं देखा था। नुटु से ही सुना था कि वैकुण्ठ पहले देखने में उससे भी अच्छा था। खाना न मिलने के कारण कमजोर हो गया था। वह नुटु के साथ ही मीलों पैदल जाता था और लौट आता था।

नुटु कहता था, "मैं भी पहले से बहुत दुबला गया हूँ। जानते हो…"

"क्यों? फिर तुम अण्डा क्यों नहीं खाते हो?"

"अण्डा?"

अण्डा शब्द सुनकर नुटु हैरान हो गया था।

"अण्डा मयनाडाँगा के बाबू लोग खाते हैं। हम लोग जब बत्तख पाला करते थे, बाबू लोगों के घर पर अण्डे बेच आते थे…"

अभी जिस मकान में ज्योतिर्मय सेन बैठे हैं, यही मकान बाबू लोगों का था। बाबू लोगों का अर्थ है मयनाडाँगा के जमींदार। पहले उन्होंने दूर से इस मकान को देखा था। इस घर के अन्दर घुसने की नुटु में हिम्मत नहीं थी। अब भी वह हिम्मत नहीं कर पायेगा। इनसे भी अगर मिलना चाहे तो पुलिस उसे यहाँ दरवाजे पर रोक देगी।

"कौन?"

अचानक ज्योतिर्मय सेन की चेतना वापस आ गयी। अब तक जैसे वह स्वयं को भूले हुए थे।

"क्या है जी?"

रतन हमेशा ज्योतिर्मय सेन के साथ ही रहता है। उनके साथ रतन बहुत सारी जगहों से घूम आया है। उसने कहा, "एक आदमी आपके लिए ताजा

रसगुल्ले ले आया है। लूँ या नहीं ?"

"वह आदमी कौन है ? क्या नाम है ? नुट्ठ ? नटवर ?"

बोलते-बोलते वह एक तरह की उत्तेजना से हाँफने लगे। "नटवर ने मिठाई की दुकान खोली है ? आखिर नटवर को पता लग ही गया ?"

"जी नहीं। रेल बाजार मे इस आदमी की दुकान है—नाम है विष्टुपद घोष।"

ज्योतिर्मय सेन फिर कुरसी पर उठँगकर बैठ गये। जरूरत नहीं है। वह आदमी निश्चय ही प्रमाण-पत्र की माँग करेगा। उसकी दुकान में बने रसगुल्ले उन्हें अच्छे लगे हैं—यह बात अपने पैड के कागज पर लिखकर और उसके नीचे हस्ताक्षर कर उसे देना पड़ेगा। उस कागज को वह फ्रेम में मढ़वाकर टाँग देगा, या अखबारों में विज्ञापन भेजेगा।

रतन चला गया। उन्होंने सोचा था कि यहाँ आकर सारा दिन आराम करेंगे। वह हो नहीं सका। मास्टर साहब ने छुटपन में प्लुटर्क की एक बात पढ़ाई थी—*Rest is the sweet sauce of labour.*[1] लेकिन अब तक उसी भूत की तरह उनका समय काटे नहीं कट रहा है। सचमुच वह हमेशा बेचैनी मे ही जी रहे हैं। बचपन मे उन्हें जिस तरह इच्छा होती थी कि घर से भाग जायें, उसी तरह अब भी भागने की इच्छा होती है। आज भी वह सचिवालय छोड़कर भाग आये हैं। राजा दशरथ के पुत्र राम की भी सम्भवतः यही हालत हुई थी। एक दिन अपने पिता के पास जाकर रामचन्द्र ने कहा, "पिताजी, मैं दुनिया छोड़कर चला जाऊँगा..."

"कहाँ जाओगे ?" राजा दशरथ ने पूछा।

रामचन्द्र ने कहा, "वन।"

"इतने सुख और ऐश्वर्य को त्यागकर वन क्यों जाओगे ? यहाँ तुम्हे किस चीज की कमी है ? कहो, तुम क्या चाहते हो ?"

"मैं वन जाकर भगवान की तपस्या करूँगा।"

राजपुत्र के मुँह से निकली यह एक आश्चर्यजनक बात थी। राजा दशरथ बड़ी ही विपत्ति में फँसे। जब कोई उपाय न सूझा तो रामचन्द्र को वशिष्ठ ऋषि के पास भेज दिया। "यदि वह तुम्हे वन जाने को कहे तो फिर वन जाना..."

यही हुआ। रामचन्द्र अपने गुरुदेव वशिष्ठ के पास पहुँचे। उन्होंने भी वही बात दोहरायी, "भगवान क्या केवल वन में ही रहते हैं ? संसार में नहीं ?"

रामचन्द्र को इसका उत्तर नहीं सूझा। उसी के फलस्वरूप रामायण मे इतने-इतने काण्ड हो गये।—ताड़का राक्षसी का वध, शिवधनुष-भंग, चौदह वर्षों

---

1. आराम परिश्रम के लिए जायकेदार चटनी की तरह है।

के लिए वनवास, सीता-हरण, रावण-संहार, सीता का उद्धार, सीता का पाताल-प्रवेश—कितने ही झंझट, कितने ही झमेलों के चक्कर में सारा जीवन काटना पड़ा। वन चले जाने से हो सकता था कि इन झंझटों का मुकाबला नहीं करना पड़ता। और आजकल तो पहले जैसा वन भी नहीं रहा। वन-महोत्सव का चाहे लाख उत्सव मनाया जाये लेकिन यहाँ वन का अस्तित्व रह ही नहीं सकता है। लोगों ने दण्डकारण्य में भी जाकर आक्रमण करना शुरू कर दिया है···

कि अकस्मात् ज्योतिर्मय सेन की नजरों के सामने जैसे भूत खड़ा हो गया।

"तुम ? तुम नुटु हो न ? नटवर ?"

यह कैसा चेहरा हो गया है। इतनी उम्र हो गयी। चेहरा दाढ़ी से भरा हुआ है। दाढ़ी बिल्कुल सफेद होकर पक गयी है। नुटु अगर बूढ़ा हो गया है तो वह भी बूढे हो चुके हैं। इतने दिनों तक इस बात को वह बिसराये हुए थे।

"तुम्हें कैसे पता चला नुटु कि मैं यहाँ आया हूँ ?"

फिर वह खड़े हुए और नुटु को गले से लगाकर अपने पास बिठाया।

नुटु बैठ नहीं रहा था। थोड़ी झिझक के साथ कहा, "आप मुझे पहचान गये मालिक, यही मेरे लिए सबसे खुशी की बात है।"

बात करते-करते नुटु की आँखों से टपटप कर आँसू चूने लगे। उसमें बात करने की सामर्थ्य नहीं रह गयी थी।

ज्योतिर्मय सेन हँस पड़े। "···अरे, तुम रो क्यों रहे हो नुटु ? तुम्हें क्या हुआ ? इतने दिनों पर मुलाकात हुई है, कहाँ दिल खोलकर दो बातें करोगे कि उसकी जगह तुमने रोना-धोना शुरू कर दिया।"

नुटु की आँखों से तब आँसू गिरने की रफ्तार में तेजी आ गयी थी।

परमहंस देव की बात याद आयी। यह कहानी उन्होने मास्टर साहब से सुनी थी। चैतन्यदेव दक्षिण भारत का भ्रमण कर रहे थे। एक स्थान में जाने पर देखा कि एक व्यक्ति संस्कृत-गीता का पाठ कर रहा है। और एक दूसरा व्यक्ति उसके सामने बैठकर अनवरत रोये जा रहा है। चैतन्यदेव को आश्चर्य हुआ। उन्होंने उस दूसरे व्यक्ति से पूछा, "क्यों जी, तुम क्यों रो रहे हो ? संस्कृत भाषा तुम्हारी समझ में आती है ?" उस व्यक्ति ने कहा, "अगर नहीं ही समझा जनाब, तो हर्ज ही क्या है ? यह है तो भगवान श्रीकृष्ण के बारे में···"

यह भी उसी तरह की बात हुई। नुटु जैसे लोगों ने ही इन्हें देवता बना डाला है। पंजर की हड्डियाँ बाहर निकल आयी हैं। कपड़ा तार-तार हो गया है। मन्त्री से मिलने के लिए आया है लेकिन एक भी बढ़िया कपड़ा इसके पास नहीं है। उफ् ! मैं इन लोगों के लिए कुछ भी नहीं कर सका।

उसके बाद नुटु ने एक काण्ड कर डाला। एकाएक उनके पैरों पर माथा टेककर प्रणाम किया। फिर दुबारा करने जा रहा था।

"छिः छिः, तुमने यह क्या किया ? क्या किया तुमने ?"

तत्काल उन्होंने नुटु को पकड़ा। "मैं वही ज्योति हूँ नुटु, तुम्हारा दोस्त।"

नुटु फिर भी मानने के लिए तैयार नहीं है। वह देवता के दर्शन करने के बाद लौट जाने को प्रस्तुत है। देवता के साथ कोई आदमी बातचीत नही करता है। देवता को केवल प्रणाम करना चाहिए, भक्ति करनी चाहिए। उससे अधिक उनसे किसी चीज की अपेक्षा नही करनी चाहिए।

"नहीं-नही," मैंने कहा, "तुम दो-चार बातें करो नुटु, दूसरों के लिए चाहे मैं कुछ भी रहूँ, तुम्हारे सामने मैं मनुष्य हूँ, तुम्हारा दोस्त हूँ। तुम्हे याद नहीं है कि तुम्हारी बैलगाड़ी पर मैं कितने दिनों तक चढ़ा हूँ, कितने दिनों तक तुम्हारे साथ कांसे की थाली में पानीदार बासी भात कटहल की भुजिया के साथ खाया है, कितने दिनों तक हम दोनों एक ही बिस्तर पर सोये है, कितने ही दिनों तक हारान तेली के कोल्हू पर बैठकर परिक्रमा की है ? तुम सब-कुछ भुला बैठे ? और तुम्हारा वह वैकुण्ठ ? वैकुण्ठ को तुम···"

कहते-कहते बातों का क्रम रुक गया। और बोलना उनसे न हो सका। यहाँ आने के पहले सोचा था कि बहुत-कुछ कहेंगे। यह भी इच्छा थी कि नुटु से मुलाकात करेंगे। लेकिन उससे इस तरह मुलाकात होगी, इसके बारे में नहीं सोचा था। पुलिस ने तुम्हें नहीं रोका ? तुमसे कुछ नही कहा ? तुम्हारे ये फटे कपड़े-लत्ते, खाली देह देखकर भी आने दिया ? जानते हो नुटु, उन लोगों ने मुझे देवता बना डाला है। मैं जिस-तिस से मिल नही सकता हूँ, जो-सो मुझसे मिल नहीं सकता है। मैंने इसकी चाह नही की थी। मैंने भाग जाना चाहा था। बचपन में जिस तरह एक दिन घर से भाग गया था, भागकर इसी मयनाडांगा में आया था, अब भी उसी तरह भाग जाना चाहता हूँ। बचपन में पिताजी ने मुझे सांकल बन्द करके बाँधकर रखना चाहा था, इन लोगों ने भी उसी तरह मुझे अटका रखा है। जीवन में मैंने क्या इसी की चाह की थी ! पृथ्वी के लाखों-करोड़ों मनुष्यों में मैं भी एक मनुष्य हूँ। लेकिन अभी मैं लाखों-करोड़ों मनुष्यों का पालनकर्ता हूँ। फिर भी तुम्हारे सामने स्वीकार करने में मुझे लज्जा नहीं हो रही है नुटु, मैं तुम लोगों का ही आदमी हूँ। मैंने साफ-सुथरे कपड़े पहने हैं और तुमने पुराने कपड़े। जानता हूँ, मेरी तरह के साफ-सुथरे कपड़े तुम पहन सको, इसकी जिम्मेदारी अब मुझ पर ही है। जानता हूँ, तुम्हें अगर खाना नहीं मिलता है तो मुझे भी खाने का अधिकार नहीं है। जानता हूँ, स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि दुनिया के किसी भी कोने में अगर कोई आदमी अन्न के अभाव में मरता है तो उसकी जिम्मेदारी सभी लोगों पर है। तुम्हारी यह गरीबी सिर्फ तुम्हारी ही गरीबी नहीं है नुटु, बल्कि इस धरती के समस्त मनुष्यो की गरीबी है। तुम्हारा अकेले का पाप सारी पृथ्वी का पाप

है। मुझे सब-कुछ मालूम है नुटु ! जिस तरह पुण्य का बँटवारा कर हम उसे भोगते है, उसी तरह पाप का भी बँटवारा कर हमें भोगना चाहिए। ईसा मसीह, मुहम्मद, बुद्धदेव, रामकृष्ण, विवेकानन्द, श्री अरविन्द सभी के सम्पूर्ण पुण्य के फल को हम लोग थोक रूप में भोग कर रहे हैं, लेकिन चंगेज खाँ, नादिरशाह या काला पहाड़—इनमें से किसी एक के पाप का हिस्सा हमने क्या स्वीकारा है ? हर किसी से सारी बातें बतायी नही जा सकती हैं। हर कोई समझ भी नही पाता है। लेकिन नुटु, तुम तो सबसे अलग हो। तुम तो मुझे पहचानते हो। चाहे तुम मुझे समझ सको या नहीं, लेकिन तुम्हीं से कहकर मैं मन का भार हल्का कर लूँगा। कल रात भी मैंने इस बात पर फिर से सोचा है। यों सोचता तो हर रोज ही हूँ। सुख की मात्रा न कम होती है, न अधिक। इसीलिए सुखी आदमी देखते ही पहचान में आ जाता है। तुमसे एक बात पूछूँ ? तुमने सुखी आदमी को कभी देखा है ? मेरी ही बात लो। मैं काफी वृद्ध हो चुका हूँ, बहुत कुछ देख चुका हूँ लेकिन मैंने सुखी आदमी नहीं देखा है। मैंने बहुत खोज-पड़ताल की है नुटु, इतिहास के पृष्ठों में जिनका-जिनका नाम है, उन लोगों के जीवन में भी खोजकर देखा है। जानते हो नुटु, एक बार कार्ल मार्क्स से पूछा गया था, "सुख क्या है ?" कार्ल मार्क्स ने इसका उत्तर एक शब्द में दिया था—"संघर्ष।" संग्राम। लड़ाई। हम लोग वही लड़ाई लड़ रहे हैं नुटु। तुम अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हो। अपने बेटे-बेटी, पोता-पोती, परिवार सभी के अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हो। मैं भी यही कर रहा हूँ। मेरे लिए मेरा सारा देश परिवार की तरह है। तुम भी संघर्ष में विजयी नहीं हो सके, मेरी भी वही हालत है। हम दोनों जीत नहीं सकेंगे। मुझे मालूम है कि मैं तुम्हे साफ-सुथरे कपड़े नही पहना सका हूँ, तुम्हें दो जून दो मुट्ठी चावल नही खिला सका हूँ। तुम्हे सुख-सुविधा कुछ भी नही दे सका हूँ। फिर भी मैं संघर्ष किये जा रहा हूँ। यही वजह है कि मैंने कहा था कि दुख बडा ही गहरा, बड़ा ही व्यापक होता है। हजारों तरह के पार्थिव सुख रहने के बावजूद मैं इसी दुख के तकाजे से मयनाडाँगा आया था। आज भी जो आया हूँ, वह भी उसी दुख के तकाजे से। इतने दिनों तक तुमसे जो मिला नहीं, वह भी इसी दुख के तकाजे से ही। सुख ने नही बल्कि दुख ही ने नुटु, जिसने हमें, तुम्हें और पृथ्वी के सभी मनुष्यो को एक से दूसरे को अलग करके रखा है। दुख ही ने हम लोगो में से हर किसी को स्वतन्त्र बनाया है। इसी दुख ने ईसा मसीह को काँटों का ताज पहनाया था, तथागत बुद्धदेव को यायावर बनाया था, चैतन्यदेव को निःसंगता दी थी। इसी दुख के कारण पृथ्वी पर महापुरुषो का अवतरण हुआ था। सभी आदमियों से जोड़कर रखने के बावजूद उन्हे सबसे अलग रखा था। दुख की पूँजी के कारण वे महाजन बनकर आज

भी जीवित है। दुख क्या इतना सुलभ है ? दुख को देखकर भयभीत होने से चल नहीं सकता है। दरग्रसल तुमसे मिलने के लिए ही यहाँ ग्राया हूँ नुटु। जब उन लोगों ने मीटिंग की बात चलायी तो सोचा था कि नहीं जाऊँगा। लेकिन तुरन्त तुम्हारी याद ग्रा गयी। तुम्हें देखने के लिए ग्राने का ग्रर्थ था—मैं ग्रपनी ग्रस्मिता को देख पाऊँगा। जो 'मैं' यहाँ सभापति की हैसियत से ग्राया है, दरग्रसल वह 'मैं' मैं नहीं हूँ। ग्रसली 'मैं' का मालिक ग्रब भी वैसा ही बालक बनकर इस मयनाडांगा में घूमना-फिरना चाहता है। वह तुम्हारी बैलगाड़ी हाँकते हुए सड़कों पर पुग्राल का बोझा लिये निरुद्देश्य होना चाहता है—ठीक उसी तरह जिस तरह वैकुण्ठ को लेकर हम निरुद्देश्य हो जाया करते थे। तुम ग्रब भी वैसे के वैसे ही हो। मै भी नुटु, वैसा का वैसा ही हूँ। हम लोगों का सिर्फ बाहर बदला है। ग्राग्रो, ग्रौर भी निकट खिसक ग्राग्रो नुटु। मेरे पास बैठो। तुम्हारे लिए डरने की कोई बात नहीं है। तुमसे कोई कुछ नहीं कहेगा, पुलिस तुम्हें भगायेगी, ग्राग्रो···तुमने स्वामी विवेकानन्द का नाम नहीं सुना है नुटु ? उनकी एक चिट्ठी मे बडी ही ग्रच्छी बात पढ़ने को मिली थी : राजा भर्तृहरि भारतवर्ष के एक बड़े सम्राट् थे, साथ-ही-साथ संन्यासी भी। उन्होंने कहा है—"कोई तुम्हें साधु कहेगा, कोई चण्डाल, कोई पागल कहेगा, कोई दानव। तुम बिना किसी ग्रोर ध्यान दिये ग्रपने पथ पर ग्रग्रसर होते जाग्रो—किसी से डरो मत···"

एकाएक शंकर ने बाहर के दरवाजे से झाँका। उसके निकट ग्रौर दो-चार ग्रादमी थे। फिर वह सोचने लगा कि ग्रन्दर जाये या नहीं। "रात में ज्योतिदा को सम्भवतः नींद नहीं ग्रायी थी। सो गये हैं।" उसने कहा।

साधारण शब्दों से ही तन्द्रा दूर हो गयी। ज्योतिर्मय सेन ने ग्रपने इर्द-गिर्द निगाह घुमायी। नहीं, कोई कहीं नहीं है। तो ग्रब तक वे क्या सपना देख रहे थे ? उसके बाद दरवाजे की ग्रोर से ग्रावाज ग्रायी तो पूछा, "कौन है ?"

दो

वह सचिवालय से भागकर यहाँ ग्राये हैं। लेकिन भागने से भी छुटकारा नहीं मिल रहा है। बहुत बार ऐसा होता है कि संसार को त्यागकर वन चले जाग्रो तो संसार वहीं जाकर उपस्थित हो जायेगा। संसार का त्याग करने से ही वह दूर नहीं चला जाता है। स्वयं को त्यागने का ग्रर्थ है ग्रहं को त्यागना। ग्रहं का ग्रर्थ है 'मैं'। ग्रौर मेरा 'मैं' ही मेरा सबसे बडा दुश्मन है। तब हाँ, जिस तरह सबसे बड़ा दुश्मन है उसी तरह सबसे बड़ा दोस्त भी।

ज्योतिर्मय सेन को एक कहानी याद आयी।

स्वामी विवेकानन्द ने यह कहानी कही थी। किसी देश की सीमा पर सेना की एक छावनी थी। छावनी के अन्दर सैनिक रहते थे और बाहर बारी-बारी से एक आदमी रात-दिन पहरा देता था। वे लोग दिन-पर-दिन, महीने-पर-महीना पहरा देते रहे। एक रात एक पहरेदार एकाएक चिल्ला उठा, "आओ, जल्दी आओ, एक तातार को पकड़ा है।"

सचमुच उस सैनिक ने दुश्मनों की सेना के एक तातार को किसी तरह पकड़ लिया था।

तब सभी छावनी में ताश खेलने में मग्न थे। खेल छोड़कर उठने की उन्हें इच्छा नहीं हुई। उन लोगों ने अन्दर से ही चिल्लाकर कहा, "पट्ठे को पकड़कर अन्दर ले आओ···"

वह सैनिक उस वक्त तातार को जी-जान से पकड़े हुए था। "यह पट्ठा आना नहीं चाहता है···" उसने कहा।

"फिर उसे छोड़कर तुम अकेले ही चले आओ···"

"वह मुझे नहीं छोड़ रहा है।"

आश्चर्य है, यही संसार है। आयेगा नहीं और छोड़ेगा भी नहीं। इसी से तो कहता हूँ कि मैं ही अपना सबसे बड़ा दुश्मन हूँ और मैं ही अपना सबसे बड़ा दोस्त। एक ही आधार पर दोनों टिके हैं। रामकृष्ण कहा करते थे, "अण्डे के अन्दर बच्चा जब तक बड़ा नहीं हो जाता है, चिड़िया उस पर चोंच से ठोकर नहीं मारती है। बरगद के पेड़ को काटने के वक्त जब सब-कुछ काटना खत्म हो जाता है तो अलग हटकर खड़ा होना पड़ता है। तब वह पेड़ चरमराकर स्वयं धराशायी हो जाता है। जब नहर खोदकर पानी लाने की जरूरत होती है और जब और थोड़ा खोदने के बाद ही नहर से नदी के मिलने की सम्भावना रहती है, नहर खोदनेवाले अलग हटकर खड़े हो जाते हैं। उस वक्त मिट्टी भीगकर अपने-आप ढह जाती है और नदी का पानी हरहराता हुआ नहर में चला आता है।" लेकिन अलग हटना कितनों को मालूम है?

शंकर ने कहा, "ज्योतिदा, आप यहाँ के ब्लाक डेवलपमेण्ट अफसर हैं—नित्यानन्द हाजरा। काँकुड़ी गाछी के भवानन्द हाजरा मण्डल कांग्रेस के प्रेसिडेण्ट थे। आप उन्हें पहचानते हैं?"

"नहीं, पहचान नहीं पा रहा हूँ।"

"वही जो फारवर्ड ब्लाक की ओर से चुनाव में खड़े हुए थे और चालीस हजार वोटों से जीते थे। अन्त में वह फिर कांग्रेस में शामिल हो गये थे।"

"अब तक वह जीवित हैं?"

शंकर ने कहा, "नहीं। उन्नीस सौ छप्पन में ही करोनारी में उनकी मृत्यु

हो गयी। आप उन्हीं के बड़े लड़के हैं। इतिहास में सैकेण्ड क्लास एम. ए. किया है और अभी रिसर्च के लिए थीसिस लिख रहे हैं···"

फिर एकाएक नित्यानन्द हाजरा की ओर देखकर पूछा, "आपका विषय क्या है ?" सचमुच संसार से अलग रहना चाहिए। सचिवालय से अलग हटकर रहना चाहिए। बहुत दिन पहले एक बार घर से भी अलग हटकर रहने की उन्हें इच्छा हुई थी। संसार का उतना वैभव, उतना सुख उन्हें अच्छा नहीं लगा था। सब-कुछ छोड़कर एक दिन निकल पड़े थे। रवीन्द्रनाथ की एक कविता है—'बाधाओं ने बाँध लिया है, बन्धन कटता तो दुख होता'। लेकिन उस दिन परिवार से नाता तोड़ने में उन्हे तकलीफ महसूस नहीं हुई थी। उस दिन दुनिया उन्हें पकड़कर नहीं रख सकी।

तब स्वदेशी आन्दोलन का युग था। बाबूजी बैरिस्ट्री के काम से इलाहाबाद या लखनऊ कहीं गये थे। घर में मैं अकेला था। मैं था, मेरा रघु था, मेरी धूप थी, मेरा सूर्य था, मेरा आकाश था और थे मेरे मास्टर साहब। सवेरे मास्टर साहब मुझे पढ़ाकर चले गये थे—व्याकरण कौमुदी, नेसफील्ड साहब का ग्रामर और भारत का इतिहास। तीसरे पहर और एक बार उनके आने की बात थी। अन्यान्य दिनों की तरह हरिसाधन बाबू तीसरे पहर आये। हम लोगों के मकान के फाटक पर दरवान बैठा रहता था। बैजू यद्यपि बन्दूक लेकर पहरा नहीं दिया करता था, फिर भी जो-जो आते-जाते थे, उन पर निगरानी रखा करता था। शाम के वक्त छोटे कमरे मे बैठकर लकड़ी के कोयले की आग जलाकर वह चौदह-पन्द्रह चपातियाँ बनाता था और पीतल के लोटे में अरहर की दाल। मैं जब शाम के वक्त बगीचे मे घूमने निकलता था, बैजू की अरहर की दाल की गन्ध मेरी नाक में तैरकर आती थी। बैजू मेरी तरह विटामिन नहीं खाता था। शाम को दाल-रोटी और दोपहर मे सत्तू। सत्तू और हरी मिर्च। इतना ही खाकर बैजू का स्वास्थ्य मुझसे अच्छा था। मुझमें कभी-कभी बैजू के सत्तू के प्रति लोभ जगता था, बैजू की दाल और रोटी खाने की इच्छा होती थी लेकिन लज्जा और भय के कारण माँग नहीं पाता था। जब रघु मेरे पास नहीं रहता था, मैं बैजू के निकट जाकर बैठ जाता था। मै पूछता, "तुम्हारा देस कहाँ है बैजू ?"

बैजू कहता, "दरमंगा।"

"दरमंगा कहाँ है जी ? कितनी दूर ? कैसे जाया जाता है ? ट्रेन से या स्टीमर से ?"

बैजू कहता, "बहुत दूर है मुन्ना बाबू।"

"कितनी दूर ?"

"बहुत-बहुत दूर," बैजू कहता, "जाने में एक दिन और एक रात लग

जाते हैं।"

मैं मन-ही-मन कल्पना कर लिया करता था। मन-ही-मन 'बहुत दूर' की दूरी का अन्दाज करने की कोशिश करता था। कलकत्ते से ट्रेन पकड़कर सारी रात ट्रेन मे ही बितानी पड़ेगी और फिर मोकामा जंक्शन। वहाँ स्टीमर से पार करना पड़ेगा। तब गंगा पर पुल नहीं बना था। स्टीमर से पार करके सिमरिया घाट में उतरना पड़ेगा। फिर छोटी लाइन की छोटी गाड़ी पकड़कर दरभंगा। मैं बैजू के देस की कहानी सुनता था। बैजू का देस बड़ा ही अच्छा है—बड़ा ही बढ़िया देस। दरभंगा में राजा और रानी दोनों हैं। राजा साहब की हवेली बहुत बड़ी है। वहाँ घी, चावल, दाल सस्ते हैं। जब मजे मे बैजू कमरे में बैठा-बैठा कहानी सुनाता रहता, एकाएक रघु आता और मुझे पकड़कर ले जाता था। "चलो, मास्टर साहब आ गये हैं, पढ़ना है···" वह कहता।

और तत्काल मेरा सपना चूर-चूर हो जाता था। फिर लिखाई-पढ़ाई की शुरुआत होती थी—लिखने-पढ़ने के विटामिन की। तद्धित प्रत्यय, कॉमन एरर और अकबर वाज ए नोब्ल एम्परर। बादशाह अकबर मुझ पर जजिया टैक्स लगाकर मुझे गुलाम बनाकर छोड़ता था।

उस दिन लेकिन मुझसे मास्टर साहब की मुलाकात न हुई। "कहाँ गया मुन्ना ? घर में नही है ?"

रघु का चेहरा उतरा हुआ था, बैजू की भी वही हालत थी। साहब को वे क्या जवाब देंगे। उन्हें मुझसे डर नहीं था, था तो केवल बाबूजी से। बाबूजी ही उन्हें तनख्वाह देते थे। बाबूजी के कारण ही उन्हें दो कौर नसीब होता था। कहा जा सकता है कि पूरी गृहस्थी के मालिक नौकर-चाकर ही थे। हम लोग—बाबूजी और मैं—उनके नौकर थे।

हरिसाधन बाबू बड़ी विपत्ति में फँसे। फिर मुन्ना कहाँ चला गया ? तब रघु का कलेजा भय से काँप रहा था। मैं जो दूध नही पीता था, जिस अण्डे को छोड़ देता था, रघु तथा दूसरे-दूसरे व्यक्ति उसका उपभोग करते थे। खा-खाकर वे खासे हट्टे-कट्टे हो गये थे। भय से उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

"शुकदेव के साथ गाड़ी से गया था, फिर वापस नही आया।"

"शुकदेव कहाँ है ?"

शुकदेव भी आया। शुकदेव ही बाबूजी का ड्राइवर था। वह भी आकर खड़ा हुआ। वह घर से गाड़ी लेकर बाहर निकला था। मैं उस गाड़ी में बैठ गया था। बाबूजी की गाड़ी बहुत बड़ी थी। बाबूजी घर पर नही थे, इसलिए वह गाड़ी लेकर कारखाने जा रहा था। मैंने जाकर कहा, "शुकदेव, मुझे ले चलोगे ?"

शुकदेव की जिम्मेदारी कम नहीं थी।

"मैं गाड़ी में चुपचाप बैठा रहूँगा, शुकदेव। कहीं बाहर नहीं निकलूँगा···" मैंने कहा।

सिर्फ आध घण्टे के लिए गाड़ी को बाहर ले जाना था, फिर लौट आने की बात थी। इस बीच कोई दुर्घटना होने की सम्भावना नहीं थी। इसलिए जब बहुत कहा, तो शुकदेव राजी हो गया।

"फिर ?"

शुकदेव ने कहा, "उसके बाद हुजूर, कारखाने के अन्दर जाकर मैं मिस्त्रियों से बातचीत करने लगा। लौटकर आया तो देखा कि मुन्ना नहीं है।"

"उसके बाद क्या हुआ ?"

मास्टर साहब जैसे आसमान से गिर पड़े हों, उनके माथे पर आसमान से बिजली गिरी हो। उस दिन के 'मैं' से विचार करना अन्याय होगा। फिर भी इतना तो कहूँगा ही कि घर से उस मेरे पलायन का आज का 'मैं' किस रूप में समर्थन करेगा, समझ में नहीं आता। उसके बीस साल बाद जब मुझे एक दिन फिर जेल जाना पड़ा था, तब वहाँ से सचमुच भागने की इच्छा नहीं हुई थी। आज भी सोचता हूँ कि इच्छा क्यों नहीं हुई ? हो सकता है कि तब मैं बड़ा हो गया था। और बड़ा हो जाने के कारण मुझमें हर तरह की समझ आ गयी थी। फिर क्या घर को ही मैं कैदखाना और कैदखाने को घर समझता था ? इस सन्दर्भ में दस वर्ष पहले भी एक दिन ज्योतिर्मय सेन ने सोचा था। किसी पुस्तक को पढ़ते समय एकाएक यह प्रश्न उनके मस्तिष्क में कौंध गया था। दरअसल उस वक्त सारा हिन्दुस्तान ही जेलखाना था। महात्मा गांधी ने तब यही काम किया था। हर व्यक्ति के दिमाग में यह बात बैठा दी थी—"जब तक वह ब्रिटिश सरकार के अधीन हैं तब तक हमारा घर घर नहीं है, कैदखाना भी हम लोगों के लिए कैदखाना नहीं है।" उस पुस्तक की इन पंक्तियों को उन्होंने नोटबुक में लिख लिया था। तब वह जो कुछ पढ़ते थे और उनमें जो अच्छी बात मिलती थी, अपनी नोटबुक में लिख लिया करते थे। "While there is a lower class I am in it; while there is a criminal element I am of it; while there is a soul in prison I am not free."[1] सचमुच जब तक पृथ्वी पर जेलखाने का अस्तित्व है, तब तक मनुष्य पराधीन है। हम लोगों में से कौन जेलखाने के अन्दर है, बात यह नहीं है, बल्कि जेलखाने का अस्तित्व पृथ्वी पर क्यों है, असली प्रश्न यही है। जेलखाना न रहे, ऐसी

---

१. जब तक कोई निचला तबका है तब तक मैं उसका अंग हूँ, जब तक कोई अपराधी तत्त्व है तो वह मैं हूँ और जब तक कोई कारावास में बन्दी है तो मैं भी स्वतन्त्र नहीं हूँ।

स्वाधीनता पृथ्वी में कभी आएगी ? कहीं आयी भी है ? वेलफेयर स्टेट ने मनुष्य की बहुत-कुछ उन्नति की है, लेकिन वह जेलखाने को बन्द कर सका है ? आश्चर्य है कि यही बातें क्यों सोच रहा हूँ ? लोगों को अब तक खाने-पीने और पहनने की सुविधा दे ही नहीं सका हूँ और सोच रहा हूँ जेलखाने को हटा देने की बात।

अच्छा, अगर यह मान लें कि सभी आदमी ईमानदार हो जाते हैं, जितने राजा-महाराजा और राष्ट्रपति हैं सब-के-सब ईमानदार हो जाते हैं, किसी को भी खाने-पहनने का कष्ट नहीं रह जाता है, युद्ध, लड़ाई सब-कुछ बन्द हो जाता है, कहीं चोरी-डकैती और खून-खराबा नहीं होता है तब फिर न तो राजा की जरूरत रह जायेगी और न मन्त्री या राष्ट्रपति की ही···

एकाएक शंकर ने कहा, "फिर ज्योतिदा यही बात पक्की रही न ?"

"हाँ···"

ब्लाक डेवलपमेण्ट अफसर नित्यानन्द हाजरा ने कहा, "फिर मैं सर, इसी फाइल के साथ राइटर्स बिल्डिंग में आपके दर्शन करूँगा। अच्छा, चलूँ, सर···"

वे जाने लगे। मैंने शंकर को पुकारा, "शंकर, सुनते जाओ।" वह आकर खड़ा हो गया और मेरे प्रश्न का इन्तजार करने लगा। मैंने पूछा, "अच्छा यह तो बताओ, यह मकान मयनाडांगा के बाबू लोगों का ही है न ?"

"हाँ, मकान खाली ही पड़ा रहता है, बाबू लोग आते नहीं हैं। जमींदारी चले जाने के बाद मुआवजे के रुपये से उन्होंने कलकत्ते में कब्जे का कारखाना खोला है। उससे बहुत ही लाभ हो रहा है··"

"कब्जे का कारखाना ?"

"हाँ, कब्जे का—लोहे के कब्जे का। सरकार ने विलायती कम्पनियों से कब्जे का आयात बन्द कर दिया है। अब हिन्दुस्तान में ही बाबू लोगों के कारखाने में तैयार किया जाता है। इधर बहुत ही लाभ हो रहा है। आप लोगों की दया से ही यह सब हुआ है।"

"हम लोगों की दया से कहने का क्या तात्पर्य है ?"

"आप यानी सरकार की दया से। सरकार अगर जमींदारी नहीं लेती तो बाबू लोग माथापच्ची करते ही क्यों ? जमींदारी के मुआवजे से क्या करेंगे, सोच नहीं पा रहे थे। अन्त में स्विट्जरलैण्ड से एक विशेषज्ञ को मोटी तनख्वाह पर बुलवाया। विशेषज्ञ ने आकर बहुत तरह की राय दी। बाबू लोगों ने सोचा था कि फ्लैटनुमा मकान कलकत्ते में बनवायेंगे और उनके किराये से आय होगी। लेकिन विशेषज्ञ ने कब्जे का व्यवसाय करने की राय दी। सारी स्कीम बताकर हानि-लाभ और आय का ब्योरा दिया। अब उसी व्यवसाय से मोटी आय हो रही है। सुना है, पिछले साल बाबुओं ने दो लाख तेतीस हजार रुपया

"आपने कहा था कि आप एक बार मयनाडांगा आये थे। इसी वजह से पूछा। यह मकान उन्ही के हिस्से में पड़ा है। आपके आने की बात थी इसीलिए हम लोगों ने उनसे घर की माँग की। उनका मकान खाली ही पड़ा था। आप आकर रहिएगा, यह सुनकर उन्होंने तीन हजार रुपये खर्च कर इस मकान की सफेदी और मरम्मत करायी है। यह विशाल हवेली बहुत दिनों से खाली पड़ी थी और इसे भोगने के लिए कोई नहीं था···"

वह एक क्षण के लिए रुका और फिर कहने लगा, "वही मन्मथ बाबू आज की मीटिंग में आ रहे हैं···"

"क्यों ?"

"क्योंकि आप आये हुए हैं। आप उनके घर में टिके हुए हैं, यह सुनकर भला मिलने नहीं आयेंगे ? आप यहाँ आकर इस मकान में रहेंगे, यही उनके लिए कृतार्थ होने की बात है।"

"किसी मतलब से आ रहे हैं ?"

शंकर ने कहा, "मतलब क्या रहेगा ? आपने उनके घर में चरण रखे हैं, इतना किसी के लिए भी धन्य होने की बात है। उन्होंने मुझसे कहा था कि आपसे उनका परिचय करा दूं···"

"अभी आयेंगे ?"

"नहीं-नहीं, मैंने मना कर दिया है। उन्होंने यह बात मुझसे कही थी। लेकिन मैंने उन्हें बताया कि ज्योतिदा की तबियत ठीक नहीं है, वह तनिक एकान्त में रहना चाहते हैं। वह किसी से नहीं मिलेंगे। जिन्हें मिलना है या परिचय प्राप्त करना है, मीटिंग में ही करें, उसके पहले नहीं···"

ज्योतिर्मय सेन अचम्भे में आकर शंकर की ओर ताकने लगे। दरअसल शंकर हो या मन्मथ बाबू हों—सब-के-सब एक जैसे ही हैं। दोनों व्यक्ति उनकी आँखों के सामने मिलकर जैसे एक हो गये। इस युवक को भी मौका मिलेगा तो वह एक दिन मन्मथ बाबू बन जायेगा। या उन्ही की कुरसी पर आकर बैठना चाहेगा। आज जिस तरह उनकी खुशामद कर रहा है, कल यदि उनकी जगह कोई और बैठेगा तो उसकी भी खुशामद इसी तरह करेगा। या कि इससे भी अधिक।

"मैं फिर चलूं ज्योतिदा, आपके खाने के इन्तजाम पर भी मुझे नजर रखनी पड़ती है न···"

···हालाँकि उस दिन नुटु के साथ इस मकान की ओर ताकने पर कितना डर लगा था। भयभीत वह नहीं बल्कि नुटु हुआ था।

नुटु ने कहा था, "अजी ए, उधर मत जाना, मँजले बाबू के पास बन्दूक है, गोली चला देंगे···"

"क्यों, गोली क्यों चलायेंगे ? हम लोगों ने उनका क्या बिगाड़ा है ?"

नुटु ने कहा था, "बाबू लोगों को हमारा मैला कुरता-धोती बरदाश्त नही होता है..."

नुटु बच्चा था। तब वह भी बच्चे ही थे। मैले कपड़े-लत्ते देखकर क्यो बन्दूक की गोली से मार डालेंगे, उसका कारण उन्हे खोजने पर भी नही मिला था। फिर भी नुटु की बात मानकर लौट आये थे। वैकुण्ठ साथ ही था, वह भी उन लोगों के साथ चला आया था और इसे भाग्य की विडम्बना ही कहा जायेगा कि वह आज उसी मकान में ठहरे हुए है और ठहरकर मकान-मालिक को कृतार्थ कर रहे हैं। उस मकान के मालिक मन्मथ बाबू उनसे मिलने के लिए शंकर के पास दरबार कर रहे हैं। यह बात नुटु क्या जानता है ? नुटु के कानो में इस घटना की भनक पहुँची है ?

तीन

नुटु की बात याद आते ही उन दिनों की घटनाएँ याद आने लगी।

उस दिन भी तीखी धूप पड़ रही थी। शुकदेव गाड़ी लेकर कारखाने में आया। फिर गाड़ी से उतरकर वह कारखाने के मिस्त्रियों से बातचीत करने अन्दर चला गया। अकस्मात् कही से हो-हल्ला और शोर-गुल की आवाज आयी। शोर-गुल और चीख-पुकार। सड़क पर ट्रामगाड़ी, घोड़ागाड़ी वगैरह रुक गयी। शुरू मे बात किसी की समझ मे नही आयी। ऐसी घटना इसके पहले कलकत्ते मे कभी नही घटी थी। ज्योतिर्मय सेन भी सड़क पर उस तरह अकेले इसके पहले नही निकले थे। कुछ सोचने के पहले ही लोगों का एक हजूम हाथ में लाठी-सोटा लिये कहाँ से निकल पड़ा और देखते-न-देखते उस दोपहर मे कलकत्ते में भयंकर काण्ड मच गया। सम्भवत: वह १९२६ ईस्वी के अप्रैल का महीना था। उसी वक्त हिन्दू-मुस्लिम दंगे की पहली नीव पड़ी। तीसरे पहर पुलिस ने गोली चलायी। फिर उसके कुछ दिन बाद ही जुलाई महीने मे दंगा-फसाद हुआ। उस दिन पाइकपाड़ा मे रथयात्रा का जुलूस निकला था और बड़ा बाजार में राजेश्वरी की शोभा यात्रा। मुहर्रम का भी जुलूस निकला हुआ था। उस दगे मे उस दिन मिलेट्री आयी और उसने गोली चलायी। वहीं तत्क्षण अट्ठाईस आदमी मारे गये—बीस हिन्दू और आठ मुसलमान। तब वह बच्चे थे। लेकिन बाद मे उन्हे पता चला कि उस दिन कलकत्ते की छाती पर जिस ताण्डव की शुरुआत हुई, उसकी परिणति आगे चलकर देश-विभाजन में हुई। उस दिन उनकी उम्र ऐसी नही थी कि सब-कुछ समझ सकें। शुकदेव वही रह

गया और उसकी गाड़ी भी। दूसरे-दूसरे लोगों के साथ भागते हुए वह कहाँ रुके, समझ नहीं सके। आज जहाँ वराहनगर है, उसी तरह की किसी जगह में उन्होंने आश्रय लिया। ठीक-ठीक याद नही है। छोटे-से एकमंजिले मकान में जाकर वह एक ही रात मे घर के लोगों से घुल-मिल गये। उस मकान में अनेक छोटे-छोटे बच्चे थे और थी उनकी माँ।

माँ ने पूछा, "तुम किसके लडके हो ?"

आश्चर्य है कि अजनवी मकान में जाकर भी उस दिन उन्हें डर नहीं लगा था। एक प्रकार की नयी अनुभूति की उपलब्धि से वह रोमांचित हो उठे थे। उन भाई-बहनों से हिल जाने के बाद उन्हें घर की याद नही आयी और न मास्टर साहब, शुकदेव, रघु या वैजू दरबान की। उन्हें किसी की भी याद नहीं आयी। तीसरे पहर उन्हें दो रसगुल्ले और एक गिलास दूध पीने की भी याद नही आयी। और यह भी नही याद आया कि मास्टर जब आकर पूछेंगे कि मुन्ना कहाँ है तो रघु क्या उत्तर देगा। उन्हें लगा था कि अच्छा ही हुआ, और कुछ दिनों तक दंगा चलता रहे तो और भी अच्छा रहे।

उन्हें याद है कि वड़े लडके का नाम था सुशील। सुशील घोष या सुशील चटर्जी—यह याद नही है। उसी लड़के ने उन्हें सबसे अधिक प्यार किया था। सुशील ने ही कहा था, "तुम यहाँ मेरे घर मे रहो भाई।"

उन लोगों के महल्ले में दंगा नही हुआ था लेकिन दंगे की खबर एक कान से दूसरे कान में पहुंचकर यहाँ तक आ चुकी थी। उन्ही लोगों ने बताया था कि सारे कलकत्ते मे हिन्दू और मुसलमानों में झगड़ा छिड़ गया है। कलकत्ते में जितने मकान-दुकान वगैरह है, सबमे आततायी लोग आग लगा रहे हैं।

याद है कि सुशील और उसके सभी भाई-बहन एक ही थाल में खाने के लिए बैठे थे। सभी के लिए भात एक ही थाल में रखकर माँ हरेक के मुंह में भात का कौर रख रही थी। यह एक आश्चर्यजनक दृश्य था। टीन की चाल के रसोईघर की चौखट पर बैठकर सुशील की माँ के हाथ से भात खाने की याद उन्हें आज तक है। आज का कलकत्ता उस दिन का कलकत्ता नही है और शायद वराहनगर भी वैसा नही है। न आज विपिन पाल, तुलसी गोस्वामी, जे. एन. वसु, पद्मराज जैन, हीरेन्द्रनाथ दत्त, सरदार हरिसिंह हैं और न मोतीलाल नेहरू, अबुल कलाम आजाद वगैरह ही। सिर्फ कलकत्ता ही क्यों, सारे हिन्दुस्तान के तब वे ही नेता थे। आज लार्ड लीटन भी नहीं रहे। तुलसी गोस्वामी उन दिनो कितना गरम भाषण देते थे। आज भारतवासी उन लोगो के नाम तक का उच्चारण नही करते हैं। किसी दिन उनका भी नाम मिट जायेगा। अब ज्योतिर्मय सेन की उम्र ढल चुकी है। किसी दिन उम्र और ज्यादा ढलेगी। अभी जो छोटे हैं, जो शंकर के समवयस्क हैं, वे ही मण्डल कांग्रेस

का संचालन कर रहे हैं। किसी दिन वे ही जिला कांग्रेस की बागडोर सँभालेंगे और उसके बाद हो सकता है कि पश्चिमी बंगाल कांग्रेस के सूत्र का ये ही संचालन करें। यह जितना कर्मठ युवक है, अभी से जो उनकी इतनी सेवा कर रहा है, हो सकता है कि सबका सूत्रधार यही बन बैठे। दुनिया इसी तरह आगे बढ़ती जाती है और आदमी पीछे छूटता जाता है।

उसी दिन रात के वक्त एक घटना घटी।

वह खा-पीकर सुशील से गपशप कर रहे थे। वह बता रहा था कि बराहनगर का उसका यह मकान छोटा है लेकिन मयनाडांगा में उन लोगों के मामा का जो मकान है, वह बहुत ही बड़ा है। वहाँ बहुत बड़ा बगीचा है। मयनाडांगा के तालाब में बड़ी-बड़ी मछलियाँ हैं। सुशील और उसके भाई-बहन उन मछलियों को पकड़ते हैं और खाते हैं।

"तुम खुद मछली पकड़ सकते हो?"

सुशील ने कहा, "हाँ।"

"कैसे पकड़ते हो?

"बंसी से।"

नन्हा बालक ज्योतिर्मय सेन कहानी सुनकर हतप्रभ हो गया था। वह उसी का समवयस्क है फिर भी उसे मालूम नहीं है कि किस तरह मछली पकड़ी जाती है और किस तरह तालाब के पानी में तैरा जाता है, किस तरह पतंग उड़ायी जाती है और किस तरह साइकिल चलायी जाती है। शुकदेव उसे मोटर की स्टीयरिंग ह्वील तक छूने नहीं देता है।

"तुम मयनाडांगा चलोगे—मेरे मामा के घर?"

"हाँ चलूँगा, मुझे ले चलोगे?"

सुशील ने कहा था, "हाँ, ले चलूँगा···"

"मयनाडांगा कैसे जाना पड़ता है?"

"ट्रेन जाती है। तुम्हें ट्रेन पर चढ़ाकर ले चलूँगा। देखोगे कि फुटबाल खेलने के लिए एक विशाल मैदान है। हम लोग वहीं फुटबाल खेला करते हैं। मैं सेण्टर फारवर्ड में ऐसा खेल खेलूँगा कि तुम दाँतों तले उँगली दबाने लगोगे···"

न केवल मछली पकड़ने या फुटबाल खेलने की ही बात सुशील ने सुनायी, बल्कि ऐसा लगा जैसे वह कहानी का भण्डार हो। उसके मुँह से कहानी सुनते-सुनते उन्हें लगा कि वह मयनाडांगा पहुँच गये हैं। "मामाजी के पास एक मोर है। वह मोर पंखों को पसारकर नाचता है। और जब आसमान में काली घटाएँ उमड़ने-घुमड़ने लगती हैं, हम लोग मछली पकड़ने जाते हैं। दक्षिण महल्ले में तब आँधी भी आयी हुई थी। मामाजी का बगीचा उधर ही पड़ता है। तब झमाझम बारिश हो रही थी। हम लोगों को कोई सुध नहीं थी। हम बेंत की

टोकरी लेकर ग्राम चुन रहे थे। क्या बताऊँ, कितने मीठे ग्राम हैं! लेकिन एक पेड़ में बड़े ही खट्टे ग्राम फलते हैं। मेरे मामाजी ने उसका नाम रखा है—'कौम्रा भगानेवाला'। ग्रौर कटहल के पेड़? कटहल के पेड़ भी हैं। कोई-कोई कटहल यहाँ से तुम्हारे माथे की जितनी दूरी है, उतना ही बड़ा होता है। पेड़ की जड़ खोदनी पड़ती है वरना मिट्टी से सट जायेगा।"

दुख की दुनिया में जो थोड़ी शान्ति ग्रौर सुख की ग्राशा देता है, मित्र तो उसी को कहते है। जिसने मनुष्य-समाज से पहले-पहल कहा था कि तुम ग्रमृत की सन्तान हो, वही मनुष्य का मित्र बनकर ग्राज भी इतिहास में जीवित है। मनुष्य जाति के उसी कोटि के मित्र युग-युगों से मनुष्य को ग्रभयदान देते ग्राये हैं ग्रौर ग्रमृतवाणी सुनाते ग्राये हैं। न्यू टेस्टामेण्ट में लिखा हुग्रा है—"In my father's house there are many mansions."[१] मण्टोगोमरी की एक कविता है—'Beyond this vale of tears there is a life above."[२] सुशील गरीब था तो रहे, चाहे उसके पास टीन की ही चाल थी, एक ही थाल में सब कोई मिलकर खाना खाते थे, ग्रौर एक ही तख्त पर सट-सटकर सोते थे लेकिन उसी सुशील ने ही तो उसे मयनाडाँगा का नाम बताया था। वह यही मयनाडाँगा है जिसमें बाबू लोगों के मकान में वह ग्राज पहली बार ग्राकर ठहरे हुए हैं।

उस दिन तीसरे पहर तक सिर्फ दंगे ग्रौर दंगे की ही खबरें ग्राती रहीं—कहाँ किन लोगों ने कालीबाड़ी जला डाली, कहाँ किन लोगों ने मस्जिद को ढाहकर मलबे में बदल डाला ग्रौर कहाँ पुलिस ने कितने राउण्ड गोलियाँ चलायी। जब रात गहरा गयी तब सुशील के पिताजी दफ्तर से घर ग्राये। घर लौटने पर एक ग्रजनबी को देखकर वह स्तम्भित हो गये।

"यह कौन है? किसका लड़का है?"

सुशील के पिताजी उस दिन उन्हे तनिक भी ग्रच्छे नही लगे। कितना मोटा-सोटा बदन था। सुशील से बिल्कुल विपरीत।

"तुम्हारा घर कहाँ है? तुम्हारे बाबूजी का क्या नाम है?"

नाम सुनते ही सुशील के बाबूजी चौंक पड़े।

"ग्ररे! यहाँ कैसे ग्राये! ग्रब क्या होगा? तुम्हें कल ही तुम्हारे घर पर भेजने का इन्तजाम करना पड़ेगा। मैं तो बड़ी ही मुसीबत में फँस गया।"

सुशील ने कहा, "नही बाबूजी, उसको ग्रपने साथ लेकर मैं मयनाडाँगा जाऊँगा वहाँ जाकर मछली पकड़ूँगा···"

सुशील के बाबूजी गुस्से में ग्रा गये।

---

१. मेरे पिता के निवास-स्थान में बहुत से महल हैं।
२. ग्राँसुग्रों की इस घाटी के पार शिखर पर एक जीवन है।

"मालूम है, यह किनका लड़का है ? कितने बड़े आदमी का बेटा है ?" पिता का परिचय ही पुत्र का परिचय हो, ऐसा दुर्भाग्य शायद दूसरा और कुछ नही हो सकता है। चाहे वंश हो, चाहे पोशाक या चाहे स्त्री—किसी के जोर पर गौरव करना ही सबसे बड़ा अपमान होता है। इसीलिए कहा गया है कि बिना अहम् का त्याग किये देश की सेवा करना भी दिखावट ही है। उसे एक घटना की याद हो आयी। परमहंस देव विजयकृष्ण गोस्वामी के पास गये हुए थे। विजयकृष्ण ने कहा, "आप कुछ उपदेश दीजिए।"

"उपदेश।"

यह कहकर परमहंस देव ने चारों ओर दृष्टि फेरी और कहा, "मैं क्या उपदेश दूं ? अधिक काटने के कारण मैं जल चुका हूँ ?"

"इसका अर्थ क्या हुआ ?"

"नक्शा खेल से परिचित हो ? यह ताश का एक तरह का खेल है। जो सौ से अधिक संख्या लाता है वह जल जाता है। जो सौ की संख्या से कम में रहता है, जो पाँच की या सात की संख्या में रहता है वह चतुर कहलाता है। मैंने अधिक काटा है, इसलिए जल गया हूँ..."

उसी रात यह वाकया हुआ। तब रात समाप्त नही हुई थी। मैं बिस्तर पर से आहिस्ता से उठा। बाहर हल्की चांदनी फैली हुई थी। उस धुँधलके में ही मैं चलने लगा। तब न रघु था न बंजू, न शुकदेव और न मास्टर साहब ही। तब मुझे पकड़कर रखनेवाला कोई व्यक्ति नही था। तब मैं अधिक काटकर जल चुका था। एकबारगी सौ की संख्या काट चुका था। फिर मुझे उस वक्त किस चीज का डर रह सकता था !

दूर से तैरती हुई हल्की आवाज आ रही थी, "अल्लाह हो अकबर..."

उससे भी दूर से हल्की आवाज आ रही थी, "वन्दे मातरम्..."

चार

बचपन में मेरे लिए एक दाई रखी गयी थी। माँ के मरने के बाद एक तरह से उसने ही मेरा लालन-पालन किया था। मैं उसे 'दाई-अम्मा' कहा करता था। अन्तिम समय मे वह अन्धी हो गयी थी। काम-काज नही कर पाती थी। जीवन के अन्तिम समय में हमारे घर में उसने रहना नहीं चाहा। देश चले जाने के बावजूद वह बीच-बीच मे आया करती थी—या तो गंगा-स्नान के लिए या कालीबाड़ी मे देवी-देवताओं के दर्शन के लिए। आने पर वह हमारे ही घर में ठहरती थी। आते ही वह मुझे गोद में भर लेना चाहती थी। वह शायद

सोचती थी कि मैं दो महीने का ही नन्हा-मुन्ना हूँ। मैं लाख कहता कि मैं बड़ा हो गया हूँ, तुम्हारी गोद में नही बैठूंगा, लेकिन वह मानने को तैयार नही होती थी। "आ, मेरी गोद मे पहले की तरह बैठ जा···" वह कहा करती थी।

मेरी उम्र जितनी बढ़ती गयी उस बुढ़िया के प्रति मेरे मन मे उतनी ही घृणा उपजती गयी। मुझे याद ही नहीं था कि मैं जब बहुत छोटा था वह दाई-अम्मा मेरे कारण गन्दगी छूने में नहीं हिचकिचाती थी। मैं इतना जरूर समझता था कि मेरी बात सुनकर दाई-अम्मा को बहुत चोट पहुँची है।

दरअसल मैं शायद स्वार्थी हूँ। मेरे साथ ही भवनाथ कांग्रेस का काम करता था। मेरी अपेक्षा वह अधिक बार जेल से हो आया था। बड़ा ही सात्विक व्यक्ति था। अन्त मे वह कुछ भी नही हो सका। ज्योतिर्मय सेन ने अपने जीवन में ऐसा सात्विक व्यक्ति कम ही देखा है। किसी को वह भूखा देखता तो जेब में जो भी रहता, दे डालता था। उसी भवनाथ ने एक व्यक्ति के हाथ मेरे नाम से चिट्ठी भेजी थी कि मैं उसे कोई नौकरी दे दूँ।

उस व्यक्ति से मैंने पूछा, "भवनाथ का क्या हाल-चाल है ?"

उससे जो कुछ सुनने को मिला मैं अवाक् रह गया। उसकी पत्नी पागल हो गयी है। एक लड़का हुआ था, उसके दोनों पैर पंगु हैं। लँगड़ा। फिर भी चिट्ठी में उन बातो के सम्बन्ध में कुछ भी नही लिखा था। सहायता के लिए उसने मुझसे कभी मुलाकात तक न की। मैंने स्वयं कोशिश की और सरकार की ओर से महीने मे अस्सी रुपये पेन्शन की व्यवस्था करा दी। उस रुपये को उसने स्वीकार नही किया। रुपया वापस चला आया था।

मुझे बीच-बीच मे दुख होता है और वह दुख होता है भवनाथ के लिए। मैं जब तक मन्त्री बना रहूँगा तब तक भवनाथ रुपया लेना मंजूर नहीं करेगा। रुपया लेने में भवनाथ को कष्ट होता है।

दाई-अम्मा मेरे व्यवहार को देखकर कहा करती थी, "अरे मुन्ना, तू मुझे बिल्कुल भुला बैठा।"

भवनाथ अगर मुझे भूल जाता तो बड़ा अच्छा होता। कम-से-कम उसकी पत्नी और बच्चे को दो कौर नसीब तो होता। लेकिन नियति के प्रति आक्रोश प्रकट कर भवनाथ आत्महन्ता बन गया है।

सन् १९४७ की बात है। महात्मा गांधी तब पार्कसर्कस में सुहरावर्दी के मकान मे ठहरे हुए थे। उन दिनों चारों ओर दंगा छिड़ा हुआ था। हिन्दू की नजर मुसलमान पर पड़ती थी तो कत्ल कर देता था और मुसलमान की नजर हिन्दू पर पड़ती थी तो वह उसकी जान ले लेता था। इस तरह की स्थिति थी। सभी मिलने के लिए आये, यहाँ तक कि डॉक्टर प्रफुल्ल घोष, राजगोपालाचारी, दिनेश मेटा और श्यामाप्रसाद मुखर्जी तक आये। न आये तो केवल शरत् बोस

श्रौर वह इसलिए कि महात्मा गांधी ने उन्हें बुलावा नहीं भेजा था। लेकिन जब उन्होंने सुना कि महात्मा गांधी श्रामरण अनशन कर रहे हैं तो वह दौड़े-दौड़े आये।

शरत् बोस को देखकर गांधीजी मुस्कराये और बोले, "So it needed a fast on my part to bring you to me!"[1]

इसका भी शायद कोई प्रतिकार नहीं है। अपनी दाई-अम्मा और भवनाथ के पास जाकर अगर खड़ा होऊँ तो वे भी मुझे गलत ही समझेंगे। डाब कितनी ऊँचाई पर पेड़ की फुनगी पर रहता है। उसे धूप सहनी पड़ती है फिर भी वह ठण्डा होता है। डाब के पानी से शरीर शीतल होता है। और सिंघाड़ा? पानी के अन्दर फलता है फिर भी गरम होता है।

नुटु और उसके घर के लोग पानीदार बासी भात शरीर को ठण्डा रखने के लिए खाते थे। उस पानीदार बासी भात के साथ कभी-कभी नमक भी नहीं जुटता था। भोर होते ही बैलगाड़ी लेकर पुआल लाने को निकल पड़ता था। दस मील पुआल की ढुलायी की मजदूरी चार आने मिलती थी। चार आने क्या कम थे? कौन हाथ बढ़ाकर चार आने देता है?

उस दिन रेल बाजार की सड़क पर जाते-जाते नुटु एकाएक गाड़ी पर ठिठककर खड़ा हो गया। उसकी गाड़ी खाली थी और उसके पीछे-पीछे बैंकुण्ठ चल रहा था। बैकुण्ठ के गले में घुंघरू बंधे हुए थे। सहसा उसकी निगाह बूढ़ा शिव के इर्द-गिर्द बरगद के पेड़ के नीचे की ओर पड़ी और उसने कहा, "कौन है? वहाँ कौन है?"

बड़ी ही तीखी धूप थी। कई दिनों से तीखी धूप पड़ रही थी। मयनाडांगा में बारिश होने का कोई आसार ही नहीं था। भोर मे ही नटवर जैसे पसीने से नहा आया था। नटवर के शरीर से लगातार पसीना छूट रहा था, बैकुण्ठ भी पसीने से तर-बतर हो गया था।

नुटु ने दुबारा चिल्लाकर पूछा, "कौन है वहाँ? तुम कौन हो?"

मैं सम्भवतः नींद में खो गया था। भोर के वक्त ही ट्रेन से चला था। भोर यानी रात के अन्तिम पहर में। सुशील ने बताया था कि मयनाडांगा ट्रेन से जाना पड़ता है। तब चारों ओर अँधेरा रेंग रहा था। स्टेशन के प्लेटफार्म पर कुली, मजदूर और पैसेंजर पास-पास सोये थे। किसी टिकट-कलक्टर का कहीं अता-पता नहीं था। ट्रेन भी नहीं थी, इसीलिए रेल के कर्मचारी भी नहीं थे। इसके पहले मैं ट्रेन पर कभी चढ़ा नहीं था। टिकट कटाने के लिए हाथ मे पैसा नहीं था। यह भी नहीं मालूम था कि टिकट में कितना पैसा लगता है। गाड़ी

---

१. आखिर तुम्हें अपने निकट लाने के लिए मुझे अनशन करना पड़ा!

खाली थी, प्लेटफार्म की भी वैसी ही हालत थी। कलकत्ते में दंगा-फसाद मचा हुआ था, इसलिए पैसेंजर आते ही क्यों ? ज्यों ही ट्रेन हिस-हिस आवाज करती हुई आयी, मैं डिब्बे के अन्दर जाकर बैठ गया। डर-सा लग रहा था। खाली गाडी से बाहर की ओर देखने लगा—धुंधली सुबह का आलम था और मीठी हवा चल रही थी।

"कौन हो, तुम कौन हो जी ?"

मैं हड़बडाकर उठ बैठा। आँखों को मलकर गौर से देखा। एक विशाल झाड़-झंखाड़नुमा वृक्ष था जिसमें डाल और पत्ते भरे थे। उखड़े पलस्तर का चबूतरा था और वहाँ पत्थर का एक गोल टुकड़ा रखा था। उसी का नाम बूढ़ा शिव था। दरअसल वह बूढ़ा शिव ही नुटु वगैरह का भगवान था। भगवान या डॉक्टर या दवा—सब-कुछ वही था। नुटु जब बीमार पड़ता तो उसकी माँ इसी शिव के सीमेण्ट से मढ़े चबूतरे में आकर मनौतियाँ मानती थी। बेलपत्र, फूल और दो पैसे के गुड़ के बतासे चढ़ाने से ही सारी बीमारियाँ दूर हो जाती थी— चाहे वह हैजा हो या मलेरिया।

"यहाँ आकर क्यों सोये हो ? तुम किसके लड़के हो ?"

बैकुण्ठ मेरे शरीर के बिल्कुल करीब झुककर मेरे चेहरे को गौर से देख रहा था। उसके बदन पर घुंघराले रोयें थे। आँखें गोल-गोल। कही सीग से मार न दे।

"वह कुछ नही करेगा, सिर्फ तुम्हें देख रहा है।"

ट्रेन से जब उतरा तो यह तय नही कर पाया कि कहाँ जाऊँ और क्या करूँ। स्टेशन के प्लेटफार्म के पत्थर पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—मयनाडांगा। मयनाडांगा नाम पर नजर पड़ते ही नीचे उतर पड़ा था। तब काफी धूप छितर गयी थी।

"सुशील के मामा के घर जाना है।"

"सुशील कौन है ?"

प्लेटफार्म के टिकट-कलक्टर ने शायद कलकत्ते के दगे के बारे में सुना था। जो दो-चार व्यक्ति ट्रेन से उतरे उनसे टिकट की माँग नहीं की। हर आदमी सुबह के अखबार पढ़ने में व्यस्त थे। मैं बाहर आकर खड़ा हुआ। सामने धूप से तपता हुआ खाली मैदान था। सुबह से ही तीखी धूप पड़ रही थी। जो आदमी ट्रेन से नीचे उतरे वे एक-एक कर अपने-अपने रास्ते चल दिये। स्टेशन के अन्दर स्टेशन-मास्टर टरे-टक्का आवाज कर रहा था।

नुटु ने कहा, "चलो, मेरे घर चलो···"

मैंने कहा, "मुझे सुशील के मामा के घर पर ले चलो।"

"वहाँ जाकर क्या करोगे ? वह किस महल्ले मे रहते हैं ?"

मुझे यह बात मालूम नहीं थी। केवल इतना ही मालूम था कि सुशील के मामा के घर मे तालाब है और उस तालाब में मछलियाँ हैं। मछलियाँ वसी से पकड़ी जाती हैं। और एक मोर भी है। जब आकाश में काली-काली घटाएँ घुमड़ने लगती हैं तो मोर अपने पंखों को पसारकर नाचता है।

नुटु ने तब अपनी गाड़ी हाँक दी थी। बैलगाड़ी खाली थी। सिर्फ हम दोनों ही गाड़ी पर बैठे हुए थे, पीछे-पीछे बैकुण्ठ आ रहा था। बैकुण्ठ हमेशा पैदल ही चला करता था। हम जहाँ-जहाँ जाते थे, वह भी हमारे पीछे-पीछे जाता था। जब नुटु गाड़ी को खूब तेजी से चलाने लगता, बैकुण्ठ भी गाड़ी के पीछे-पीछे दौड़ने लगता था।

एक ही दिन में, कहा जा सकता है कि एक ही रात के अन्दर मैं बिल्कुल बदल गया। नुटु मेरा हमउम्र था। लेकिन वह मुझसे अधिक हट्टा-कट्टा था। उसका बदन खाली रहता था। वह केवल एक कपड़ा पहने, फेंटा कसे हुए रहता था। हम लोगों का रघु जिस तरह फेंटा कसकर कपड़ा पहनता था ठीक वैसे ही। लेकिन रघु और नुटु में जमीन-आसमान का अन्तर था। नुटु ने मेरी कमीज और पैण्ट की ओर एक बार देखा।

"तुम लोग शायद बड़े आदमी हो ? हमारे मयनाडांगा के बाबू लोगों की तरह ही बड़े आदमी !"

"क्यों ?"

"इतना उजला धुला कुरता पहने हो।"

उसके बाद उसने कहा, "वह देखो, बाबू लोगों का मकान है···"

एक ही क्षण में उस दिन नुटु ने मुझे अन्तरंगता के सूत्र में बाँध लिया था। हर किसी को अन्तरंग बना लेना नही आता है। अन्तरंगता में किसी तरह के असत्य का अस्तित्व नही रहता है। और यदि रहता है तो कोई अन्तरंग हो ही नही सकता। गांधीजी ने दिल्ली में एक बार यही बात कही थी। तब ज्योतिर्मय सेन भी दिल्ली में ही थे। गाधीजी बिड़ला-हाउस मे रहा करते थे और मन-ही-मन कष्ट का अनुभव किया करते थे, शरणार्थियों ने उस भवन के बाहरी हिस्से को दखल कर लिया था। एक दिन पुलिस उन्हें वहाँ से हटाने के लिए आयी। गांधीजी को जब खबर मिली तो वह पुलिस के पास गये और कहा, "इन लोगों को क्यों भगा रहे हो ? इनके बदले मुझे ही भगा दो। मैं भी तो यहाँ आकर ठहरा हूँ। मैं भी तो शरणार्थी ही हूँ···"

पुलिस ने बताया, "यहाँ गवर्नमेण्ट स्टाफ रहेगा, उन लोगों के लिए क्वार्टर की जरूरत है···"

गाधीजी ने कहा, "Why cannot the Ministers put their spacious boungalows at the disposal of the State, reserving for

themselves just enough space for their needs."[1]

ग्रौर उस दिन ज्योतिर्मय सेन को लगा था कि गांधीजी सभी के साथ ग्रन्तरंगता के सूत्र में बँध गये हैं। उसके बाद ही शरणार्थियों की समझ में यह बात ग्रायी कि गांधीजी उनके ग्रात्मीय हैं। जिनके लिए कोई नहीं है, उनके लिए गांधीजी हैं। गांधीजी की देखा-देखी मन्त्रियों की लड़कियों ग्रौर बहुग्रों ने भी समाज-सेवा का काम करना शुरू किया। वे प्रातःकाल नाश्ता करके रेशमी साड़ी पहनती थीं, होंठों पर लिपस्टिक ग्रौर गालों में रूज लगाती थीं ग्रौर रिफ्यूजी कालोनी में शरणार्थियों की सेवा करने ग्राती थीं। उनके हाथ में वैनिटी बैग रहता था, कलाई में घड़ी। गांधीजी ने देखा तो एक युवती को बुलाकर बड़ा ही डाँटा, "तुम लोगों को सिल्क की साड़ी पहनकर यहाँ ग्राने में शर्म नहीं लगती ?" वह युवती शर्म से गड़ गयी।

ज्योतिर्मय सेन को लगा था कि गांधीजी न केवल उस युवती को डाँट रहे हैं, बल्कि ग्रपने-ग्रापकी भर्त्सना कर रहे हैं।

गांधीजी ने कहा था, "भरपेट ब्रेकफास्ट खाकर यहाँ दरिद्रनारायण की सेवा करने ग्रायी हो ?

"After doing full justice to your over-loaded breakfast tables in your spacious bungalows you alight from posh cars dangling your stylish vanity bags, while those you are supposed to serve cannot even afford the luxury of a bath for lack of a change of clothes. Social service these days has become a means for getting on in this world. Many people have consequently taken to this profitable hobby."[2]

शायद यही कारण है कि ग्राजकल सभी समाज-सेवक होना चाहते हैं। हाँ, हर कोई, यह शंकर भी। शंकर ने मेरी देखा-देखी खादी-कपड़े पहने हैं, मुझे बारह रुपये पौण्ड की चाय पिलायी है ग्रौर मेरी खोज-खबर रख रहा है। लेकिन ग्रकेले शंकर को ही क्यों दोष दिया जाये ? जो व्यक्ति थोड़ी देर पहले रेल बाजार से मेरे लिए रसगुल्ले लेकर ग्राया था, उसका ग्रसली नाम चाहे जो हो,

---

१. मन्त्री ग्रपने लिए जरूरत-भर जगह सुरक्षित रखकर ग्रपने विशाल बँगलों के बाकी हिस्सों को राज्य के हाथों क्यों नहीं सुपुर्द कर देते हैं।

२. ग्रपने विशाल बँगले पर भरपूर नाश्ता कर तुम ग्रपनी फैशनदार कार से शानदार वैनिटी बैग झुलाती हुई उतरती हो ग्रौर जिनकी सेवा की तुमसे उम्मीद की जाती है वे ग्राराम से नहा तक नहीं पाते हैं, क्योंकि उनके पास बदलने के लिए कपड़े नहीं हैं। ग्राजकल समाज-सेवा दुनिया में प्रसिद्धि पाने का एक जरिया हो गया है। फलस्वरूप बहुतों ने इस लाभदायक हॉबी को ग्रपना लिया है।

मगर दरअसल वह भी शंकर ही है। बहुत दिन पहले, सम्भवतः १९४८ ईस्वी में गांधीजी के मुँह से सुनी बातें आज बाबू लोगों में घर में उन्हें याद आ गयीं। *उन दिनों आन्ध्र प्रदेश से उन्हें एक पत्र मिला था। आन्ध्र प्रदेश के ही एक नेता* ने पत्र लिखा था—"Several of the M. L. A.s and M. L. C.s are following the policy 'make hay while the sun shines,' making money by the use of influence even to the extent of obstructing the administration of justice in the criminal courts."[1]

पत्र मिलने पर गांधीजी ने कहा था, "Our moral standards are going down at such a rate that I can now see why our *Satyagraha fights in the past lacked the real content* and were reduced to mere passive resistance of the weak."[2]

"रतन!"

रतन बाहर खड़ा था। अन्दर आया।

"शंकर बाबू को बुला लाओ।"

शंकर दौड़ा-दौड़ा कमरे के अन्दर आया।

"मुझे बुला भेजा है ज्योतिदा! *चाय पीजिएगा?*"

"नहीं, चाय नहीं पीनी है। इस मकान के फाटक पर पुलिस अभी तक पहरा दे रही है?"

शंकर की आँखों में विस्मय उमड़ आया।

"क्या कह रहे हैं आप! पुलिस पहरा नहीं दे रही है? आपने अपनी आँखों से देखा? पुलिस सुपर ने थाने को स्पेशल आर्डर दिया है। सिर्फ पुलिस ही क्यों, गुप्तचर भी हैं···*किसी तरह की त्रुटि नहीं रखी गयी है*···"

"नहीं, मेरे कहने का यह मतलब नहीं है। पुलिस को जाने को कह दो, पहरे की जरूरत नहीं है।"

"क्यों सर?"

"अब उसकी जरूरत नहीं है। पुलिस के पहरे से अब मैं अपने जीवन की रक्षा नहीं करना चाहता हूँ···"

"मगर ज्योतिदा, आपको मालूम नहीं है कि मयनाडांगा के लोग कितने

---

१. बहुत से एम. एल. ए. और एम. एल. सी. बहती गंगा में हाथ धोने की नीति अपनाये हुए हैं। वे अपने प्रभाव का प्रयोग पैसा बनाने में कर रहे हैं—यहाँ तक कि फौजदारी अदालतों की न्यायिक कार्यवाही में भी अड़चन डाला करते हैं।

२. हमारी नैतिकता का मानदण्ड इतनी तेजी से गिर रहा है कि अब मेरी समझ में यह बात आ रही है कि हम लोगों का सत्याग्रह पिछले दिनों असन्तोषप्रद क्यों रहा और वह क्षीण होकर मात्र कमजोरों का निष्क्रिय अवरोध-मात्र क्यों रह गया।

पाजी हैं। सब-के-सब नीच हैं। मैं बाघजोला में रहता हूँ तो इससे क्या हुआ, इस जिले के बारे में मैं राई-रत्ती जानता हूँ। ये लोग बड़े ही शैतान हैं..."

"शैतान हैं तो मेरा क्या बिगाड़ेंगे? मैंने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है, फिर मेरी हानि क्यों करेंगे? उन्हें जाने को कहो।"

शंकर फिर भी खड़ा ही रहा।

"जाओ।" मैंने कहा।

शंकर अब वहाँ से चला गया। शंकर मानो पुलिस की मदद से मुझे टिकाये रखेगा। जिस दिन जनता मेरे खिलाफ बिगड़कर खड़ी हो जायेगी उस दिन मेरी राइटर्स बिल्डिंग, मेरी सरकार और लाल बाजार की पुलिस-वाहिनी क्या मेरी जान बचा पायेंगी?

ज्योतिर्मय सेन को एक बात की याद हो आयी। किसी द्वीप में एक कब्रिस्तान था। बड़ी ही एकान्त जगह थी वह। देखने-सुननेवाला वहाँ एक भी आदमी न था। उस कब्रिस्तान के फाटक के सामने महज एक छोटी-सी पंक्ति लिखी हुई थी—'Here is the Cross of Golgotha, the Home of the Homeless.'[1] पृथ्वी पर जितने प्रतिभाशाली व्यक्ति जन्म ले चुके हैं और जितने लेंगे सभी के सन्दर्भ में यह पंक्ति प्रयोजनीय है। श्रेणीबद्ध समाज में जो प्रतिभाशाली आश्रयहीन हैं, उनके लिए गोलगोथा का क्रास ही एकमात्र आश्रयस्थल है। रूसो को फ्रांस ने आश्रय नहीं दिया था, कार्ल मार्क्स को भी जर्मनी ने आश्रय नहीं दिया। कितने ही प्रतिभाशालियों को हिन्दुस्तान से बाहर जाकर आश्रय लेना पड़ा है। आज उन सबों को गोलगोथा के क्रास के तले आश्रय मिला है।

छोटी-सी बैलगाड़ी थी। धुरी में तेल नहीं डाला गया था। इसलिए करेंर-करेंर-कर आवाज करती हुई जा रही थी। सामने नुटु बैठकर गाड़ी हाँक रहा था और गपशप कर रहा था। तब धूप के तीखेपन का सर पर अहसास नहीं हो रहा था और न भूख ही मालूम हो रही थी। बदन पर वही कमीज और पैण्ट थे। मैं पसीने से नहा गया था। बड़ा ही अच्छा लग रहा था। कहाँ एक नयी जगह और वहाँ का एक अजनबी बालक अकारण मेरा मित्र बन बैठा। छुटपन में दोस्त मिलना बड़ा ही आसान होता है। तुम्हारा घर कहाँ है, तुम क्या करते हो, तुम्हारे पिताजी का क्या नाम है, तुम अमीर हो या गरीब, तुम्हें कितनी तनख्वाह मिलती है—इन सारी बातों की तफसील देने की कोई जरूरत नहीं पड़ती है। मुलाकात होते ही घनिष्ठता और घनिष्ठता होते ही दोस्ती हो जाती है।

---

१. यहाँ गोलगोथा का क्रास है, यह गृहहीनों का आश्रयस्थल है।

नुट्टु को भी शायद अच्छा लग रहा था। उसने पूछा, "तुम डाव सँभालोगे या गाड़ी ?"

मैं सोचने लगा कि किसे सँभालूं। नुट्टु ने एकाएक कहा, "तुम डाव सँभालो भाई, तब तुमसे मेरा लगाव होगा और गाड़ी सँभालोगे तो मुँह हांडी हो जायेगा।"

कुछ देर तक चुप रहने के बाद उसने फिर कहा, "सुशील के मामा के घर जाकर क्या करोगे ? इससे तो बेहतर है कि घर पर चलो।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"दक्षिणपाड़ा में।"

मेरे लिए जैसा उत्तरपाड़ा था वैसा ही दक्षिणपाड़ा। मै अवाक् होकर उसके मुँह की ओर ताकने लगा। नुट्टु ने मेरे चेहरे पर दृष्टि रोपकर कहा, "मैं भी तुम्हें मछली पकड़ने की कला सिखा सकता हूँ, मैं भी तुम्हें फुटबाल खेलना सिखा सकता हूँ।"

"और मोर ?"

"मोर बाबू लोगों के घर में है। जिस दिन मोर छत पर आता है, उस दिन हमें दिखायी पड़ता है। तुम्हें भी दिखा दूंगा।"

यह मकान उन्ही बाबू लोगों का है। कभी इस मकान में मोर था, काकातुआ था, कुत्ते थे। आज वह मकान खाली पड़ा है। लाखों रुपया खर्च करके इन्हीं बाबुओं ने सम्भवतः कलकत्ते में फिर से नया मकान बनवाया है। हो सकता है कि उस मकान में बाबू लोग गाड़ी, रेडियो, रेडियोग्राम, रेफ्रिजेरेटर रखे हुए हों। अमरीका, जर्मनी और इंग्लैण्ड में जो-जो चीजें तैयार होती है, सब रखे हुए हों। नहीं रखे होगे तो केवल मोर, काकातुआ और कुत्ते।

उसके बाद गाड़ी एक बाजार में रुकी। मयनाडांगा के बाजार में सब-कुछ था। उस दिन मयनाडांगा मे हाट लगी हुई थी। नुट्टु ने एक गोदाम के सामने अपनी गाड़ी रोकी। फिर वैकुण्ठ से कहा, "कही जाना मत वैकुण्ठ, आस-पास ही रहना। मैं अभी आया।"

वैकुण्ठ जैसे नटवर की बात समझता था। उसके गले के घुंघरू बज उठे। फिर नुट्टु मुझे लेकर गद्दी मे दाखिल हुआ। गद्दीवाली कोठी मे सिलसिलेवार बहुत-सी गाड़ियाँ खडी थी।

गद्दी का मालिक साहा बाबू था। वह तम्बाकू पी रहा था। उसकी काली, मोटी तोंद बहुत विशाल थी।

साहा बाबू ने कहा, "नुट्टु, तू फिर आया है ? तुमसे कह दिया था न, कि मेरी गद्दी में मत आना।"

"साहा बाबू, अबकी माफ कर दें। मेरी माँ बीमार थी इसी से नही आ

सका था।"

साहा बाबू ने हुक्के को बायें हाथ से दाहिने हाथ में लेकर कहा, "तेरी माँ बीमार थी तो मेरा इससे क्या आता-जाता है? तेरे चलते मैं कारोबार में नुकसान उठाऊँ?"

फिर हुक्के से एक कश लेकर कहा, "जा, आज तेरी जरूरत नहीं है..."

नुटु ने साहा बाबू के पैर पकड़ लिये।

"आज काम देना ही होगा साहा बाबू, घर में चावल नहीं है। यही चार आना पैसा लेकर जाऊँगा तो रसोई बनेगी और खाना जुटेगा।"

साहा बाबू को और भी ज्यादा रंज हो गया।

"जा, यहाँ से निकल जा। जब पैसे की कमी हुई तो मेरे सामने धरना देना शुरू किया। उस दिन तेरे चलते चार वैगन खाली चले गये। उसकी कोई कीमत नहीं? रेल कम्पनी कान पकड़कर मुझसे पैसा नहीं वसूलेगी? जा, यहाँ से निकल जा..."

उसके बाद मुनीम को बुलाकर कहा, "केदार, नुटु को आज माल मत देना।"

साहा बाबू ने कन्धे पर अँगोछा रखा और कहीं चल दिया। नुटु उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। अब साफ-साफ दिख पड़ा कि नुटु लँगड़ा है। लँगड़ा कहने का मतलब है—दोनों पैर के तलवे मुड़े हुए थे। उन्हीं मुड़े हुए पैरों से ही नुटु ने साहा बाबू के पीछे दौड़ना शुरू किया। वैकुण्ठ बाहर खड़ा था। नुटु को दौड़ते हुए देखकर उसने भी दौड़ना शुरू किया।

मैं पुआल के गोदाम में चुपचाप बैठा रहा। वह मेरे लिए एक अजीब ही दुनिया थी। अन्दर पुआल का ढेर था—पहाड़ की तरह पुआल का ढेर। सामने खुली चाल का एक छोटा-सा कमरा था और वहाँ एक तख्त बिछा था। उसी को गद्दी कहते थे। केदार उसी गद्दी पर बैठा था। मैं किसी को नहीं पहचानता था और न कोई मुझे जानता था।

वहीं बैठा-बैठा मैं बाजार के चारों ओर निगाह दौड़ाने लगा। चारों तरफ धूल ही धूल थी। उसी धूल में मयनाडाँगा में हाट लगी हुई थी। वह हाट अब भी वैसी है या नहीं, मालूम नहीं। हो सकता है कि आज ज्योतिर्मय सेन हाट नहीं जा सकें। अगर उन्हें हाट जाने की इच्छा होगी तो वहाँ जाकर देखेंगे कि सब-कुछ बिल्कुल साफ-सुथरा है। मन्त्रीजी हाट देखने जा रहे हैं, यह सुनते ही पुलिस का बड़ा अफसर तुरन्त हुक्म देकर सारी गन्दगी और कूड़ा-कर्कट साफ करा देगा। मैं मन्त्री हूँ इसीलिए सम्भवतः वे लोग मुझे गन्दगी से भरी हाट दिखाना नहीं चाहेंगे।

"तुम कौन हो जी?"

मैंने मुड़कर देखा—केदार था। केदार साहा बाबू का आदमी था। वह

अपनी मूँछों को ऐंठकर मेरी ओर निहार रहा था।

"तुमको क्या चाहिए ?"

जवाब देने की नौबत नहीं आयी। तब तक बहुत-से लोग आकर खड़े हो गये थे। वे गाड़ी लेकर आये थे। वे भी माल लादकर मयनाडांगा स्टेशन जानेवाले थे। माल रेल की साइडिंग में ले जाया जायेगा और वहाँ से वैगन में लादा जायेगा और वह वैगन वहाँ से कलकत्ता जायेगा। चार आना खेप किराया मिलता था। नुटु की आय का यही साधन था। इसी आय को ले जाकर वह अपने बाप को देगा। केदार से मेल-जोल रहने पर कभी-कभी उसे दो खेपें मिल जाती थीं। दो खेप जाने से आठ आना और तीन खेप जाने से बारह आना मिलता था। हर वक्त पुआल का मौसम नहीं रहता था। कातिक अगहन से इसकी शुरुआत होती थी और जाड़े-भर यह काम चलता था। उसके बाद गरमी आ जाने पर खेत में काम करना पड़ता था।

गद्दी का मुनीम तब दूसरे गाड़ीवानों को लेकर व्यस्त था। एकाएक नुटु लँगड़ाता हुआ वहाँ आया। उसका उदास चेहरा देखकर मेरे मन में उसके प्रति बड़ी ममता जगी।

"साहा बाबू ने क्या कहा, नुटु ?" मैंने पूछा।

तब मेरी बात सुनने का उसके पास वक्त नहीं था। उसके पीछे-पीछे घुँघरू से आवाज करता वैकुण्ठ भी आया। वैकुण्ठ का भी चेहरा उदास-उदास जैसा लगा। जैसे वह आदमी की बात समझता था। मैं गुमसुम बैठा था। नुटु धीमी आवाज में केदार बाबू से कुछ बतियाने लगा। उसके बाद वह एकाएक मेरे पास आया।

"चलो।" उसने कहा।

मैं उसके पीछे-पीछे बाहर आया। "क्या हुआ नुटु ?"

"क्यों नहीं होगा जी ? जरूर होगा···"

तब तक बैलों को वह जुए से लगा चुका था। उसकी गाड़ी पर पुआल की बोझाई शुरू हो गयी। बोझाई में ज्यादा देर नहीं लगी। हर गाड़ी पर माल की बोझाई हो रही थी। नुटु बड़ा ही व्यस्त था। बातचीत करने का उसके पास वक्त नहीं था। गिन-गिनकर पुआल का बोझा रखने लगा। फिर उन बोझों को रस्सी से कसकर बाँधा। उसके बाद छलाँग लगाकर सामने बैठ गया। उसने मेरी ओर देखकर कहा, "आओ-आओ, बड़ी ही देर हो गयी है······"

फिर उसने वैकुण्ठ की ओर देखा और कहा, "आ रे वैकुण्ठ···"

जब गाड़ी चलने लगी तो मैंने पूछा, "क्यों नुटु, आखिर साहा बाबू को राजी करके छोड़ा ?"

"दुत, साहा बाबू राजी हुआ ही नहीं, वह नम्बरी हरामजादा है।"

"फिर ?"

"केदार बाबू के हाथ में एक आना थमा दिया और काम बन गया।"

"और तुम्हें कितना मिलेगा ?"

"तीन आना।"

और नुटु मुसकराया। बहुत देर के बाद उसके चेहरे पर मुसकराहट आयी थी। "मैं खटकर मरूँ और वह पट्ठा मेरी मजदूरी में हिस्सा ले..."

सचमुच मैं स्तम्भित हो गया था।

नुटु ने कहा, "आज और एक खेप मिल जाये तो सात आना मिलेगा। लौटती बार बाजार से चावल खरीदकर ले जाऊँगा..."

उसके बाद उसने बैलों को ललकारा और उसकी गाड़ी दौड़ने लगी। गाडी जितनी ही तेज दौड़ती थी, बैकुण्ठ भी उतनी ही तेजी से दौड़ता था। मैं बार-बार पीछे की ओर मुड़कर देख रहा था कि बैकुण्ठ आ रहा है या नहीं।

नुटु ने कहा, "उसके लिए फिक्र करने की जरूरत नहीं है। वह आयेगा ही।"

फिर वह जैसे अपने-आप बुड़बुड़ाने लगा, "मेरी तरह बैकुण्ठ ने भी आज कुछ नहीं खाया है। कल भी उसे खाना नहीं मिला था।"

"क्यों ?"

नुटु ने कहा, "माँ को बुखार था। रसोई कौन बनाता ? साहा बाबू भी झल्लाकर कई दिनों से मुझे खेप नहीं दे रहा था।"

नुटु की बात सुनकर मैं तकलीफ महसूस करने लगा।

"तुमने आज क्या खाना खाया है ?"

"कुछ भी नहीं।" मैंने कहा।

"कुछ भी नहीं खाया है। फिर आज पाँच सेर चावल खरीदूंगा। माँड़ के साथ भात खायेंगे। पेट भर जायेगा और रात के पहले फिर भूख नहीं लगेगी।"

चलते-चलते फिर नुटु ने कहा, "बाबूजी, क्या कहते हैं, मालूम है ? वह कहते हैं कि बैकुण्ठ को बेच दो।"

"क्यों ?"

"उनका कहना है कि बैकुण्ठ निकम्मा बैठा केवल खाया करता है। उसे अगर कसाई के हाथ बेच दें तो चालीस रुपया मिलेगा।"

मैंने कहा, "कसाई उसको जबह कर डालेगा।"

"चुप रहो।"

नुटु ने एकाएक अपने हाथ से मेरा मुँह ढँक दिया। "इतने जोर से मत

बोलो। वैकुण्ठ को पता चल जायेगा।"

उसी वैकुण्ठ को आज इतने दिनों के बाद ज्योतिर्मय सेन ने साफ-साफ देखा। उसका पूरा शरीर पशमीने जैसे घुंघराले रोओं से भरा था। कान नीचे झूल रहे थे। असहाय की तरह ताका करता था। हालाँकि वह एक मामूली भेड़ा था। मानो, ईश्वर उसे आदमी बनाना चाहता था लेकिन गलती से भेड़ा बनाकर इस धरती पर भेज दिया था। इसी वैकुण्ठ ने एक दिन ज्योतिर्मय सेन की मृत्यु से रक्षा की थी। वह बात ज्योतिर्मय सेन जीवन-भर भूल नहीं सकते हैं। याद है, बहुत दिन पहले उन्होंने इतिहास की पुस्तक मे एक घटना के बारे में पढ़ा था—नेपोलियन बेसनोर की लड़ाई के मैदान से घोड़े पर चढ़कर वापस आ रहा था। उसकी सेना के बहुत-से जवान मारे गये थे। उन मृतकों के बीच से आते वक्त उसकी नजर एक कुत्ते पर पड़ी जो एक मरे हुए जवान की रखवाली कर रहा था। वह कुत्ता उसी जवान का था। मालिक मर चुका था फिर भी वह कुत्ता वहाँ खड़ा होकर पहरा दे रहा था। यह दृश्य देखकर नेपोलियन अभिभूत हो गया। उसके बाद उसने अपने दल के आदमियों को बुलाकर कहा—"There, gentlemen—that dog teaches us a lesson on humanity."[१]

आज इतने दिनों के बाद वैकुण्ठ की याद आते ही उन्हें नेपोलियन की बात का स्मरण हुआ—"That Baikuntha teaches us a lesson on humanity."[२]

रेलवे स्टेशन की मालगाड़ी में पुआल की लदाई करके और बाजार से चावल खरीदकर नुट्टु जब घर लौटा, सूरज पच्छिम में डूब रहा था। उसके बाद स्नान करके उसकी माँ रसोई बनानेवाली थी। रसोई बन जाने के बाद ही हमें खाना मिलता। सचमुच उस वक्त भूख से मेरा बुरा हाल था।

नुट्टु ने कहा, "आज तुम्हें खाना मिलने में देर होगी। अन्यथा मत लेना। माँ से कह दूँगा कि कल तुम्हारे लिए जल्दी ही खाना बना दे।"

"लेकिन कल भी अगर साहा बाबू तुम्हें खेप नहीं दें तो क्या होगा भाई?"

"क्यों नहीं देगा? हर खेप पर एक-एक आना देने पर सब साले काबू में आ जायेंगे।"

मैं सोच रहा था कि नुट्टु के माँ-बाप मुझे देखकर क्या कहेंगे। उन लोगों की हालत फटेहाल है। मेरे चलते उन्हें व्यर्थ ही कष्ट झेलना पड़ेगा।

लेकिन घर में घुसते ही एक ऐसा काण्ड हो गया जो अचम्भे मे डालनेवाला

---

१. सज्जनो! वह कुत्ता हमें मानवता की सीख देता है।
२. वैकुण्ठ हमें मानवता की सीख देता है।

था। फूस की छोटी-सी झोंपड़ी थी। दीवार की मिट्टी भहराकर गिर चुकी थी। बीच के ओसारे पर जाते ही देखा कि दो मुसलमान वहाँ खड़े हैं। उन लोगों के बदन पर कुरता या बनियान नहीं थी। गले में काले धागे थे जिनमें तावीज झूल रहे थे।

उन दोनों को देखते ही नुट्टु का चेहरा म्लान हो गया।

"बाबूजी, मैं वैकुण्ठ को नहीं बेचूंगा। हरगिज नहीं बेचूंगा।"

इतना कहकर उसने वैकुण्ठ को अपनी बाँहों में भर लिया।

"मैं कसाइयों के हाथ वैकुण्ठ को किसी भी हालत में नहीं बेचूंगा। किसी भी हालत में नहीं ··"

वह फूट-फूटकर रोने लगा।

शायद वैकुण्ठ भी समझ गया। नुट्टु की छाती में मुंह छिपाये और आँखों को मूंदे वह एक बहुत बड़े आश्रय में निश्चिन्तता का बोध करने लगा।

"कौन ?"

शंकर को देखकर ज्योतिर्मय सेन उठकर बैठ गये।

"सर, पुलिस नहीं जा रही है।"

"क्यों ?"

"मैं, ज्योतिदा, यह बात कहने के लिए थाना गया था। उनका कहना है कि आप जब तक लिखकर अनुमति नहीं देते हैं वे पुलिस को नहीं हटायेंगे। आप पर अगर कोई मुसीबत आ जाये तो उसकी जिम्मेदारी कौन लेगा ?"

पाँच

शंकर जैसे मेरी परीक्षा ले रहा है। इस प्रकार की परीक्षाओं से ज्योतिर्मय सेन को अनेक बार गुजरना पड़ा है। सिर्फ ज्योतिर्मय सेन की बात ही क्यों, पृथ्वी पर जितने मनुष्य हैं सभी को इस प्रकार की परीक्षा से गुजरकर जीवन जीना पड़ता है। पुत्र की मृत्यु-शय्या के निकट ईश्वर की परीक्षा आकर हाजिर हो जाती है। ऐसे में ईश्वर पर विश्वास किया जाये या अविश्वास ? विपत्ति के समय जो आदमी कह सकता है कि ईश्वर करुणामय है, वास्तविक भक्त वही है। नारद के मन में यह धारणा घर कर गयी थी कि वही ईश्वर के एकमात्र भक्त हैं। नारद ने कहा, 'मैं सारा दिन आपका नाम भजता रहता हूँ, मेरे जैसा आपका कोई भक्त है ?"

विष्णु ने कहा, 'नहीं नारद, ऐसी बात नहीं है। तुमसे भी बड़ा एक भक्त है।"

"वह कौन है ?"

"वह एक ग्रामीण कृषक है। तुम स्वयं जाओ और जाकर देख आओ कि वह मेरा कैसा भक्त है।"

नारदजी पृथ्वी पर आये। उस गाँव में आकर देखा कि एक निहायत ही दरिद्र किसान है। वह सारा दिन खेत-खलिहान में काम करता है। धूल और कीचड़ मे खटते-खटते उसे साँस लेने की फुर्सत नही मिलती है। रात में सोने के पहले केवल एक बार ईश्वर का नाम लेता है।

नारद ने विष्णु भगवान से आकर कहा, "आपके भक्त को देख आया। वह दिन-भर में मात्र एक बार आपका नाम लेता है और मैं दिन-रात विश्व-ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करता हूँ और वीणा बजा-बजाकर आपका नाम जपता रहता हूँ। मुझसे बढ़कर वह किसान ही आपका भक्त है ?"

विष्णु भगवान ने कहा, "तुम एक काम करो नारद। एक कटोरा तेल लेकर सारी पृथ्वी की परिक्रमा कर आओ।"

"क्यो ?"

"तुम्हें बाद में बताऊँगा।"

एक कटोरे में लबालब सरसों का तेल भरकर और उसे तलहथी पर रखकर नारदजी परिक्रमा करने निकले। सारी पृथ्वी की परिक्रमा करने के बाद फिर वहाँ आकर उपस्थित हुए।

विष्णु ने पूछा, "मेरा नाम कितनी बार लिया था नारद ?"

"जी, आपका नाम लेने का समय ही कहाँ मिला ? एक कटोरा तेल लिये चलने में हमेशा यही भय बना रहता था कि कहीं छलक न जाये। सो तेल के चलते ही मैं बुरी तरह व्यस्त रहा।"

विष्णु ने कहा, "तुम्हारी मैंने परीक्षा कर ली नारद। अब उस किसान के बारे मे सोचकर देखो तो सही। सारा दिन इतने झंझटों मे उलझे रहने पर भी वह मेरा नाम लेने से नहीं चूकता है।"

नुटु के अभावों का कोई अन्त नहीं था। उन लोगों की गृहस्थी पर अभाव और दरिद्रता—दोनों दो पंजों को फैलाये हमेशा आक्रामक की मुद्रा में रहते थे। अभाव और दरिद्रता से बढ़कर प्राणघाती चीज दुनिया में और कुछ भी नही है। नुटु का बाप मैदानों का चक्कर काटा करता था। जिस दिन काम मिल जाता था, वह दिन मजे में गुजर जाता था। उसे मजदूरी के रूप में बारह आना मिलता था। जिस दिन काम नहीं मिलता था, उस दिन वह बिलों से मछलियाँ पकड़ा करता था। सारा दिन मछली पकड़ने के खयाल से बैठा रहकर अन्त में एक पोठी पकड़कर घर आता था। लेकिन जब किसी की मौत होती, उस दिन उसके चेहरे पर हँसी उमड़ पड़ती थी। जल्दीबाजी में कन्धे पर एक

अँगोछा रखे वह बाहर निकल जाता था। श्मशान जाने का मतलब था उस दिन के लिए सब-कुछ प्राप्त कर लेना। यानी जिस घर का आदमी मरता था उस घरवाले की ओर से सन्देश-रसगुल्ला से लेकर पान-बीड़ी और शर्बत तक की सप्लाई की जाती थी। जो गाँजा पीता था उसे गाँजा दिया जाता था और जो भाँग पीता था उसे भाँग दी जाती थी। घर से चाँपातल्ला घाट तक बारी-बारी से लाश ढोने पर खाना-पीना सब-कुछ मिलता था। यानी चाँपातल्ला के गंज के होटल में महीन चावल का भात, दो-तीन टुकड़ी मछलियाँ, मछली का शोरबा, शोरबे में आलू-परवल, बरी तथा मूंग की दाल और आलू का भुरता मिलते थे। भात जितना खाना चाहे उतना दिया जाता था—चाहे पेटभर खाये या आकण्ठ खाये। पैसा मृतक के घरवाले चुकाते थे। लाश जलाने के बाद अस्थि-भस्म जल में विसर्जित करना पड़ता था। फिर जो ताड़ी पसन्द करता था उसे ताड़ी और जो ठर्रा पसन्द करता था उसे ठर्रा मिलता था।

लेकिन ऐसा सौभाग्य हर रोज नहीं होता था। मयनाडांगा में हर रोज आदमी नही मरा करता था। कोई बड़ा आदमी जब मरने-मरने पर रहता तो खबर सुनते ही नुटु का बाप वहाँ पहुँच जाता था और पूछता था कि वह आदमी किस हालत में है।

"तुम्हारे मालिक की क्या हालत है जी ?"

अगर सुनता कि अन्तिम साँस ले रहा है तो वहीं जमकर बैठ जाता था। डॉक्टर, वैद्य और होमियोपैथिक डॉक्टर आते थे। नुटु का बाप जो जमकर बैठता तो उठने का नाम नहीं लेता था।

"डॉक्टर ने क्या कहा जी ? मालिक बच जायेंगे न ?" वह बार-बार पूछता था।

घर के आदमी बताते, "कौन जाने, भगवान ही मालिक है। वही बता सकता है।"

नुटु का बाप कहता, "बैठा-बैठा मैं भगवान को ही पुकार कर रहा हूँ। मालिक आदमी के बजाय देवता हैं।"

इसी तरह तीन-चार दिन बीत जाने पर अगर विपत्ति टल जाती तो नुटु के बाप को बड़ी तकलीफ पहुँचती थी। इतनी तकलीफ करने के बावजूद यह मौका हाथ से निकल गया। मर जाता तो कुछ हासिल होता। खाने-पीने के अलावा नुटु के बाप को बहुत-कुछ मिलता। मयनाडांगा के बड़े आदमी की मृत्यु होने से गाँव के लोगों को सुविधा होती थी।

लेकिन इस तरह की घटना रोज-रोज नही घटा करती थी। बड़ी बीमारी की खबर सुनते ही सदर से डॉक्टर आता था, फिर दवा चलती थी, इंजेक्शन दिया जाता था। लेकिन अन्त-अन्त तक बच नहीं पाता था। उस वक्त नुटु का

बाप मृतक के पुत्रों के सामने जाकर बहुत रोना-धोना शुरू कर देता था।

"अहा, वह देवतुल्य पुरुष थे! वह दुनिया से विदा क्या हुए, हम अनाथ हो गये···"

फिर श्मशान जाने से लेकर श्राद्ध तक नुटु के बाप के भाग्य में बेगार खटना लिखा रहता था। उसके बदले उसे एक दिन भरपूर खाना मिलता था—पूरी, दाल, सब्जी, काला जामुन, रसगुल्ला। बस, लोभ की बात इतनी कुछ ही थी, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। मयनाडांगा में उन दिनों नुटु के बाप जैसे लोग उतना ही भर-पाकर खुश हो जाया करते थे।

खाने-पीने के बाद जब वह घर लौटता तो नुटु की माँ जगी रहती थी।

"खाओगे नहीं?"

नुटु का बाप कहता था, "नहीं, आज ठूंस-ठूंसकर खाया है। सिर्फ चने की दाल के साथ ही बीस पूरियाँ गटक चुका हूँ और उसके बाद तीन हाँड़ी दही···"

"कहाँ खाया?"

"ईश्वरपुर के यादव कुण्डु के घर में। पहले याद ही नहीं था, बिल्कुल भूल चुका था। मुझे पंचानन ने याद दिलाया। थोड़ी-सी और देर हो जाती तो भोजन ही नसीब नहीं होता। मालूम है, शुद्ध घी की गरम-गरम पूरियाँ पत्तल पर डालता गया और मैं चट करता गया। पेट बड़ा फूल गया है, जरा एक गिलास पानी दो।"

जब मयनाडांगा में किसी की मौत नहीं होती तो नुटु के बाप को कठिनाई का सामना करना पड़ता था। उस वक्त खेत से मिलनेवाली मजदूरी का ही भरोसा रहता था। उसकी गृहस्थी तीन जनों की थी और चौथा था वैकुण्ठ। लेकिन आठ आना हर रोज रोजगार कर चार-चार पेटों का खर्च चलाते-चलाते नुटु का बाप फटेहाल हो गया था। अन्त में कुछ न कर पाने की वजह से वह हाथ-पैर मोड़कर बैठ गया था और उसके स्वभाव में एक प्रकार की निष्ठुरता की भावना आ गयी थी। नुटु के बाप को जिस दिन बड़ी भूख लगती, रसोईघर से काँसे का बरतन उठाकर ले जाता और बाजार में बेच आता था।

बाजार में पीतल और काँसे का दूकानदार कहता था, "क्यों जी दिगम्बर, फिर क्या लेकर आये हो?"

"हुजूर, काँसे का बरतन।"

"चोरी का माल है क्या?"

यह बात सुनते ही दिगम्बर को गुस्सा हो आता था।

"खबरदार, मुंह सँभालकर बात किया करें सेन साहब। गरीब हूँ मगर आपका कर्ज नहीं खाया है कि आप खामखाह गाली-गलौज करें।"

सेन साहब हँस पड़ता था। खागड़े के बरतन का रोजगार करते-करते बाल पक चुके थे। खरीदे हुए पुराने बरतन पर ही कलई चढ़ाकर उसे नये के नाम से चला देता था और कई सालों से यही करता आ रहा था। यह भी उसका व्यवसाय ही था। ऐसे गरीब लोगों से सस्ते में खरीदकर बेचने से लाभ की मात्रा अधिक होती थी।

दिगम्बर की बात से सेन साहब घबराता नहीं था।

"लगता है, तुम सतयुग के युधिष्ठिर हो—कलि के शुक्राचार्य। कहने का मतलब है कि तुमने कभी क्या चोरी नही की है?"

"अगर चोरी करता तो यह हालत रहती सेन साहब? चोरी करता तो आज मेरे पास घर, खेत-खलिहान सब-कुछ हो जाता। चोरी करना नहीं सीखी इसी-लिए आज मेरी ऐसी गयी गुजरी हालत है।"

इतनी बात करने के बाद सवा रुपया मिलता और उससे चावल खरीदकर वह घर लाता और जब तक रसोई न बन जाती थी और वह खाना न खा लेता था, तब तक उसे शान्ति नही मिलती थी। फिर वह नुटु को अपने पास बुलाता था, वैकुण्ठ को भी पुकारता था। तब उसके मुकाबले दूसरा भला आदमी मिलना जैसे दुश्वार हो जाता था।

दिगम्बर कहा करता था, "किसान को ग्यारह महीने तक दुख-ही-दुख रहता है और बाकी एक महीना ही सुख मिलता है।"

ऐसे ही समय मैं वहाँ पहुँचा था। सारा दिन मेहनत-मशक्कत करने के बाद घर आने पर इसी तरह का काण्ड हुआ करता था।

उस दिगम्बर के पेट मे सम्भवतः एक दाना भी नहीं गया था। उसकी आँखें लाल-लाल थी। पिछले दिन से ही घर-भर के लोगों की भूख से हालत खस्ता थी। हाट से कसाई उसके घर पर आये थे और टकटकी लगाकर वैकुण्ठ की ओर ताक रहे थे।

नुटु ने लँगड़े पाँवों से ही छलांग लगायी और वैकुण्ठ को अपनी देह में जड़ लिया।

दिगम्बर सामने आया।

"उसे छोड़ दे···"

नुटु ने कहा, "उसको काटने से मुझे भी काटना पड़ेगा, मुझको भी काटकर दो हिस्सा करना पड़ेगा।"

दिगम्बर ने कहा, "कल से हम लोगों के पेट में अनाज का एक दाना तक नही पहुँचा है और तुमको मजाक सूझ रहा है···"

नुटु भी तब मुकाबले के लिए तैयार हो गया था।

"वैकुण्ठ के बदन मे हाथ मत लगाइए, देखूँ आपमें कितनी हिम्मत है···"

"तू मुझे आँख दिखा रहा है ?"

आँगन में ही दोनों एक-दूसरे से उलझ गये।

मैं नया आदमी था। चुपचाप खड़ा सब-कुछ देख रहा था। एकाएक नुट्टु का बाप चिल्ला उठा, "तू नहीं छोड़ेगा ? तू वैकुण्ठ को नहीं छोड़ेगा ?"

नुट्टु ने बिगड़कर कहा, "नहीं, नहीं छोड़ूंगा।"

नुट्टु का बाप जोरों से चिल्ला उठा, "फिर खायेगा क्या ? अँगूठा चूसेगा ? अब मैं तुझको नहीं खिला पाऊँगा। खिलाने का कोई उपाय नहीं है। मैं घर छोड़कर चला जाऊँगा, जहाँ दो आँखें ले जायेंगी, चल दूँगा। मुझे क्या ! मैं क्या किसी की परवाह करता हूँ !"

नुट्टु तब भी जी-जान से वैकुण्ठ को पकड़े था।

अब तक दोनों मुसलमान कसाई वहाँ मौजूद थे। वे लोग इस घर में बड़ी उम्मीद लेकर आये थे। हट्टा-कट्टा भेड़ा था। इस घर में आदमी को खाना नहीं मिलता था लेकिन नुट्टु ने भेड़े को खिला-पिलाकर मोटा-तगड़ा बना दिया था। उसी भेड़े की ओर ललचाई निगाहों से ताककर वे चले गये। उनके पीछे-पीछे नुट्टु का बाप दिगम्बर भी बाहर चला गया।

नुट्टु ने कहा, "धत्तेरे की, दुनिया आँख दिखाती है। अब मैं भी इस घर में नहीं रहूँगा..."

नुट्टु ने मेरी ओर देखा।

फिर कहा, "चलो जी, चलो, इस मुहल्ले के नीच आदमी के मकान में अब मैं नहीं रहूँगा। जहाँ वैकुण्ठ के लिए जगह नहीं है, वहाँ मेरे लिए भी जगह नहीं है। चलो, चलें..."

स्थिति देखकर मैं ही नुट्टु के साथ बाहर निकलने लगा। मेरे लिए तब नुट्टु जैसा था, उसका बाप भी वैसा ही था। इस अजीब मकान में अजीब तरह की घटना के बीच मैं वहाँ आ पड़ा था। अपने तत्कालीन अनुभवों के बाहर एक नयी दुनिया में आकर मैं डुबकियाँ लगा रहा था। कहाँ मेरा वह मकान जहाँ शुकदेव, दरबान, मास्टर साहब, रघु और बाबूजी थे, खाने को पावरोटी और अण्डे थे, आराम के सारे उपकरण मौजूद थे और कहाँ यह अभाव, दरिद्रता और झगड़ा !

इतनी देर के बाद नुट्टु की माँ कमरे से बाहर आयी।

"कहाँ जा रहा है नुट्टु ?"

नुट्टु को जैसे सुनायी नहीं पड़ा।

देखा, बलखायी रस्सी की तरह एक औरत खड़ी थी। देह में साया-ब्लाउज कुछ नहीं था। फटी साड़ी देह में लपेटे वह खड़ी थी।

नुट्टु ने कहा, "उधर मत देखो, वह राक्षसी है, मेरे माँ-बाप दोनों राक्षस हैं—

किसी में भलमनसाहत नही है। मेरे वैकुण्ठ को वे लोग बेच देना चाहते हैं। अब उन लोगों का मुँह देखना मुझे पसन्द नहीं है। आओ, चलें..."

सुबह से कुछ नही खाया था। मुझे जोरों की भूख लगी थी।

नुटु की माँ ने कहा, "अरे, तू कहाँ जा रहा है नुटु ? चावल लाया है ?"

इतनी देर के बाद जैसे याद आया। चावल की थैली आँगन में एक कोने में रखी हुई थी। उसे माँ की ओर फेंकते हुए कहा, "खाओ, जितना भात खाना है, खाओ। अब मैं इस घर में नही आऊँगा।"

और वह वैकुण्ठ का गला पकड़े रास्ते पर चला आया।

मैंने कहा, "फिर करोगे क्या नुटु ? खाओगे क्या ? कहाँ रहोगे ?"

नुटु ने कहा, "दुत, खाने की क्या फिक्र ? बीरचक के ईंटखाने में जाऊँगा तो तुरन्त काम दे देगा। हर रोज बारह आना मिलेगा। इतने दिनों से ईंट का मुनीम बार-बार अनुरोध कर रहा है। तुम्हारा भी काम लगा दूँगा। तुम ईंट नहीं ढो सकोगे—सर पर ईंट नही ढो सकोगे ? हर खेप में दस ईंट।"

बस, वहीं से पहले-पहल शुरुआत हुई। ज्योतिर्मय सेन के जीवन में वह पूर्णतया एक नया अनुभव था। किताब में पढ़ी दुनिया से इस दुनिया का कोई सामंजस्य नही था। उन दिनों आज की तरह इहलोक और परलोक की भावना समाप्त नहीं हुई थी। पुस्तक के पृष्ठों में छपी बातों को लोग वेद-वाक्य के रूप में लेते थे। हरिसाधन बाबू कहा करते थे, "पाप की पराजय अनिवार्य है।" वह यह भी कहा करते थे, "जो असत्य बोलता है उसको अगले जन्म में अवश्य ही नरकवास करना पड़ता है।"

नरक के सम्बन्ध में मेरी भी एक अस्पष्ट, धुँधली-सी धारणा बन गयी थी।

आज वह धारणा क्या स्पष्ट हो गयी है।

मैं पूछा करता था, "नरक देखने में कैसा होता है सर ?"

नरक देखने मे कैसा है, यह हमारे घर से भण्डार-घर में टँगी एक तसवीर में साफ-साफ दिखाया गया था। वह तसवीर कहाँ से आयी थी और उसे किसने टाँगा था, यह मुझे मालूम नही था। चक्कर काटते-काटते जब समूचे घर मे घूमने के लिए कोई जगह बाकी नही बच जाती थी तो आकाश, धूप, हवा और हौज की ओर देखना ही मेरा काम रह जाता था। जब वे सब भी पुराने पड़ जाते थे तो देखी हुई चीजो को ही बार-बार देखता था। देखता कि हम लोगों का दरबान किस तरह रोटी बनाता है, किस तरह हमारी बूढ़ी नौकरानी धूप की ओर पीठ किये बरी बनाती है और किस तरह रघु साबुन से कपड़े फींचा करता है।

और जब वह सब भी अच्छा नही लगता तो भण्डार-घर के अन्दर चला जाता था। भण्डार-घर के अन्दर दिन-भर में कभी धूप नही पहुँचती थी। अँधेरे वायुहीन स्थान की जैसी एक तीखी बू वहाँ मौजूद रहती थी। एक तरह की

अजीब ही गन्ध। गुड़, मसाला, तेलचिट्टा, तेजपात, चूहा और सरसों-तेल को एक साथ मिला देने से जैसी गन्ध हो सकती है, ठीक वैसी ही गन्ध। उन सारी वस्तुओं को मैंने कभी एकसाथ नही मिलाया है, लेकिन मिलाने से ठीक इसी किस्म की गन्ध निकलेगी, यह मैं बेझिझक कह सकता हूँ।

उसके अन्दर ही अचार रखा हुआ था—आम का अचार, बेर का अचार और कितनी ही चीजों का अचार। हम लोगों की बूढ़ी महरी को कोई खास काम नही रहता था। वह बैठी-बैठी वह सब बनाती रहती थी। इतना अचार कौन खायेगा, किसी को भी मालूम नहीं था। न मैं अचार खाता था और न बाबूजी ही खाते थे। मैं खाना चाहता तो रघु मुझे खाने नही देता था। लेकिन मुझे मालूम था कि यह सब कहाँ रखा जाता है। बरी के बड़े-बड़े मर्तबान में हाथ घुसाकर मैं चोरी-चुपके खा लेता था।

चुराकर खाने से जीभ की तृप्ति तो हो जाती थी लेकिन मन तृप्त नही होता था, क्योंकि पुस्तक मे लिखा था कि चोरी करने से महापाप होता है।

"नरक कैसा होता है सर ?" मैं पूछता था।

हरिसाधन बाबू कहते थे, "वहाँ गहरा अँधेरा फैला रहता है। जो चोरी करते हैं, जो झूठ बोलते हैं, वे उसी नरक में जाते हैं।"

भण्डार-घर की दीवार में टँगी उस तसवीर की ओर मैं बहुत देर तक टक-टकी लगाकर देखा करता था। यम के दरबान किसी के हाथ-पैर बाँधकर गदा से पीट रहे हैं, किसी को उबलते तेल में डालकर मार रहे हैं और किसी को ओखल से बाँधकर उसे जान से मार रहे हैं। सचमुच वे नारकीय दृश्य थे। रघु ने जिस दिन बताया कि वे नरक के दृश्य हैं, मैंने उसी दिन से अचार चुराकर खाना बन्द कर दिया।

दरअसल १९३९ ईस्वी के पहले तक नरक के सम्बन्ध में मनुष्यों की यही पुरानी धारणाएँ थीं : पाप करने से नरक जाना पड़ता है, चोरी-बटमारी और चोरबाजारी करने से नरक की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। तब उस नरक के भय ने ही बहुतों को साधु बना दिया था। आदमी बिना खाये मर जाता था लेकिन छीना-झपटी नहीं करता था। १९४३ ईस्वी के अकाल के समय लोग भोजन के अभाव में रास्ते पर मर गये लेकिन उन्होंने दुकानें नही लूटीं। और ऐसा किया सिर्फ नरक के भय के कारण। पुलिस की गोली से भी भीषण भयावह नरक का भय था। पुलिस की गोली से आदमी एक मिनट में मर जाता है किन्तु नरक में तड़प-तड़पकर मरना पड़ता है। जर्मनी में मार्टिन लूथर ने भी एक दिन ऐसा ही विद्रोह किया था। यह सन् १४८३ से १५४६ के बीच की बात है। वह एक किसान का लड़का था। एक दिन अचानक उसने इस बात का आविष्कार किया कि गिरजाघर के सभी पादरी धूर्त हैं। पादरी को कुछ

रुपये थमाने से ही सारे पाप धुल जाते थे और स्वर्ग जाने की राह आसान हो जाती थी। या पादरी के सामने अपना पाप स्वीकार लेने से सात खून माफ हो जाते थे। लूथर ने कहा, "यह सब झूठी बात है। गिरजाघर कुछ नहीं है, पादरी भी कुछ नहीं है। एकमात्र विश्वास ही बड़ी चीज है। विश्वास यानी 'फेथ' 'The just shall live by faith.'[1] आदमी का एकमात्र रक्षक ईसा-मसीह ही नहीं है और न गिरजाघर ही, बल्कि उसकी आस्था है। आस्था से ही भक्ति होती है और तर्क से उसकी दूरी बढ़ जाती है। उस समय सम्भवतः यूरोप के निवासियों के हृदय से धीरे-धीरे ईश्वर के प्रति आस्था कम हो रही थी। जब लोगों के हाथ में आहिस्ता-आहिस्ता बेहिसाब पैसा आने लगा तब ईश्वर का मूल्य पैसे के मूल्य से विघटित हो गया। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। उन लोगों ने कहना शुरू किया, "परलोक की बात को गोली मारो। बुढ़ापे में जिससे आराम से जीवन बसर कर सकूं उसके लिए पहले पैसा जमा करने दो। पैसा रहेगा तो सेण्ट फ्रांसिस भी हमारा सम्मान करेगा। तब कोई पराया नहीं रहेगा···"

इसके बाद ही उसके देश में मध्यवित्त समाज का आरम्भ हुआ और सामन्तवाद के पतन की शुरुआत हुई। नुटु जैसे लोग उन लोगों के देश में पैदा हुए होते तो दूसरे की जमीन में मशक्कत कर पेट भरने की मुसीबत से अन्ततः छुटकारा पा जाते। तब उनका अपना-अपना खेत होता और अपनी जमीन में वे मेहनत से फसल उपजाते। क्योंकि भारत में पैदा हुए हैं इसलिए नुटु जैसे लोग चार सौ वर्ष पीछे पड़ गए है। चार सौ वर्षों के बाद भी नुटु जैसे लोगों की वैसी ही हालत है।

दोपहर को मुझे मैदान के एक किनारे बिठाकर नुटु ईंट के भट्ठे में काम करने लगा।

"तुम इस पेड़ के नीचे थोड़ी देर बैठो, मै काम करके आता हूँ।" उसने कहा।

ज्योतिर्मय सेन को उस दिन बेहद भूख लगी थी। भूख किसे कहते हैं, इसका अनुभव उन्होंने इसके पहले कभी नहीं किया था। विष्टु मण्डल के ईंट के भट्ठे में काम करनेवाले लोग भोर में ही पानीदार बासी भात लेकर पहुँच जाते थे। दोपहर में एक घण्टे के लिए छुट्टी मिलती थी। उसी समय कोई चाहे तो घर जाकर भात खा सकता था। सारा दिन सर पर ईंट रखकर गाड़ी में लादनी पड़ती थी और दिन-भर की मजदूरी तीन आने मिलते थे।

उस तीखी धूप मे उस दिन एक बबूल के पेड़ के नीचे बैठे-बैठे वह नीम

---

१. आदमी विश्वास के सहारे जियेगा।

बेहोशी की हालत में थे। हो-हल्ला सुनकर ज्योतिर्मय सेन की नींद टूट गयी और उन्होंने देखा कि नुटु किसी से झगड़ रहा है।

"अगर नकद पैसा नहीं देना था तो आपने पहले क्यों नहीं बताया ?" जो व्यक्ति ईंट के भट्ठे का मैनेजर था, वह भी बड़ा ही तुनक-मिजाज था।

उसने कहा, "तुम्हें नकद पैसा दे दूँ और कल तुम आना बन्द कर दो तो फिर मैं क्या करूँ ? तुम क्या सोचते हो कि मैं तुम्हें नहीं पहचानता ? तुममें दायित्व-बोध का नामोनिशान तक नहीं है। तीन आना पैसा अगर मिल जाये तो तीन दिनों तक बबुआना ठाठ से बैठे रहोगे। तब तुम्हारा अता-पता नहीं चलेगा···"

"मेरा उचित बकाया आप नहीं चुकाइएगा ?"

वह आदमी पैसा देता था इसलिए किसी का गुस्सा क्यों बरदाश्त करता ?

"सात दिनों के बाद आना, तब दूंगा। अभी जाओ, काम करो।"

"मगर मुझे पैसे की अभी तुरन्त जरूरत है। मेरा साथी वहाँ बैठा हुआ है। न उसने कुछ खाया है और न मैंने ही। पैसा नहीं दीजिएगा तो हम लोग क्या खायेंगे ? हरिनाम का लड्डू खायेंगे ? हम लोगों को भूख नहीं लगती है क्या ?''

उस आदमी की निगाह इतनी देर के बाद बबूल के पेड़ की ओर गयी और उसने मुझे देखा।

मैं जमीन पर लेटा हुआ था। हो-हल्ला सुनकर तब उठकर बैठ गया था।

"वही है, आँख खोलकर उसकी ओर देखिए। वह मेरे जैसा गरीब का लड़का नहीं है, बल्कि बड़े आदमी का लड़का है। मुझसे दोस्ती हो गयी है, इसीलिए मेरे घर पर आया है, वरना वह मेरे साथ-साथ भूखा क्यों रहता ? उसे कौन-सी मुसीबत है ?"

वह आदमी मुझे उस हालत मे देखकर हतप्रभ हो गया। मैदान में सन्नाटा रेंग रहा था। उसी मैदान से मिट्टी काटकर ईंटें बनायी जाती थी। दूर भट्ठे की आग धधक रही थी और धुएँ का गुबार उड़ रहा था। और उसके एक किनारे गोंदरी की एक चाल थी। वही चाल विष्टु मण्डल के ईंट के भट्ठे का दफ्तर था। सिर्फ नुटु ही नहीं, बल्कि उसके जैसे बहुत-से लड़के विष्टु मण्डल की ईंट ढोते थे और उनकी हड्डी-पसली ढीली हो गयी थी। विष्टु मण्डल के लिए जी तोड़ मेहनत कर और तीन आने पैसे उपार्जन कर मयनाडांगा के जवान बलिवेदी पर चढ़ रहे थे। इतने दिनों के बाद उन बातों की याद आने पर ज्योतिर्मय सेन स्वयं को अपराधी महसूस करते हैं। अब उनके हाथ में प्रतिरोध की ताकत है। आज यदि वह चाहे तो हुक्म दे सकते हैं कि मजदूरों को रोजाना मजदूरी नकद देनी पड़ेगी। या वह इस तरह का कानून पास कर सकते हैं कि

जो मजदूर रोजाना मजदूरी पर खटते हैं उनके साथ न्याय हो रहा है या नहीं, यह देखने के लिए मयनाडांगा में एक लेबर अफसर या वेलफेयर अफसर रहेगा। हो सकता है कि इससे कोई बात नही बनती। चाहे जिसे भी मयनाडांगा में वेलफेयर अफसर बनाकर भेजते, हो सकता है कि वही रिश्वत लेकर मजदूरी की अपेक्षा मालिक की ही सुख-सुविधा का अधिक खयाल रखता। ऐसा बहुत बार हो चुका है, हो रहा है और होता रहेगा।

उस दोपहर जब नुटु, मैं और वैकुण्ठ—तीनों तीन आने पैसे से उदर-पूर्ति की कोशिश कर रहे थे, नुटु की माँ वहाँ आकर उपस्थित हुई।

माँ चाहे गरीब हो चाहे अमीर, लेकिन माँ, माँ ही होती है। मैंने अपनी माँ को देखा नही था लेकिन नुटु की माँ को मैंने देखा था। उसका पति लापरवाह आदमी था। अगर कहीं खाना मिल जाता था तो दीन-दुनिया को भूल जाता था। किसी के घर से पूरी छनने की गन्ध-भर मिलने की देर थी तब दिगम्बर किसी के वश में नही रहता था। सीधे उस मकान में जाकर उपस्थित होता था और अपने दाव से बाँस काटना शुरू कर देता था या कुदाल लेकर मिट्टी खोदना।

जो पहचान नहीं पाते थे वे दिगम्बर से पूछते थे, "तुम कौन हो जी ?"

दिगम्बर इस तरह दाँत निपोर देता था जैसे वह कृतार्थ हो गया हो। "जी, मुझे आपने पहचाना नही, मैं दिगम्बर हूँ···"

मात्र दिगम्बर कहने से न पहचानना ही स्वाभाविक था। लेकिन फिर भी लोग दिगम्बर को पहचानते थे। उसका हाव-भाव और उसका चेहरा ही उसका परिचय दे देता था। उसको देखने के बाद परिचय की जरूरत नही पड़ती थी। बंगाल के संख्यातीत भूमिहीन खेत-मजदूरों मे से वह एक था। वैसे मजदूरों को जब खेत में मजदूरी करने का काम नही मिलता था, तब वे वीरचक के विष्टु मण्डल के ईंट के भट्ठे में काम करके तीन आना रोजाना के हिसाब से कमाते थे। बरसात के मौसम में वह काम भी बन्द हो जाता था। तब वे श्मशान-यात्रा में शरीक होते थे। कही किसी के मरने की खबर सुनते ही श्मशान-यात्रियों के दल में सम्मिलित हो जाते थे। बड़े लोगों की लाश होती तो पूछना क्या !

इस किस्म का जिसका पति था और नुटु जैसा जिसका पुत्र था, वैसी औरत को अगर ठीक से नही देखा जाये तो पहचानना मुश्किल होता है। बंगाल के कितने ही घरो में ऐसे लोग जीवन का यन्त्र एक हाथ से परिचालित कर रहे हैं, उसकी शायद कोई गिनती नही है। उसी के प्रतिनिधि हैं दिगम्बर, नुटु, वैकुण्ठ और नुटु की माँ। वे लोग सवेरे भात बनाते थे और उस भात को दोपहर में भी खाते थे और रात मे भी। लेकिन भात के साथ दाल नसीब नही होती थी।

चुटकी-भर नमक मिलता था और उससे एक थाल भात खाना पड़ता था। जो बड़े आदमी होते थे वे भात के साथ दाल खाते थे, जरूरत पड़ती तो तरकारी भी खाते थे। श्राद्ध-घर मे निमन्त्रण मिलने पर दिगम्बर को बीच-बीच में आलू, कोंहड़ा, परवल वगैरह मिलते थे। खाकर आने के बाद कभी-कभी उसके बारे में वह बातचीत भी करता था।

दिगम्बर कहता, "आलू-परवल का दम, छेने का पुलाव और साग का भुजिया खाया।"

सुननेवाले लोग कहा करते थे, "और क्या-क्या था ? और कुछ भी नहीं खाया ?"

दिगम्बर और भी अधिक उत्साहित होकर कहता, "चने की दाल थी···"

"और भुजिया ? सिर्फ साग का ही भुजिया मिला ? बैंगन का भुजिया नहीं मिला था ?"

"नहीं, बैंगन का भुजिया नहीं बना था।"

बैंगन का भुजिया नही बना था, यह सुनकर उसके दोस्तों का उत्साह ठण्डा पड़ जाता था और वे कहते थे, "फिर निमन्त्रण क्या ? सिर्फ चने की दाल से कैसे खाया ? भुजिया न रहे तो दाल रुचती है कही ? और साग का भुजिया भी कोई भुजिया है !"

जो लोग भोजन-परिचर्चा किया करते थे उन सबों की हालत दिगम्बर की हालत जैसी थी। उनमें से सभी के भाग्य मे नमक-भात ही लिखा रहता था। लेकिन उनकी युक्ति कुछ और ही थी। वे कहा करते थे, "निमन्त्रण-घर मे खराब खाना किस दुख से खायेंगे। जो निमन्त्रण देगा उसे कलिया-पुलाव खिलाना ही पड़ेगा···"

दिगम्बर को भोजन की परिचर्चा बड़ी सुखद प्रतीत होती थी। कभी-कभी परिचर्चा करते-करते तर्क की नौबत आ जाती। तर्क की परिणति अन्ततः गाली-गलौज और मारपीट में होती थी।

"तुम भोजन के बारे मे क्या समझते हो ? क्या जानकारी है तुम्हारी ?"

दिगम्बर का गांजा पीने का दोस्त तारक दे था। तारक दे ने कहा, "मुझे जानकारी नही है और तुम सब-कुछ जानते हो ? मालूम है, हम लोग चांदपाड़ा के दे हैं। हम लोगो के घर में जगद्धात्री पूजा के अवसर पर तीन हजार आदमियों के लिए पत्तलें बिछा करती थी···"

नुटु के बाप के पुरखों मे नामी-गरामी कोई आदमी नही हुआ था। फिर भी उसने कहा, "मुंह से वैसी बड़ाई हर कोई कर सकता है। खिलाकर देखो तो समझूं कि बहुत बड़े खिलानेवाले आये !"

"तुमको क्यों खिलाऊँ ? तुम मेरे कौन होते हो जो खिलाऊँ ? तुम मेरे

मेहमान हो या जाति-बिरादरी के आदमी ? तुम्हें तो लाश जलाने पर भोज मिलता है···"

उसकी बात समाप्त होते न होते दिगम्बर का माथा गरम हो गया। गाँजे के दम से उबला हुआ रक्त था। वह रक्त बड़ा शैतान होता है। जब उसमें उबाल आ जाता है तो सँभालना मुश्किल होता है। उसके हाथ के पास ही गाँजे की चिलम थी। उसी को उठाकर तारक दे के माथे पर दे मारा। फिर रक्त का फव्वारा छूटने लगा। हड़बड़ाता हुआ दिगम्बर घर आया, अपने कपड़े में लगे रक्त के छींटो को धो डाला और दिन दसेक के लिए कहीं लापता हो गया। पुलिस को उसका अता-पता नही चला। फिर जब तारक दे का जख्म भर गया, दिगम्बर बाहर निकला, तब पुलिस उसका क्या कर लेगी ? तब तारक दे और दिगम्बर में पुनः मेल-जोल हो जाता था। फिर वे गाँजे के अड्डे पर एकसाथ बैठकर भोजन-परिचर्चा करने लगते थे।

दिगम्बर जब दुबारा निमन्त्रण खाकर लौटता तो कहता, "आलू-परवल का दम खाया···छेने का पुलाव खाया···साग का भुजिया खाया···"

"और क्या-क्या खाया ? और कुछ नहीं मिला ?"

नुटु के घर के लोगों के लिए न खाने की कोई व्यवस्था थी और न उन्हें कोई बंधी-बँधायी आय ही होती थी। छप्पर पर फूस नही था, हाँड़ी में चावल नहीं, महाजन का कर्ज चढ़ा रहता था। नुटु की माँ की तबीयत खराब रहा करती थी। वैसी हालत में मेरे जैसा एक अजनबी बालक वहाँ पहुँचा और उसे राज-सम्मान मिलने लगा।

नुटु की माँ अचानक बीरचक के ईंट के भट्ठे में आकर उपस्थित हुई।

मुझे देखकर पूछा, "नुटु ने कुछ खाया है, बेटा ?"

मैंने कहा, "नही। न नुटु ने कुछ खाया है और न मैंने ही।"

"उफ् ! मैंने हाँड़ी चढ़ा दी है। मगर जब तक नुटु नहीं खायेगा, तब तक मैं मुंह मे कौर नही रख सकती हूँ। जरा नुटु को बुला दो।"

नुटु बहुत दूर ईंट का बोझा ढो रहा था। मैं उसके निकट गया और उसे पुकारा।

लेकिन माँ पर नजर पड़ते ही नुटु झल्ला उठा।

"तुम क्यों आयी ? किसलिए आयी ? मैंने कह ही दिया था कि तुम लोगों का चेहरा देखना नही चाहता हूँ।" उसने कहा।

नुटु की माँ ने कहा, "तुम न खाओगे तो मैं कैसे खाऊँ ? मुझे भूख लगी है, सुबह से मुँह मे एक दाना भी नही डाला है। मैं भी तो इन्सान ही हूँ। आयु भी ढल चुकी है···"

"फिर तुम लोग मेरे वैकुण्ठ को क्यों कसाई के हाथों बेचने जा रहे थे ?"

वैकुण्ठ तब पेड़ के नीचे बैठा ऊँघ रहा था। उसकी चर्चा छिड़ते ही वह शायद समझ गया और उसने अपनी पूँछ हिलायी। गले के घुंघरू टुन-टुन कर बज उठे।

हम लोगों ने आँख उठाकर वैकुण्ठ की ओर देखा। अपनी-अपनी भूख के कारण हम उसकी बात भुला बैठे थे। जिसके कारण इतना काण्ड हो चुका था वह मेरे पास ही तब चुपचाप बैठा हुआ था, इसका मुझे पता ही नहीं था।

मैंने कहा, "देखो, वैकुण्ठ को बड़ी ही भूख लगी है। उसने सवेरे से कुछ नहीं खाया है।"

शायद वैकुण्ठ के बारे में ही सोचकर नुटु में थोड़ी नरमी आयी। "वह बातचीत नहीं कर सकता है, इसीलिए तुम लोग उस पर गुस्सा उतारती हो।" उसने कहा।

नुटु की माँ ने कहा, "मैं तो कह रही हूँ कि उसे भी खिलाऊँगी। हांडी में दो पैला चावल डाला है।"

"उसको ज्यादा भात देना पड़ेगा।"

"दूँगी। मैंने कब कहा कि नहीं दूँगी?"

फिर नुटु को जैसे मेरे बारे में खयाल आया। "तुम्हे बड़ी ही भूख लगी होगी?" उसने पूछा।

मैंने कहा, "और तुम्हें भूख नही लगी है क्या?"

नुटु ने कहा, "मेरी बात छोड़ो। मुझे सहने की आदत हो गयी है..."

फिर उसने माँ की ओर देखा और कहा, "चलो, चलकर निगलूं। इस अधम पेट के कारण निगलना ही पड़ेगा। आज वैकुण्ठ के कारण ही घर चल रहा हूँ। जानते हो ज्योति, मैं अपने बारे मे नही सोचा करता हूँ और न माँ-बाप के बारे में ही। यह वैकुण्ठ ही मेरे लिए विपत्ति का कारण बन गया है। इसी के कारण मुझे खटकर खाना पडता है वरना बहुत पहले ही घर छोड़कर मैं निकल गया होता..."

वैकुण्ठ न रहता तो नुटु कहाँ चला जाता, यह उसने नही बताया। सचमुच, जैसे वैकुण्ठ के लिए ही वह अपने बाप के घर में अटका पड़ा था। जैसे वास्तव मे यह गृहस्थी उसकी गृहस्थी नही थी। मानो दिगम्बर ने ही अपनी इच्छा से और अपने सुख के लिए यह गृहस्थी बसायी थी।

नुटु की माँ मेरी बगल से चली जा रही थी।

नुटु की माँ ने लड़के के कारण अपने मुँह में सारा दिन एक भी दाना नही डाला था। उसका चेहरा उतरा हुआ था।

मेरी ओर मुड़कर नुटु की माँ ने कहा, "देखा न बेटा, मेरे लड़के का गुस्सा। जैसा आदमी है, लड़का भी वैसा ही है। दोनों के दोनो धमकी देकर घर से

निकल पड़ते हैं और दुख-दर्द मुझे झेलना पड़ता है। मानो दुनिया-भर का पाप मैंने ही किया है। मानो मैं मिट्टी का लोंदा हूँ···"

नुटु की माँ सुबकने लगी। मैं तय नहीं कर सका कि क्या करूँ। मैं नुटु के पीछे-पीछे चलने लगा।

इसी तरह बेटे से माँ का झगड़ा होता था और इसी तरह फिर मेल-जोल हो जाता था। इसी को शायद गृहस्थी कहते हैं। सम्भवतः गृहस्थी का यही नियम है। भाव और अभाव। भाव और अभाव के घात-प्रतिघात से संसार का पहिया आदिकाल से आगे की ओर घूम रहा है—इंजन के पिस्टन की तरह। रेलवे स्टेशन पर अनेक बार खड़ा होकर इंजन का चलना देखा है। पिस्टन एक बार आगे की ओर जाता है और एक बार पीछे की ओर। किन्तु पहिये आगे की ओर ही बढ़ते जाते हैं।

नुटु जब खाने बैठा, उसका सारा गुस्सा दूर हो चुका था।

मेरी ओर देखकर उसने कहा, "लो, पेट भरकर खा लो।"

नुटु की माँ ने कहा, "बेटा, तुम राजा के लड़के हो। मेरे घर में मरने क्यों आये ?"

मेरे मन में अपराध का बोध होता था। क्यों इनके घर में उस भात को खा रहा हूँ जो इतने कष्ट से उपार्जित किया जाता है। इन लोगों का अनाज बहुत परिश्रम से उपार्जित अनाज है। उस अनाज मे भागीदार बनने के कारण ज्योतिर्मय सेन को लज्जा का बोध होता था।

ज्योतिर्मय सेन कहता, "अब मैं यहाँ से चला जाऊँगा भाई।"

"क्यों ? तुम्हें खाने की तकलीफ होती है ?"

ज्योतिर्मय सेन कहता, "खाने की तकलीफ नहीं होती है, मुझे अच्छा ही लगता है मगर तुम्हारे माँ-बाप क्या सोचते होंगे ?"

यह बात सुनते ही नुटु को गुस्सा हो आता था। वह एकाएक चिल्ला पड़ता, "माँ, ए माँ, कहाँ चली गयी ?"

लड़के की पुकार सुनकर माँ दौड़ी-दौड़ी आती थी। "क्या बेटा, और भात चाहिए क्या ?"

नुटु कहता, "भात देने की कोई जरूरत नही है। तुमने फिर ज्योति से कुछ कहा तो मै तुम्हें मार डालूँगा।"

माँ उसकी बात सुनकर हैरत में आ जाती थी। "मैंने उसे क्या कहा ?"

मैं कहता, "नहो, मौसीजी, नुटु की बात पर आप कान न दें। वह पागल है। पागल की बात पर आप ध्यान मत दें।"

नुटु कहता, "पागल-वागल कहने से कुछ नहीं होगा। यह मत सोचना कि मैं कुछ समझता ही नही हूँ। मैं सब समझता हूँ। इस राक्षसी का सारा गुस्सा

वैकुण्ठ और तुम पर है।"

"बाप रे, तुम क्या वकते हो !"

नुटु कहता, "ठीक ही कह रहा हूँ। मैं रोजगार करता हूँ और ये लोग खाते है। इसमें तुम नाहक दखल क्यों करती हो? मैं क्या बावूजी की कमाई खाता हूँ? सुनूँ तो सही, बावूजी कितना पैसा कमाकर लाते है? इस महीने बावूजी कितना पैसा कमाकर लाये हैं?"

अपने जीवन में ज्योतिर्मय ने सुख कम नही जिया है। जब-जब वह दिल्ली गये हैं या कलकत्ते के किसी होटल में पहुँचे है—चाहे वह सरकारी मर्यादा के कारण हो या गैर-सरकारी मर्यादा के कारण—आराम और विलासिता को अपना प्राप्य सोचकर भोगा है।

आज भी उसी तरह का सुख और विलासिता वे जी रहे हैं। आज सवेरे से ही उनसे सम्मान के लिए प्रचुर आयोजन किया गया है। नीचे से रसोई की खुशबू आ रही है। शंकर है जो घण्टे-घण्टे वहाँ आता रहता है। दरअसल उसका उद्देश्य है निकटता वनाये रखना। पास रहने से उनके मन में स्थान पा सकेगा। मन में स्थान पाने के लिए ही हर कोई उतावला है। लेकिन मन पर अधिकार पाना क्या दुनिया में इतना आसान है? और एक बार मन पर अधिकार पा लेने से ही क्या हमेशा के लिए कोई उस मन पर शासन कर पाता है?

मैं जानता हूँ कि किसी की राजनीति का हमेशा बोलवाला नही रहता है। आज मैं मुख्यमन्त्री हूँ इसीलिए आज मेरा इतना सम्मान हो रहा है। लेकिन पाँच साल बाद अगर मैं चुनाव में हार जाऊँ और दूसरा मुख्यमन्त्री यहाँ आये तो उसे भी वही सम्मान मिलेगा जो सम्मान आज मुझे यहाँ मिल रहा है।

दरअसल दुनियादार लोगों के लिए उपाधि ही सबसे बड़ी चीज होती है। उपाधि रहेगी तो सम्मान मिलेगा। अन्ततः अपने इतने दिनों के अनुभवों से मैंने इस बात को जाना है। किन्तु आज जो ताजा है कल वही बासी पड़ जायेगा। जो उपाधि हर कोई हासिल कर लेता है, उसका मूल्य ही क्या रह जाता है? उस उपाधि का सम्मान ही कितना होता है? मुख्यमन्त्री का पद एक ही है। भाग्यवश यह एक पद है। एक पद है इसीलिए सम्पूर्ण सम्मान केन्द्रीभूत होकर मुझ पर न्योछावर हो रहा है। अन्यथा क्या होता?

बहुत दिन पहले एक बात पढी थी। वास्तव में जीवन में वहुत कुछ पढ़ने के लिए और पढ़कर कण्ठस्थ करने के लिए हुआ करता है। वह पंक्ति मुझे याद है। यह बात साहित्य से सम्बन्ध रखती है। दरअसल ठीक-ठीक साहित्य से नहीं बल्कि कथा-साहित्य से। किसी लेखक ने लिखा है—"Tell me what fiction

is, and I will tell you what truth is."

इतने दिनों तक राजनीति मे रहने और इतने लम्बे अरसे तक के राजनीति के इतिहास के अध्ययन के आधार पर मैं कह सकता हूँ, 'Tell me what politics is, and I will tell you what treachery is."[2]

यह बात यदि मैं किसी मीटिंग मे कहूँ तो सभी मिल-जुलकर मेरा यह पद छीन लें। वास्तव में मैंने इस पद को पाने के लिए क्या नहीं किया है? अयोग्य रहने के बावजूद मुझे कितने ही व्यक्तियों को नौकरी देनी पड़ी है। केवल पाँच वर्षों के बाद मत पाने के लोभ के चलते मैं एक के बाद दूसरा अन्याय करता आ रहा हूँ।

आज अपने मन्त्रिमण्डल के प्रत्येक सदस्य से क्या मैं पूछने का साहस कर सकता हूँ कि आप लोग छाती पर हाथ रखकर बतायें कि आपने वोट पाने के लिए कितना अन्याय किया है, आप कितना झूठ बोल चुके हैं, आपने कितने बेनामी परमिट और लाइसेंस दिये हैं, १९४७ ईस्वी के पन्द्रह अगस्त के पहले आपके पास कितनी सम्पत्ति थी और आज बीस वर्षों के बाद आपकी सम्पत्ति की परिधि का कितना विस्तार हुआ है?

मेरे वित्तमन्त्री ने कहा था, "नहीं ज्योतिदा, आप इन बातों को मत उठायें।"

मैंने पूछा था, "क्यों नहीं उठाऊँ? मैं अगर न भी उठाऊँ, फिर भी हमारे मतदाता इन प्रश्नों को किसी-न-किसी दिन उछालेंगे ही।"

वित्तमन्त्री ने कहा था, "नहीं, वे लोग नहीं उठायेंगे। उस बात के लिए आप निश्चिन्त रहें ज्योतिदा।"

मैंने पूछा था, "लेकिन पाँच वर्षों के बाद हम लोगों को मतदाताओं के दरवाजे पर जाना पड़ेगा।"

वित्तमन्त्री ने कहा था, "इसका डर नहीं है। इस देश के सभी आदमी गधे के गधे हैं। यह बात आपको मालूम ही है ज्योतिदा। हम लोग बहुसंख्यक रहेंगे ही।"

"लेकिन अखबारों और समाचार-पत्रों को कौन रोकेगा?"

वित्तमन्त्री का एक व्यक्तिगत विशाल कारखाना दमदम में है।

उसने कहा, "आप क्या कह रहे हैं ज्योतिदा, अखबारो को हम कितने रुपयों का विज्ञापन देते हैं, मालूम है? वह क्या यों ही दिया जाता है?"

"लेकिन यह भी तो अन्याय ही है शम्भु! यह भी तो एक तरह से लोगों

---

१. तुम अगर मुझे बता दो कि उपन्यास क्या है तो मैं बता दूँगा कि सत्य क्या है।
२. तुम अगर बता दो कि राजनीति क्या है तो मैं बता दूंगा कि विश्वासघात क्या है।

की ग्रांख में धूल झोंकना हुग्रा। यह भी एक तरह का विश्वासघात है..."

शम्भु मेरी तुलना में ग्रधिक सफल व्यक्ति है। व्यवसाय की दुनिया में वह बीस सालों के दरमियान बहुतों के घर छाकर करोड़पति हो गया है। वह हँसने लगा ग्रौर कहा, "ज्योतिदा, ग्राप इतने दिनों से राजनीति कर रहे हैं, ग्रापको हम लोगों ने मुख्यमन्त्री बनाया है ग्रौर ग्राप इसे विश्वासघात कह रहे हैं। ग्रौर जब ग्रापने विश्वासघात की बात उठायी तो यह बताइए कि स्टालिन ने त्रात्स्की की हत्या कर विश्वासघात नहीं किया? राजनीति में विश्वासघात क्या कम है? हिटलर ने विश्वासघात नहीं किया? सिकन्दर महान् ने विश्वासघात नहीं किया? विश्वासघात के कारण ही जूलियस सीजर की हत्या नहीं हुई थी? ग्राइजनहावर ने विश्वासघात नहीं किया था? इतनी ही बात क्यों, हम लोगों के महात्मा गांधी ने विश्वासघात नहीं किया था? ग्रन्यथा उनकी हत्या ही क्यों की जाती? ग्रौर नेहरू की बात? ग्रौर इन्दिरा गाधी की बात छोड़ ही दें..."

मै शम्भु की बात सुनकर चुप कर गया। मेरे मन्त्रालय के लोग ऐसे हैं। ग्रौर ये ही लोग जनता की सभा में त्याग, महानता ग्रौर ज्ञान की बातें बघारते हैं।

भाग्यवश मन्त्रिमण्डल की मीटिंग थी, इसीलिए राहत मिली। समाचार-पत्रों के संवाददाता वहाँ मौजूद नहीं थे। शम्भु ने कहा, "स्टाफ रिपोर्टर से डरने की बात नहीं है ज्योतिदा! वे लोग हमारे हाथ में हैं। उसका सारा इन्तजाम ठीक है। जो हम लोगों के दल में नहीं रहेगा उसको हम लोगों का विज्ञापन नहीं मिलेगा। ग्रौर विज्ञापन ही क्या, साल में उन्हें हम ग्रमरीका, इंग्लैण्ड, जर्मनी ग्रौर रूस घूमने का मौका देते हैं..."

बहुत बार मैंने सोचा है कि ग्रब कितने दिन, कितने महीने ग्रौर कितने वर्ष?

लेकिन जितना ही मैंने सोचा है, उतना ही मुझे ग्राराम महसूस हुग्रा है। मुझे श्रद्धा मिली है, सम्मान मिला है ग्रौर भोग भी मिला है। जीवन का उपभोग करने के लिए जितने प्रकार के ग्राधुनिक उपकरण इस विश्व मे मौजूद हैं—मैंने सबको भोगा है। लेकिन फिर भी डर बना रहता है, सोचा है, ग्रौर कितने दिन, ग्रौर कितने महीने ग्रौर कितने वर्ष?

"Tell me what fiction is, and I will tell you what truth is."

लेकिन मेरे दिमाग में एक ही उत्तर चक्कर काट रहा है—"Tell me what politics is, and I will tell you what treachery is."

छः

दिगम्बर के गाँजे की अड्डेबाजी के दोस्त तारक दे का दिमाग उस दिन बड़ा ही गरम हो गया। नशे की झोंक में वह अनाप-शनाप बकने लगा। बहुत दिनों से किसी लाश को जलाने का उन्हें मौका नहीं मिला था।

तारक दे ने कहा, "साले आदमी आजकल मर ही नहीं रहे हैं। लगता है सब-के-सब अमर हो गये हैं।"

दिगम्बर ने कहा, "तुम साले खाते-खाते एक दिन दुनिया से विदा हो जाओगे।"

तारक दे को एकाएक गुस्सा हो आया। "मुंह सँभालकर बात किया करो। दिगम्बर ! हम लोग चाँदपाड़ा के दे हैं।"

दिगम्बर को तुरन्त गुस्से में आ जाने की बीमारी पहले से ही थी। एक तो भोजन का लोभ और उस पर क्रोध का उबाल। गाँजा पीते-पीते वह उठकर खड़ा हो गया। "मुझ पर तुम धौंस जमा रहे हो ! मैं कौन हूँ, मालूम है?" उसने कहा।

"मालूम है, तुम साले गँवार हो, गँवार..."

"क्या बोले ?"

दिगम्बर तब गाँजे का भरपूर दम खींच चुका था। उसके दिमाग में सरूर छाया हुआ था। उसी हालत में गाँजे की चिलम तारक दे की ओर फेंकी। चिलम तारक दे की नस में जाकर लगी और वह तुरन्त बेहोश होकर गिर पड़ा।

"खून, खून..."

जमात के जितने लोगों ने गाँजे का दम लिया था, उन्हें होश आया। तारक दे का चेहरा लहू-लुहान हो गया था। यह देखकर सबों ने भागना शुरू किया। दिगम्बर ने दौड़ लगायी। विष्टु सामन्त की ईंट की चाल को पार करके मयनाडाँगा के गड्ढे को पार किया और रेल की पटरी की ओर दौड़ लगाने लगा। तब उसे कुछ होश नहीं था। दिगम्बर बेतहाशा भागा जा रहा था। पत्नी कहाँ है, लड़का कहाँ है, यह बात सोचने की उसे उस वक्त फुर्सत नहीं थी। वह सीधे एक चलती हुई मालगाड़ी के पास पहुँचा और छलाँग लगाकर उसके अन्दर पहुँचा और लापता हो गया।

इस तरह लापता हो जाना दिगम्बर के लिए कोई नयी बात नहीं थी। जिसका न आगे नाथ है और न पीछे पगहा, उसके लिए घर और बाहर एक जैसा होता है। घरवाले मरें या जिन्दा रहें, उसका उसे खयाल नहीं रहता है। फिर किसी दिन दिगम्बर आकर उपस्थित हो जाता था।

"कहाँ हो जी, तुम लोग कहाँ हो ?"

ऐसा भाव रहता था जैसे दुनिया को जीतकर लौटा हो। नुटु की माँ अपने मर्द के चेहरे को देखकर अवाक् हो जाती थी।

दिगम्बर कहता, "क्यों जी, तुम लोग कैसे हो?"

नुटु की माँ को भी गुस्सा हो आता था। "मरी हूँ या जिन्दा, यही देखने आये हो!"

दिगम्बर कहता, "गुस्सा क्यों हो रही हो जी! खबर मिली कि तारक दे जिन्दा है, इसी से लौट आया। वह पट्ठा मुझसे मजाक करने आया था। वह चाँदपाड़ा का दे है तो उससे मेरा क्या आता-जाता है? मैंने उससे कर्ज लिया है या उसका दिया हुआ खाता हूँ। गाँजे का एक दम लेने में जिसकी आँखें चौंधिया जाती हैं वह चला है मेरी बराबरी करने..."

फिर उसे एकाएक जैसे कुछ याद हो आता और वह पूछता था, "नुटु कहाँ है? नुटु..."

"नुटु की खोज-खबर करने से तुम्हें क्या फायदा होगा? तुम उसको खिलाओगे..."

"फिर गुस्सा दिखा रही हो। कुछ दिन नहीं था तो तुम लोगों के लिए अच्छा ही हुआ जी। तुम्हारा चावल बच गया। माँ-बेटे ने ठूँस-ठूँसकर मेरे हिस्से का भात खाया है..."

"क्या खाया है, देखोगे?"

इतना कहकर नुटु की माँ झटपट रसोईघर को खोलकर दिखाती थी। दिगम्बर देखता था। न चावल रहता था, न दाल और न आलू-कोंहड़ा ही। रहता था अरबी का साग। चूल्हे पर एक हाँड़ी अरबी का साग सीझता हुआ मिलता था।

दिगम्बर को गुस्सा हो आता था। "मैंने तुमसे कहा है न कि मुझे अरबी खाना अच्छा नहीं लगता है। तुम फिर अरबी का साग बना रही हो!"

नुटु की माँ कहती थी, "खाना पसन्द नहीं है तो मत खाना। हम लोगों को अच्छा लगता है, इसीलिए खाते हैं।"

दिगम्बर मजाक समझ नहीं पाता था। "मुझसे फिर मजाक हो रहा है," वह कहता, "लेकिन मैं कहे देता हूँ कि अबकी जाऊँगा तो लौटकर नहीं आऊँगा।"

इतना कहकर वह मिट्टी के ओसारे पर बैठ जाता था। "दो," वह कहता, "चाहे अरबी रहे या घुंइयाँ, दो, खाऊँगा। मान लो, मुझमें समझ नहीं है, गर पेट तो मजाक नहीं समझेगा।" और वह अरबी का ही गरम-गरम साग गलने लगता था।

सात

उसी तारक दे से दूसरे दिन फिर गहरी छनने लगती थी। तारक दे फिर से अन्तरंग मित्र हो जाता था। एक ही चिलम से दोनों गांजा पीते थे और जी खोलकर हँसते थे। एक ही गाँव में आस-पास रहने के कारण जितना झगड़ा होता था उतना ही दोनों में मेल रहता था। दोनों की हालत एक जैसी थी। पेशा भी दोनों का एक ही था। कोई मरता तो अच्छा खाना नसीब होता था, और अगर नहीं मरता था तो नहीं जुटता था।

तारक दे कहता, "साले डॉक्टर लोग हो डाकू हो गये हैं, आजकल किसी को मरने ही नहीं देते।"

मयनाडांगा के बाबुओं के घर में बूढ़ों पर नजर पड़ने पर वे लोग उनकी ओर टकटकी लगाकर देखा करते थे। अबकी यह बूढ़ा मरेगा! बाबू लोगों के घर के बूढ़े मालिक के मरने की प्रतीक्षा वे लोग बहुत दिनों से कर रहे थे। बूढ़ा पके आम की तरह टपकने-टपकने की हालत में था। जैसे ही बिस्तर पर गिरेगा कि चल बसेगा।

अचानक खबर मिली कि बूढ़ा मालिक बीमार है।

दिगम्बर दरबान के पास जाकर पूछता था, "क्यों भाई, तुम्हारे बूढ़े मालिक का क्या हालचाल है?"

दरबान कहता, "उनकी तबीयत खराब है, डॉक्टर देखने के लिए आया करते हैं।" इसी तरह रोज-रोज जाकर दिगम्बर खबर पूछ आया करता था। आखिर जब साँस तेज चलने लगी तो वह वहाँ से हिलने का नाम नहीं लेता था। फाटक के सामने के बड़े पाकड़ के पेड़ के तले बैठा रहता था और पता लगाता रहता था कि बूढ़े मालिक की हालत कैसी है। डॉक्टर वहाँ से निकलता तो पता लगाता था, "बूढ़े मालिक कैसे हैं डॉक्टर साहब?"

यह बात सिर्फ दिगम्बर के साथ ही नहीं थी बल्कि तारक दे, शशी हाजरा, निमाईदास वगैरह इसी तरह पड़े रहते थे। हर कोई गिद्ध की तरह नजर गड़ाये बैठा रहता था। मयनाडांगा के गांजे की मजलिस के जितने यार-दोस्त थे, खबर पाकर एक-एक कर सभी आने लगे।

"क्या दरबानजी, क्या खबर है? तुम्हारे बूढ़े मालिक का क्या हाल-चाल है?"

अन्त में ऐसी हालत हो गयी कि खुशी के मारे वे चिलम-पर-चिलम गांजा उड़ाने लगे। लेकिन बूढ़ा मालिक मरने का नाम नहीं ले रहा था। जब हालत बहुत बदतर हो गयी तो बूढ़े मालिक के लड़के बाप को लेकर कलकत्ता चले गये। बूढ़ा मालिक मरा लेकिन मयनाडांगा में नहीं। कलकत्ते में ही उसका

अन्तिम संस्कार हुआ, क्रिया-कर्म हुआ और लोगों ने भरपूर भोज खाया। श्राद्ध बड़े ठाट-बाट से मनाया गया। हर महल्ले के लोगों को न्योता मिला मगर दिगम्बर, तारक दे, शशी हाजरा, निमाईदास वगैरह को बुलाहट नहीं आयी।

जब ऐसी हालत थी ठीक उसी वक्त मैं मयनाडांगा पहुँचा था।

वह जैसे बिल्कुल विपरीत परिस्थिति थी। ज्योतिर्मय सेन के घर की जैसी हालत थी उससे बिल्कुल विपरीत हालत यहाँ की थी। एक ओर प्रचुरता थी और एक ओर शून्य। या शून्य भी उससे अच्छा कहा जा सकता है। इसे एक ही नाम दिया जा सकता है और वह है 'माइनस'। नुटु और दिगम्बर उसी माइनस दर्जे के व्यक्ति थे—वैसे व्यक्ति जिन्हे देखे बिना आदमी का उलटा पहलू दृष्टिगोचर नहीं हो सकता है।

इसीलिए जब मन्त्रिमण्डल की पहली बैठक हुई तो मैंने कहा, "हम लोगों का पहला काम होगा—जो लोग शत-प्रतिशत माइनस है, उनकी हालत सुधारना, उन्हें 'प्लस' के पर्याय से जोड़ना···"

मन्त्रालय के कई सदस्यों ने आपत्ति की थी, "सर, यह आपकी ज्यादती है। बड़े आदमी भी गरीब है लेकिन आप उन्हें 'प्लस'-माइनस' मत कहें। इससे कांग्रेस की बदनामी फैलेगी···"

ज्योतिर्मय सेन गुस्से में आ गये थे। "यह तुम लोग क्या कह रहे हो?" उन्होंने कहा था, "कांग्रेस की बदनामी होगी या सी. पी. आई. की बदनामी—यह बड़ी बात है या जिससे गरीबों की भलाई होगी वह बड़ी बात है?"

शम्भु उन दिनों वित्तमन्त्री था। उसने कहा, "आप यह क्या कह रहे है ज्योतिदा? आप 'माइनस' की बात करते है लेकिन आपने 'माइनस' को कभी देखा है? मालूम है, पिछली जन-गणना के अनुसार हिन्दुस्तान की जनता की आय में कितनी प्रतिशत वृद्धि हुई है?"

"तुम चुप रहो शम्भु।"

शम्भु ने कहा, "नहीं सर, आपको मालूम नही है। दिल्ली के 'नेशनल कौंसिल ऑव एप्लाइड एकोनोमिक रिसर्च' ने सभी प्रान्तों का सर्वेक्षण करके लिखा है—"West Bengal enjoys a higher per Capita income (Rs. 281) compared to whole of India····"[1]

ज्योतिर्मय सेन अपने को रोक नहीं सके थे। और उन्होने कहा था, "सांख्यिकी की बात छोड़ो शम्भु। कितने रुपयों का मनिआर्डर इस प्रान्त के बाहर चला

---

१. समूचे हिन्दुस्तान की तुलना मे पश्चिम बंगाल के प्रत्येक व्यक्ति की आय की राशि (२८१ रुपये) अधिक है।

जाता है, इसका पता है ?"

शम्भु को सब मालूम है। सब जानकर भी जो आँख मूँदे रहता है उसी को निहित स्वार्थ कहते है। इसी निहित स्वार्थ ने एक दल संगठित किया है और उसी का नाम है कांग्रेस। या दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि निहित स्वार्थ ने आकर कांग्रेस दल को मजबूत किया है। क्योंकि अभी हम लोगों के हाथ में ताकत है, इसीलिए ये लोग अभी हमारे दल में हैं। जब हम लोगों के दल से इन्हें सुविधा मिलना बन्द हो जायेगा तब ये लोग इस दल को त्यागकर दूसरा दल संगठित करेंगे—ठीक उसी तरह का दल जिस तरह आज बहुत सारे दल झाड़-झंखाड़ की तरह उग आये हैं।

लेकिन नुटु और दिगम्बर जैसे लोग किसी के दल में नही हैं। कोई दल उन्हें अपनी ओर खीचकर नही लाता है, सिर्फ उस समय, जब वोट की जरूरत पड़ती है हम उन्हें वोट देने के लिए कहते हैं।

नुटु को यह सब मालूम नही था। मुझे भी उन दिनों यह सब मालूम नही था। इन चीजों का तब रिवाज भी नही था।

उन दिनों नुटु और मैं बैलगाड़ी पर चढ़कर महल्ले-महल्ले में रोजाना मजदूरी पर काम किया करते थे। वीरचक के विष्णु सामन्त की ईंट की चाल में जाकर नुटु ईंट पहुँचाता था। हर खेप में दस ईंटें। बारह आना रोजाना मिलता था। फिर बाजार में साहा बाबू का पुआल का गोला था। साहा बाबू के मुनीम केदार को एक आना पैसा देने पर वह नुटु को खेप देता था।

एक दिन मैंने पूछा था, "तुम्हे तकलीफ नही होती है नुटु ?"

"क्यों, तुम्हे तकलीफ मालूम होती है क्या ?" नुटु ने कहा था।

कुछ देर तक चुप रहने के बाद मैंने कहा था, "तुम्हे तकलीफ होती ही होगी, वैकुण्ठ को भी तकलीफ होती है।"

यह बात सम्भवतः वैकुण्ठ के कान में पहुँचती थी। अचानक गले के घुंघरू टुन-टुन बज उठते थे। शायद वह भी समझ जाता था और कहता था, "नही, नही, मुझे तकलीफ नही होती है···"

"देखा न, वह भी मेरी बात समझता है। वह भी तुम्हारी ही तरह कह रहा है कि मुझे तकलीफ नही होती है···" नुटु कहकर हँसता था।

उस दिन उसकी माँ ने बात फिर से उठायी।

"एक बात सुनेगा बेटा।" उसने कहा।

नुटु ने कहा, "क्या कहना है ? जो कहना है जल्दी से बताओ, मेरे पास वक्त नही है।"

नुटु की माँ ने कहा, "तुम लोगो के पास वक्त नही है। वक्त है तो सिर्फ मेरे पास ही।"

नुट्टु ने कहा, "यह सब नखरेबाजी छोड़ो। जो कहना है, कहो। बाबूजी कहाँ है ?"

नुट्टु की माँ ने कहा, "किसी की लाश जलाने गया है। परसों लौटेगा।"

नुट्टु ने कहा, "फिर बाबूजी लाश ही जलाते रहें और मैं खट-खटकर मरता रहूँ। मुझे गृहस्थी से कोई वास्ता नहीं है। जहाँ दो आँखें मुझे ले जायेंगी, सबको छोड़कर मैं भी वहीं चला जाऊँगा।"

. "तू चला जायेगा तो कैसे चलेगा ? फिर मैं भी क्या मजदूरी करने निकलूँगी ?"

"निकलो न, कौन तुम्हें मना करता है ? मैं तुम लोगों के लिए खट-खटकर क्यों मरूँ ? मेरी आमदनी से मेरा और वैकुण्ठ का खर्च चल जायेगा। तुम लोगों का बोझा मैं व्यर्थ ही क्यों ढोऊँ ?"

"फिर मैं तेरी कोई नहीं हूँ ?"

नुट्टु ने कहा, "तुम मेरी कौन हो ? कौन हो तुम ?"

"बाप रे ! तू क्या बोल रहा है रे ! मैं तेरी कोई नहीं हूँ ?"

नुट्टु ने कहा, "नहीं। तुम कोई नहीं लगती हो। वैकुण्ठ ही मेरा सब-कुछ है।"

फिर उसने मेरी ओर देखकर कहा, "चलो जी, इनमें से कोई मेरा अपना नहीं है। ये लोग सिर्फ मेरी कमाई खानेवाले है।"

नुट्टु की माँ ने मुझे एक तरफ बुलाया, "जरा सुनो तो बेटा !"

मैं उसके पास गया। नुट्टु की माँ ने कहा, "तुम उसे जरा समझाकर कहो न बेटा, *कि कलिमुद्दीन फिर आया था*···"

"कलिमुद्दीन ?"

"वही जो बाजार का कसाई है। अब चालीस रुपया देने को तैयार है। कहा है कि रुपया एकमुश्त देगा। तुम जरा समझाओ न बेटा, कि चालीस रुपये हाथ मे आ जायेंगे तो चाल की छावनी फूस से करा लूंगी। बरसात का मौसम करीब है, तब घर में रहना मुश्किल हो जायेगा। वे लोग मर्द है, बाहर-बाहर रहते है। मैं ठहरी औरत जात, घर छोड़कर रात मे बाहर सोना मेरे लिए सम्भव नही है···"

मैंने कहा, "अच्छी बात है मौसीजी, मैं जाकर उससे कहता हूँ।"

नुट्टु की माँ ने कहा, "यह बात अभी उससे मत बताना। घर के बाहर जब जाओगे तो बताना।"

रास्ते में चलते-चलते जब एकान्त जगह आयी, मैंने उससे कहा। नुट्टु का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। पूछा, "कौन आयाथा—कलिमुद्दीन मियाँ ? कलिमुद्दीन मियाँ ने कहा है ? ठहरो, उसे मजा चखाता हूँ।" वह बड़ी तेजी

से गाड़ी हाँकने लगा। मैं हैरान था। नुटु कलिमुद्दीन को मारेगा क्या? उसके चेहरे पर गम्भीरता ठहरी हुई थी। उसने चुप्पी ओढ़ ली। बैलों को मारते-मारते दौड़ाने लगा। नुटु गुस्से से उफन रहा था। पीछे से वैकुण्ठ आ रहा था, उस ओर उसका ध्यान कतई नही था। उसके गले के घुंघरू टुन-टुन बज रहे थे। गाड़ी के पीछे-पीछे वह भी दौड़ता हुआ आ रहा था।

चलते-चलते नुटु एकबारगी बाजार में कलिमुद्दीन के कसाईखाने में उपस्थित हो गया। तब बकरी के कई मेमने लटके हुए थे जिनकी खालें उतार ली गयी थीं। कई एक गाहक मांस की खरीद-फरोख्त कर रहे थे।

नुटु गाड़ी से नीचे उतरा और चिल्ला उठा, "अबे साले···"

कलिमुद्दीन मांस बेच रहा था। 'साला' सम्बोधन सुनकर उसने आँख उठाकर देखा। उसके हाथ में तेज चाकू था।

मैं बहुत डर गया। कहीं छुरेबाजी की नौबत न आ जाये। कही कलिमुद्दीन नुटु की हत्या न कर दे।

आठ

रतन एकाएक कमरे के अन्दर आया और बोला, "हुजूर, आपका खाना परोसा जाये?"

इतनी देर के बाद ज्योतिर्मय सेन की चेतना वापस आयी। वह कितने दिन पहले की बात है। कितने ही युग पहले की कहानी। इसी मयनाडांगा में ही उन्होंने कितने ही महीने बिताये थे। तब ज्योतिर्मय सेन राजनीति नही करते थे। सहज-सरल आँखों से सीधी-सरल घटनाओं को देखा करते थे। हर घटना का तब उनकी आँखों के लिए कुछ और ही अर्थ था। राजनीति मे पड़ने के बाद वे वे आँखें खो गयी है। इतने दिनों के बाद इस निपट एकान्त परिवेश में निःसंग अस्तित्व से एकाकार होकर वह फिर से व्यतीत में लौट आये थे।

अब फिर से वर्तमान की कठोर यथार्थ की परिस्थिति मे लौट आये।

"घड़ी में क्या बजा है रतन?" मैंने पूछा।

रतन ने बताया, "बारह बजने में बीस मिनट बाकी है।"

अचानक ज्योतिर्मय सेन को महसूस हुआ कि आदमी कलायी में जो घड़ी पहना करता है, वह सभ्यता की अभिशाप है। सभ्यता चीज अच्छी होती है। सभ्यता हम लोगों के लिए बहुत-कुछ सुविधा ले आयी है। इसी सभ्यता की बदौलत एक मामूली आदमी कलकत्ते मे बैठकर कश्मीर का सेब, केलिफोर्निया

का सन्तरा, ढाके की हिलसा मछली और बलूचिस्तान का अंगूर खा सकता है। देर है तो सिर्फ हुक्म देने की। हो सकता है कि बादशाह अकबर, सम्राट् जूलियस सीजर और बड़े-बड़े राजा-रजवाड़ों को यह सुविधा उपलब्ध नहीं हुई हो। उन्होंने कल्पना तक नहीं की होगी कि किसी दिन सभ्यता की बदौलत मामूली आदमियों को भी पृथ्वी की प्रमुख-प्रमुख वस्तुओं के उपभोग का मौका मिलेगा। लेकिन वास्तव में यही क्या सब-कुछ है ? ऐसे भी आदमी मिलेंगे जो इस भोग की यातना से भागकर जीवन जीना चाहते हैं। ऐसे भी आदमी हैं जो धन-यश की यातना के अत्याचार से ऊब उठे हैं और ऊबकर नींद की गोलियों का सेवन करते हैं।

हो सकता है कि सभ्यता अच्छी चीज है लेकिन नींद भोग की तरह ही अपरिहार्य होती है। ज्योतिर्मय सेन ने एक बार हेनरी फोर्ड की जीवनी पढ़ी थी। हेनरी फोर्ड करोड़ों-अरबों रुपये का मालिक था। मोटरगाड़ी बेच-बेचकर उसने धन कमाया था। किसी दिन उसके जीवन का लक्ष्य था धनोपार्जन। उसने इतना धन पैदा करना चाहा था कि पृथ्वी पर मौजूद सारे सुखों का अनायास उपभोग कर सके। लेकिन हेनरी फोर्ड ने अपने कारखाने में जाकर जब देखा कि उसके कम तनख्वाह पानेवाले कर्मचारी लंच में बड़े-बड़े कौर निगल रहे हैं तो उसके हृदय में उन लोगों के प्रति ईर्ष्या पैदा हुई। उसकी पाचन-शक्ति खराब हो गयी थी। इसीलिए उसने अपनी डायरी में लिखा है, आज "मैंने एक अण्डा खाया और उसे पचाने में सफल हो गया हूँ..."

मोटरगाड़ियाँ बेच-बेचकर जो सारी दुनिया को जीत चुका था उसे स्वयं के सामने पराजय स्वीकारनी पड़ी थी। उसके लिए सभ्यता अभिशाप साबित हुई थी। यही वजह है कि वह गरीब असभ्यों को ईर्ष्या की दृष्टि से देखा करता था।

यह घड़ी ! ज्योतिर्मय सेन ने कहीं पढ़ा था कि घड़ी ही यन्त्रयुग का पहला अवदान है। घड़ी में ही यन्त्रयुग का पहला अभिशाप छिपा है। अन्यथा इसके पहले समय को टुकड़े-टुकड़े में बाँटकर और उसे चूर-चार कर महाकाल का भय घड़ी के अतिरिक्त किसने दिखाया था ? घड़ी ने ही पहले-पहल जानकारी दी, 'सावधान हो जाओ, वक्त बरबाद मत करो, मौत तुम्हारे सामने खड़ी है !' घड़ी ने ही पहले-पहल आदमी को प्रतियोगिता में उतारकर उसकी परमायु कमा दी। घड़ी ने ही सबसे पहले बताया, 'महाकाल अजेय है और आदमी महाकाल के समक्ष एक पराजित नश्वर प्राणी है। प्रतियोगिता में उतरो वरना दूसरे-दूसरे आदमी तुम्हें पीछे छोड़कर आगे बढ़ जायेंगे !'

और उसके बाद से ही आदमी के बौनेपन की शुरुआत हुई—एक व्यक्ति से दूसरे की प्रतियोगिता, एक से दूसरे का संघर्ष, एक से दूसरे की दुश्मनी।

सब मयनाडांगा का जीवन कितना सुन्दर था। कोई भी घड़ी की ओर नहीं ताकता था, एक-दूसरे से प्रतिद्वन्द्विता में नहीं उतरता था और न सोचता था भविष्य की बातें ही। जिस तरह आकाश उदार और अकृपण है, मयनाडांगा के गरीब लोगों की जिन्दगी भी वैसी ही थी। वे लोग आकाश की तरह ही अत्याचार सहते थे। आकाश धुएँ का अत्याचार सहता है, आंधी-तूफान का अत्याचार सहता है। लेकिन आकाश क्या इन बातों को याद रखता है? शरद् ऋतु का आकाश सब भूलकर फिर से शान्त और शुभ्र हो उठता है। नुटु वगैरह भी वैसे ही थे। नुटु वगैरह भी कुछ याद नहीं रखते थे। विवाह-घर और श्राद्ध-घर से एक बार गले में धक्का देकर निकाले जाने पर भी वे एक दिन पुनः खाने के लोभ में भिखारी की तरह वहाँ पहुँच जाते थे।

"ज्योतिदा···"

अबकी रतन नहीं बल्कि शंकर आया था।

शंकर ने कहा, "आपका खाना तैयार है ज्योतिदा। गोड़रा मछली की मलाई करी बनाने में ही थोड़ी देर हो गयी···"

"गोड़रा मछली? मैं वह सब नहीं खाता हूँ। इस झमेले की क्या जरूरत थी?"

शंकर ने कहा, "मैं क्या करूँ। रथीदा ने छोड़ा ही नहीं। रथीदा ने बताया कि बाँध में गोड़रा मछलियाँ उमड़ आयी हैं—एक-एक मछली एक-एक सेर की, बड़े-बड़े माथेवाली। और यहाँ ज्योतिदा आये हैं तो इस अवसर को क्यों छोड़ा जाये···"

"रथी कौन? रथी किसका नाम है?"

शंकर ने कहा, "हुजूर, रथीन सिकदार। उसके मछलियों के बाँध हैं···"

ज्योतिर्मय सेन को रथीन सिकदार की याद आ गयी। वह मुड़ागाछा मण्डल कांग्रेस का भूतपूर्व अध्यक्ष है। "उसे तो छह महीने के लिए जेल की सजा मिली थी न···" मैंने कहा।

शंकर ने कहा, "हाँ ज्योतिदा, आपने ठीक-ठीक पहचान लिया। लेकिन उन्हें दलबन्दी के कारण सजा मिली थी। दरअसल वह बहुत भले आदमी हैं। मुड़ागाछा से खुद चुन-चुनकर एक टोकरी मछली ले आये हैं। बताया कि ज्योतिदा के लिए मछुआरों से स्पेशल साइज की मछलियाँ पकड़वाई हैं···"

"जेल से उसे कब रिहाई मिली?"

शंकर ने कहा, "वह बहुत बड़ा काण्ड है। बाहर खड़े हैं, बुलाऊँ?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "क्यों बुलाओगे? मुझसे क्यों मिलना चाहता है?"

शंकर ने कहा, "उन्हें मनोनीत नहीं किया जा रहा है···"

"कौन नहीं कर रहा है ?"

शंकर ने कहा, "जिला कांग्रेस…"

जिला कांग्रेस मनोनीत नहीं कर रही है तो इसमें मैं क्या करूँ ? और मनोनयन पाने से ही क्या हो जायेगा ? और अधिक रुपया कमाना चाहता है ? मछलियों के और बड़े-बड़े बांध तैयार करेगा ? मन्त्री बनेगा ? अभी मनोनयन पाने के लिए मेरे पास दौड़-धूप कर रहा है और अन्त में चुनाव में जीत जायेगा तो मन्त्री बनने के लिए दौड़-धूप करेगा। मुझे यह सब मालूम है…"

शंकर से कहा, "नहीं ज्योतिदा, वह उस किस्म के आदमी नहीं हैं। उनके पास पैसे की कमी नहीं है। वह अपने जीवन के अन्तिम समय का उपयोग देश-सेवा में करना चाहते हैं।"

"देशभक्त बनना चाहते हैं ?"

"हाँ ज्योतिदा, उनके बाल-बच्चे नहीं हैं, उनका कहना है कि देश के बाल-बच्चे ही उनके बाल-बच्चे है।"

ज्योतिर्मय सेन को गुस्सा हो आया, "सुनो शंकर, हमारे देश में देशभक्तों की बाढ़ आ गयी है…"

"आप मजाक कर रहे हैं ज्योतिदा !"

"नहीं, मजाक नहीं कर रहा हूँ। एक बार मैंने पण्डित नेहरू से कहा था कि देशभक्त को देखते ही अगर पुलिस को गोली से मार डालने का हुक्म दे दें तो सम्भवतः देश की हालत सुधर जाये। देशभक्त ही देश के सबसे बड़े…"

एकाएक बाहर कुछ शोरगुल होने लगा। शंकर तुरन्त बाहर चला गया। "आप लोग चुप रहें, ज्योतिदा ऊब रहे हैं।" उसने कहा।

इसके सिवा ज्योतिर्मय सेन को कुछ भी सुनायी नहीं पड़ा। यह सब सहने के वह आदी हो चुके है। इतने वर्षों तक मन्त्रिमण्डल में रहने के कारण अब खुशामद, चाटुकारिता और सुविधावाद मुझे ऐसे लगते हैं जैसे मैं उनको पाने का अधिकारी हूँ। हर पाँच वर्षों के बाद चुनाव का सिलसिला चलता है और हर बार चुनाव में मेरी जीत होती है।

मेरे खिलाफ बहुत आदमी बहुत तरह की बातें बोला करते हैं। यही कारण है कि मैं हर बात पर कान नहीं देता हूँ। कान दूँ तो मेरा क्रोध अपना रंग दिखाने लगे। इच्छा होती है कि जो लोग मेरे खिलाफ बोलते हैं, उनसे बदला लूँ लेकिन चुनाव की बात सोचकर चुप्पी ओढ़ लेता हूँ। जरूरत पड़ने पर उन्हें खुश करने के लिए उनके पास लाइसेंस और परमिट भेज दिया करता हूँ। और यह सब देकर उन्हें अपनी मुट्ठी में कर लेता हूँ।

शंकर सहसा फिर से लौटकर चला आया। उसके पीछे और एक व्यक्ति था। शंकर ने कहा, "आप ही रथीन सिकदारजी हैं। आपसे बिना मिले…"

रथीन सिकदार ने आते ही मेरे चरणों की धूल ली और उस धूल को अपने माथे और जीभ से छुलाया।

"क्या बात है?"

रथीन सिकदार ने कहा, "आपसे एक बात करनी है···"

"क्या? नोमिनेशन के बारे में आप बात करना चाहते हैं?"

समझ गया कि वह शंकर के सामने कुछ नहीं कहना चाहता है। मैंने शंकर की ओर देखा और कहा, "शंकर, तुम जरा बाहर चले जाओ।"

शंकर बाहर चला गया। तब बाहर बगल के कमरे मे बहुत-से आदमी जमा हो गये थे। शंकर ने उस कमरे के अन्दर जाकर कहा, "सिकदारजी ज्योतिदा से बातचीत कर रहे हैं।"

एक व्यक्ति ने कहा, "मैं कहे देता हूँ शंकर बाबू, यह आखिरी मौका है, अगर ज्योतिदा रथीन बाबू को नोमिनेशन नही देंगे तो हम लोग एकसाथ कांग्रेस छोड़ देंगे। सारे चोर-बदमाशों का मनोनयन किया जा रहा है और हम लोगों के मुड़ागाछा के बारे में कन्नी काट रहे हैं। क्यों, हम लोग क्या कांग्रेस के सदस्य नही है? हम लोगों ने ज्योतिदा के चुनाव के समय आठ हजार रुपया चन्दा वसूल करके नही दिया था? तब केस्टो हालदार कहाँ था? केस्टो हालदार कब से कांग्रेस मे है? क्योकि उसने शराब की दुकान से लाखों रुपया कमाया है इसीलिए आज वह रथीन सिकदारजी से बड़ा कांग्रेसी हो गया है? सुना है कि केस्टो हालदार को मन्त्रिमण्डल में लिया जायेगा और इस बारे में उसे वचन दिया गया है। अगर ऐसा हुआ तो हम लोग अट्ठारह एम. एल. ए. एकसाथ दल बदलकर विरोधी पार्टी में चले जायेंगे···"

जब मै बातचीत कर रहा था, शोर-गुल की आवाज मेरे कानों में आ रही थी।

"तुम्हारे साथ कौन-कौन आये है रथीन?" मैने पूछा।

रथीन सिकदार ने कहा, "हम लोगों के अट्ठारह एम. एल. ए. मेरे साथ आये हैं। अगर मुझे मनोनयन नही मिला तो हम लोगों ने तय किया है कि हम लोग विरोधी दल मे चले जायेंगे।"

मैं हँस पड़ा। "केस्टो हालदार पर तुम लोगों को इतना गुस्सा क्यों है?" मैंने पूछा, "वह शराब की दुकान किये हुए है, इसीलिए न?"

रथीन सिकदार ने कहा, "उसने पार्टी के फण्ड में एक लाख का चन्दा दिया है, सुना है, इसी वजह से उसे मन्त्रिमण्डल में लिया जायेगा। वह शराब चुलाकर बाहर बेचता है, मालूम है आपको? मुड़ागाछा मे उसकी बदनामी फैल गयी है। उसको चुनाव में खड़ा करने से कांग्रेस मटियामेट हो जायेगी। इसी तरह दिन-ब-दिन कांग्रेस बदनाम हो रही है।"

"और तुम्हारा मनोनयन किया जाये तो कांग्रेस जीत जायेगी ? तुमने मछली के बाँध बनाकर रुपया पैदा नहीं किया हैं ? आज मुझे खिलाने के लिए तुम एक टोकरी गोड़रा मछली नहीं ले आये ? सरकार के रिलीफ फण्ड के पैसे को मार लेने के कारण तुम्हें सजा नही हुई थी ? तुम्हें मनोनीत कर लेने से तुम जीत जाओगे ? उससे कांग्रेस की वदनामी नही होगी ?"

कुछ देर तक चुप रहने के बाद फिर कहा, "रामकृष्ण देव कहा करते थे कि जिस पर भूत सवार होता है, वह समझ नही पाता कि उस पर भूत सवार हो गया है। वह यह भी कहा करते थे किले के अन्दर जाने पर आदमी की समझ मे नही आता है कि वह ढालू रास्ते से जा रहा है। जब आदमी किले के अन्दर पहुँच जाता है तब उसकी समझ में आता है कि वह कितने नीचे पहुँच गया है। तुम्हारी वही हालत है। तुम कितनी निचाई पर उतर गये हो, अभी यह बात तुम्हारी समझ में नही आ रही है रथीन ! जब और नीचे उतर जाओगे तब बात तुम्हारी समझ मे आयेगी···"

रथीन सिकदार चुप्पी साधे सब सुन रहा था। उसने कहा, "एक बात आपसे कहे जाता हूँ ज्योतिदा, अगर आप मुझे मनोनीत नही करेंगे तो मैं विरोधी कैम्प में चला जाऊँगा।"

"अन्त में तुम्ही फिर कहोगे कि मुझे मन्त्रिमण्डल में नही लीजिएगा तो मैं दल छोड़ दूँगा।"

रथीन सिकदार ने कहा, "केस्टो हालदार जब मन्त्री हो सकता है तो मै क्यों मन्त्री नही हो सकता हूँ ? केस्टो हालदार को 'मन्त्री' शब्द का हिज्जे लगाने को कहिए तो ? उसके आ जाने से कांग्रेस की इज्जत बढ़ जायेगी ?"

"अच्छा, अभी तुम जाओ रथीन। मैं इन बातों की चर्चा करने के लिए यहाँ नही आया हूँ। तुम्हें मालूम ही है कि मैं यहां किसान-सम्मेलन की अध्यक्षता करने आया हूँ···"

"यह क्यों नही कहते कि चुनाव के प्रचार के लिए आप आये हुए हैं।"

इतना कहकर रथीन सिकदार हनहनाता हुआ कमरे के बाहर चला गया। एक बार सोचा कि रथीन सिकदार को बुला लूँ। उसके साथ जो अट्ठारह विधायक आये है, उन्हें भी बुला भेजूँ। लेकिन मन ने कहा कि रहे ! बुला भेजने से क्या होगा ? वास्तव में जो दल मे नही रहना चाहते हैं उन्हें बुला भेजने से लाभ ही क्या है !

"रतन···" मैंने पुकारा।

रतन आया। "शकर बाबू से कह दो कि अब किसी को भी मेरे कमरे में न आने दें।" मैंने कहा।

एक किसान की जब उम्र ढल गयी तो उसे एक लड़का हुआ। वह उस

नुटु ने वैंकुण्ठ की ओर इशारा करके कहा, 'मेरा वैंकुण्ठ वह रहा।"

वह आदमी भेड़े को देखकर हँसने लगा। "यह भेड़ा है!" उसने कहा।

नुटु ने कहा, "इसे भेड़ा नहीं कहना चाहिए। तुम लोगों से यह ज्यादा अकलमन्द है।"

कलिमुद्दीन ने कहा, "यहाँ हल्ला-गुल्ला मत करो। भागो, यहाँ से भागो।"

उस आदमी ने पूछा, "बात क्या है?"

नुटु ने कहा, "मेरे बाप से कह आया है कि वैंकुण्ठ को बेचने से चालीस रुपया देगा।"

अब उस आदमी ने वैंकुण्ठ की ओर गौर से देखा, जैसे उसने परीक्षा की कि चालीस रुपया देने से लाभ होगा या हानि। बहुत देर तक देखने के बाद कहा, "चालीस रुपये तो ज्यादा ही दे रहा है।"

नुटु को गुस्सा हो आया। अचानक उसने वैंकुण्ठ के गले को पकड़ लिया और कहा, "इस पर नजर मत लगाओ, कहे देता हूँ, वरना आँख निकाल लूंगा।"

कलिमुद्दीन बहुत देर से सहता आ रहा था। अब वह सीधा खड़ा हो गया और बोला, "भागो यहाँ से। कह रहा हूँ कि यहाँ से भागो···"

"मुझे मारोगे क्या साले? मारोगे? मारो तो देखूं कि तुम्हारी देह में कितनी ताकत है?"

और वह सीना तानकर खड़ा हो गया—ठीक कलिमुद्दीन के चाकू के सामने।

मैं भय से काँपने लगा। और तत्क्षण नुटु को पकड़ लिया। "क्या कर रहे हो नुटु? चलो।" मैंने कहा।

लँगड़ा रहने या भरपेट न खाने से ही क्या होगा, नुटु में तेजी की कमी नहीं थी। मेरे हाथों से स्वयं को छुड़ाकर वह लँगड़ाता-लँगड़ाता और भी अधिक आगे बढ़ गया। "दुकान से निकलो साले! देखूँ तुममें कितनी हिम्मत है।"

उस आदमी को अब डर लगा। "इस लँगड़े मे तेजी तो कम नही है," उसने कहा, "तुम्हारा घर कहाँ है? किस महल्ले में रहते हो?" और उसने मेरी ओर देखा और कहा, "तुम्हारा यह कौन लगता है मुन्ना? तुम्हारा घर कहाँ है? कसाइयो से झगडा और मारपीट करने आये हो, ये लोग चाकू घोप देंगे।"

मैंने कहा, "देखिए, गलती इसकी नहीं है। उन्हीं लोगों की है। अपने भेड़े को वह बेटे की तरह प्यार करता है। उसे वह बेच नही सकता है। चाहे कोई लाख रुपया दे, फिर भी नहीं बेचेगा। उस भेड़े को खरीदने की कोई बात करे तो गुस्सा आना स्वाभाविक है। वह माँ-बाप को छोड़कर कहीं चल दे सकता

बच्चे का बड़ा ही यत्न किया करता था। एक दिन जब वह किसान खेत में काम कर रहा था उसके लड़के की हालत मरने-मरने पर हो गयी। किसान हड़बड़ाकर आया। लेकिन उसके आने के पहले ही उसका लड़का मर चुका था। उसके परिवार के लोग दहाड़ मारकर रो रहे थे। लेकिन किसान की आँखों में आँसू नहीं आये। उसकी पत्नी महल्ले के लोगों के सामने और भी अधिक दुख प्रकट करने लगी। कहने लगी, "तुम लोग देख रहे हो न, इस आदमी के लड़के की मौत हुई है और इसकी आँखों में एक बूंद भी पानी नहीं आया। ऐसा निष्ठुर है यह!"

किसान ने हँसते-हँसते अपनी पत्नी से कहा, "जानती हो, मैं क्यों नहीं रो रहा हूँ? कल मैंने सपना देखा था कि मैं राजा हो गया हूँ और सात लड़कों का बाप हूँ। वे लड़के रूप और गुण में बड़े ही सुन्दर हैं। आहिस्ता-आहिस्ता वे बड़े हुए, पढ़-लिखकर तैयार हुए। इतना देखने के बाद एकाएक मेरी नींद टूट गयी। अब मैं सोच रहा हूँ कि तुम्हारे उस एक लड़के के लिए रोऊँ या अपने सातों लड़कों के लिए रोऊँ···"

केस्टो हालदार को मन्त्री नहीं बनाने से वह दल छोड़ देगा। रथीन सिकदार को भी मन्त्री नहीं बनाता हूँ तो वह भी दल का त्याग करेगा। फिर रोऊँ किसलिए! किसके लिए रोऊँ! रोना है तो एक पार्टी के लिए ही रोना चाहिए। लेकिन पार्टी की भी हालत ऐसी है कि अब जाये कि तब जाये। पार्टी में ही जब घुन लग गया है तब रोने से लाभ ही क्या है!

तीसरे पहर चार बजे किसान सम्मेलन है। उसी सम्मेलन के वक्त नुटु की खोज करनी पड़ेगी। नुटु भी अवश्य ही बूढ़ा हो गया होगा। मैं भी बूढ़ा हो गया हूँ। लेकिन याद दिलाने पर उसे सारी बातें जरूर ही याद हो जायेंगी।

कलिमुद्दीन मियाँ को बड़ा ही सहनशील आदमी कहना चाहिए। उसके हाथ में वही लोहू से लथपथ चाकू था। एक बार चला देता तो काम तमाम हो जाता। "तुम साले मेरे वैकुण्ठ को जबह करना चाहते हो। इससे तो बेहतर है कि मुझे कत्ल कर डालो।"

क्रोध की हालत में नुटु का चेहरा बड़ा ही दयनीय दिख रहा था। वह जितना ही गुस्से में आता था उतना ही अधिक लँगड़ाता था। मैंने डरकर जब नुटु को पकड़ा तो उसने झट से खुद को मेरे हाथ से छुड़ा लिया। "तुम छोड़ दो मुझे, आज मैं उसे देख लूंगा।"

एक आदमी मास खरीदने आया था। उसने कहा, "अरे छोकरे, गाली-गलौज क्यों बकता है?"

"गाली दूंगा, जरूर दूंगा। वह मेरे वैकुण्ठ को काटेगा?"

"वैकुण्ठ। वैकुण्ठ कौन है?"

नुटु ने वैंकुण्ठ की ओर इशारा करके कहा, 'मेरा वैंकुण्ठ वह रहा।"

वह आदमी भेड़े को देखकर हँसने लगा। "यह भेड़ा है!" उसने कहा।

नुटु ने कहा, "इसे भेड़ा नहीं कहना चाहिए। तुम लोगों से यह ज्यादा अकलमन्द है।"

कलिमुद्दीन ने कहा, "यहाँ हल्ला-गुल्ला मत करो। भागो, यहाँ से भागो।"

उस आदमी ने पूछा, "बात क्या है?"

नुटु ने कहा, "मेरे बाप से कह आया है कि वैंकुण्ठ को बेचने से चालीस रुपया देगा।"

अब उस आदमी ने वैंकुण्ठ की ओर गौर से देखा, जैसे उसने परीक्षा की कि चालीस रुपया देने से लाभ होगा या हानि। बहुत देर तक देखने के बाद कहा, "चालीस रुपये तो ज्यादा ही दे रहा है।"

नुटु को गुस्सा हो आया। अचानक उसने वैंकुण्ठ के गले को पकड़ लिया और कहा, "इस पर नजर मत लगाओ, कहे देता हूँ, वरना आँख निकाल लूँगा।"

कलिमुद्दीन बहुत देर से सहता आ रहा था। अब वह सीधा खड़ा हो गया और बोला, "भागो यहाँ से। कह रहा हूँ कि यहाँ से भागो···"

"मुझे मारोगे क्या साले? मारोगे? मारो तो देखूँ कि तुम्हारी देह में कितनी ताकत है?"

और वह सीना तानकर खड़ा हो गया—ठीक कलिमुद्दीन के चाकू के सामने।

मैं भय से काँपने लगा। और तत्क्षण नुटु को पकड़ लिया। "क्या कर रहे हो नुटु? चलो।" मैंने कहा।

लँगड़ा रहने या भरपेट न खाने से ही क्या होगा, नुटु में तेजी की कमी नहीं थी। मेरे हाथों से स्वयं को छुड़ाकर वह लँगड़ाता-लँगड़ाता और भी अधिक आगे बढ़ गया। "दुकान से निकलो साले! देखूँ तुममें कितनी हिम्मत है।"

उस आदमी को अब डर लगा। "इस लँगड़े मे तेजी तो कम नहीं है," उसने कहा, "तुम्हारा घर कहाँ है? किस महल्ले में रहते हो?" और उसने मेरी ओर देखा और कहा, "तुम्हारा यह कौन लगता है मुन्ना? तुम्हारा घर कहाँ है? कसाइयों से झगड़ा और मारपीट करने आये हो, ये लोग चाकू घोंप देंगे।"

मैंने कहा, "देखिए, गलती इसकी नहीं है। उन्हीं लोगों की है। अपने भेड़े को वह बेटे की तरह प्यार करता है। उसे वह बेच नहीं सकता है। चाहे कोई लाख रुपया दे, फिर भी नहीं बेचेगा। उस भेड़े को खरीदने की कोई बात करे तो गुस्सा आना स्वाभाविक है। वह माँ-बाप को छोड़कर कहीं चल दे सकता

है लेकिन वैंकुण्ठ को नही छोड सकता है। देख रहे हैं न, हमेशा इसी के साथ लगा रहता है। खुद नही खाता है मगर उसे खिलाता है।"

कलिमुद्दीन ने मेरी बात को काटकर कहा, "मैं उसके भेड़े को खरीदने नहीं गया था बल्कि उसका बाप ही मुझे बुलाकर अपने घर ले गया था।"

"मेरा बाप तुम्हें बुलाकर ले गया था ?"

इतनी देर के बाद जैसे नुटु की समझ में बात आयी। मेरी ओर देखकर कहा, "चलो, घर चलें। साले बाप को देख लूंगा। ऐसे बाप के पुरखों का सराध करूंगा तब छोड़ूंगा।"

फिर उसका सारा क्रोध जैसे अपने बाप पर केन्द्रित हो गया। बुड़बुड़ाता हुआ वह घर की ओर जाने लगा। मैं भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा और हम दोनो के पीछे-पीछे वैंकुण्ठ घुंघरुओं को टुनटुनाता जाने लगा।

नौ

मानो यह दोलचक्र है। अभी तुम ऊपर बैठे हो और मैं नीचे। लेकिन दोलचक्र जब घूमने लगेगा तब मैं फिर से ऊपर चला जाऊँगा और तुम नीचे चले आओगे।

यही स्थिति जीवन की भी है। लेकिन मनुष्य-समाज में ऐसा भी युग आया है कि दोलचक्र को किसी ने घुमाया नही। राजा-महराजों ने दोलचक्र को वर्षों तक स्थित और निश्चल बनाकर रखा। राजाओं ने कहा, "हम ईश्वर के प्रतिनिधि हैं। हमारा पतन हो ही नहीं सकता है।"

और पतन न हो इसके लिए गिरजा, मन्दिर तथा पुरोहित, पादरी और मौलवियों से सहायता ली। उन लोगों ने राजाओं की वर्षगांठ पर मन्दिर-मस्जिद-गिरजाघर मे उत्सव मनाये। राजा-महराजों के अन्याय-अत्याचार को उत्साहित कर उनका अभिनन्दन किया। 'दिल्लीश्वर-जगदीश्वरोवा' कहकर अल्लाह तालाह का दर्जा दिया।

इसी तरह का सिलसिला चल रहा था। कोई शिकायत करता था तो बात किसी के कान में नही पहुँचती थी। अत्याचार से पीड़ित होने पर भी किसी को आर्तनाद करने का अधिकार नही था।

ठीक वैसे ही समय रुपये की ईजाद हुई। रुपया ! पृथ्वी के सातवें आश्चर्य के बाद आठवें आश्चर्य की खोज। एडवर्ड तृतीय ने सौ साल की लड़ाई किसके बल पर चलायी थी ? रुपये के बल पर ही न ! उन रुपयों का इन्तजाम बैंक के मालिकों ने किया था। बैंक के मालिको ने कहा, "आपको जितने रुपयों की

जरूरत है, आप ले सकते हैं हुजूर। कम ही सूद पर हम रुपया कर्ज देने को तैयार हूँ…"

हरिसाधन बाबू ने ये बातें बतायी थी। तब वह अर्थशास्त्र पढ़ाया करते थे। पढ़ाते-पढ़ाते वह एक दूसरी ही दुनिया में पहुँच जाते थे। किस तरह मध्य-युग में रुपये की ईजाद हुई। पूँजी किस तरह उद्योग धन्धों को चौपट करने लगी और फिर पूँजी किस तरह राजाओं को विनाश के पथ पर ले गयी—उसी का इतिहास।

पढ़ते-पढ़ते ज्योतिर्मय सेन को मयनाडांगा की बातें याद आती थी। मयना-डांगा की बातें और नुटु की बातें। तब मयनाडांगा के बाबू लोगों के घर के सामने से नुटु जा रहा था और उसके पीछे-पीछे वैकुण्ठ चल रहा था।

मैंने निकट से पुकारा, "नुटु!"

नुटु तब गुस्से से तमतमाया हुआ था। "क्या?" उसने कहा।

"तुमने कलिमुद्दीन से झगड़ा किया और वह अगर चाकू घोंप देता?"

नुटु ने कहा, "घोंपता तो घोंपता, मैं मर जाता और क्या!"

मैंने कहा, "लेकिन तुम्हें बड़ी तकलीफ होती। तुम्हारी देह से रक्त का फव्वारा छूटता, बड़ा ही दर्द महसूस होता…"

नुटु ने कहा, "मर जाने के बाद फिर तकलीफ ही क्या? मरते ही सब-कुछ बेकार हो जाता है।"

"लेकिन तुम्हारे बाप को बड़ा ही दुख होता।"

"बाबूजी को तकलीफ! बाबूजी मुझे कन्धे पर रखकर श्मशान में पहुँचाकर जला देते और जी-भर शराब गटकते।"

"और तुम्हारी माँ?"

नुटु ने कहा, "दुत, दुनिया में कोई किसी का नहीं होता है भाई। दुनिया में रहकर मैंने हर किसी को पहचान लिया है। तुम घर से भागकर यहाँ चले आये हो, तुमसे मेरा बड़ा मेल-जोल है लेकिन मैं मर जाऊँ तो तुम क्या रोओगे? तुम नहीं रोओगे। आदमी के लिए कोई साला दूसरा आदमी नहीं रोता है। अगर रोता है तो उसके पैसे के लिए।"

"नहीं भाई, ऐसी बात नहीं है। मैं जरूर रोऊँगा। यही वजह है कि मैंने तुम्हें कलिमुद्दीन से झगड़ने से रोका।"

नुटु उस कच्ची उम्र में ही दार्शनिक हो गया था। उसने कहा, "दुत, आदमी के लिए अगर कोई रोता है तो वह जानवर ही। वह वैकुण्ठ, मैं अगर मर जाऊँ, तो वह वैकुण्ठ ही मेरे लिए रोयेगा। उस वैकुण्ठ के अलावा कोई साला मेरे लिए नहीं रोयेगा।"

"और मैं मर जाऊँ तो तुम मेरे लिए नहीं रोओगे?"

नुटु ने स्पष्ट उत्तर दिया, "झूठ बोलने से फायदा ही क्या है भाई ? मैं नहीं रोऊँगा। इसके सिवा तुम मेरे होते ही कौन हो कि मैं तुम्हारे लिए रोऊँ? तुम बड़े आदमी के लड़के हो। मन में आया तो यहाँ नाच आये। फिर जब मन में आयेगा घर लौट जाओगे। फिर तुम हम लोगों को क्यों याद रखने लगे? लेकिन वैकुण्ठ को तुम बहकाकर मुझसे दूर ले जाओ तो जानूँ। तब समझूँगा कि तुम्हारी देह में ताकत है।"

सचमुच वैकुण्ठ अगर उसके पास में नहीं सोता था तो नुटु को नींद ही नहीं आती थी। वैकुण्ठ की देह-गन्ध नुटु की नाक में नहीं पहुँचती थी तो उसे जैसे नींद ही नहीं आती थी। नुटु के मकान के ओसारे पर सोने पर मेरी नींद टूट जाती थी, ऐसी घटना बहुत बार हो चुकी थी। नींद टूटने पर देखा करता था कि वैकुण्ठ को अपनी जांघों से दबाये नुटु गहरी नींद में डूबा हुआ है।

इतना ही नहीं, वैकुण्ठ भी जैसे नुटु की बात समझता था।

प्रेम में सम्भवतः एक प्रकार की अलौकिक क्षमता रहती है। उस क्षमता को दबाकर रखा नहीं जा सकता है। वैकुण्ठ समझता था कि नुटु उसे प्यार करता है। वह एक साधारण-सा भेड़ का मेमना था। नुटु एक पाँव का लँगड़ा है, यह बात वह समझता था। वह नुटु के पैर को गौर से देखता था, जैसे नुटु के लँगड़े पाँव के लिए उसके मन में बड़ी ममता है। जब कोई नहीं रहता था, वैकुण्ठ चुपचाप नुटु के लँगड़े पैर को जीभ से चाटा करता था।

नुटु कहता, "देख रहे हो न !"

"वैकुण्ठ पिछले जन्म में आदमी था।" मैं कहता था।

नुटु कहता, "दुत, वह मेरा भाई था..."

सचमुच नुटु के भाई नहीं था। कहा जा सकता है कि वैकुण्ठ ही उसका सगा भाई था। सगा भाई रहने पर भी कोई उसे इस तरह प्यार नहीं करता है।

नुटु कहता, "तुम लोगों को पैसे का इतना अभाव है तो चालीस रुपये में उसको बेचने के बजाय मुझे ही बेच डालो। मुझे ही बकरे का मास कहकर बेच दो..."

रास्ते-भर नुटु बुड़बुड़ाता रहा। उसका गुस्सा उफन रहा था।

मैं और वैकुण्ठ उसके आस-पास चले जा रहे थे।

नुटु एकाएक ठिठक गया।

"साँप...साँप..." वह जोरों से चिल्लाया।

एक बहुत ही बड़ा गेहुँअन साँप रास्ता [illegible] था। साँप को देखते ही नुटु वैकुण्ठ पर कूद पड़ा [illegible] साँप [illegible]।

"अरे साँप है साँप..." [illegible]

नुटु को चाहे साँप काट ले, कुछ आता-जाता नहीं है, मुसीबत तो तब है जब कि वैंकुण्ठ को काट ले। साँप ने वैंकुण्ठ का पीछा कर फन उठाया। उसके फन के दोनों ओर खड़ाऊँ की छाप थी।

फन खड़ा कर उसने जोरों से फुफकार छोड़ी।

लेकिन उसके पहले ही नुटु ने वैंकुण्ठ को पकड़कर हटा दिया था। जब उसने फन बढ़ाया उस समय वैंकुण्ठ वहाँ नहीं था। उसका फन जमीन से जाकर टकराया। उसके बाद शायद अपनी गलती समझकर साँप ने जब अपना मुँह ऊपर उठाया, नुटु ने पेड़ की एक बड़ी डाल उठाकर साँप की ओर निशाना करके फेंकी।

लेकिन गेहुँअन साँप था न! फन मारने में जितना तेज भागने में भी उतना ही तेज। साँप जितनी तेजी से भागने लगा नुटु भी उतनी ही तेजी से उसका पीछा करने लगा। उसको हाथ में जो कुछ मिल जाता था, उसी को उठाकर साँप पर फेंकने लगा। मैदान के बाद जंगल पड़ता था। नुटु जंगल के भीतर चला गया।

मुझे डर लगा। नुटु के चलते यह तो बहुत बड़ी विपत्ति आयी।

पीछे से मैंने पुकारा, "नुटु, ओ नुटु···"

नुटु का कोई उत्तर नहीं आया। मैं वैंकुण्ठ के कारण ही भारी मुसीबत में फँस गया। वैंकुण्ठ भी नुटु के पीछे-पीछे जंगल के अन्दर जाना चाहता था। मैंने वैंकुण्ठ के गले को कसकर पकड़ा और उसे रोक रखने की जी-जान से कोशिश करने लगा और पुकारने लगा, "नुटु, ओ नु-टुऽऽ···"

मयनाडाँगा गाँव यों खेत-मैदानों से भरा हुआ था। ज्यादातर हिस्सा खुली जगह ही था। वह बंगाल का एक उजड़ा हुआ गाँव था इसीलिए कुछ मकान खाली पड़े थे। उन झाड़-झंखाड़ों में एक बार घुसने पर बाहर निकलना आसान नहीं था।

वैंकुण्ठ शायद बहुत डर गया था। वह भी बें-बें करके चिल्लाकर नुटु को पुकारने लगा। एक भेड़े की देह में इतनी ताकत हो सकती है, मुझे पता नहीं था। क्या भेड़े को भी अन्ततः साँप के गुंजलक में फँसना है।

मेरे कानों में झाड़ी-झुरमुट से पट-पट आवाज आ रही थी।

मैंने चिल्लाकर पुकारा, "नुटु·· नु-टुऽ···"

मेरे साथ-साथ वैंकुण्ठ पुकारने लगा, "बें···बेंऽऽ···"

दूर से नुटु की आवाज आयी। वह चिल्लाकर पुकार रहा था "ज्योति··· इ···ई···"

मैंने जवाब दिया, "मैं यहाँ हूँ···"

नुटु ने वहीं से कहा, "वैंकुण्ठ को पकड़े रहो, मैंने साँप को मार डाला है···"

नुट्टु ने स्पष्ट उत्तर दिया, "झूठ बोलने से फायदा ही क्या है भाई? मैं नहीं रोऊँगा। इसके सिवा तुम मेरे होते ही कौन हो कि मैं तुम्हारे लिए रोऊँ? तुम बड़े आदमी के लड़के हो। मन में आया तो यहाँ भाग आये। फिर जब मन में आवेगा घर लौट जाओगे। फिर तुम हम लोगों को क्यों याद रखने लगे? लेकिन वैकुण्ठ को तुम बहकाकर मुझसे दूर ले जाओ तो जानूँ। तब समझूँगा कि तुम्हारी देह में ताक़त है।"

सचमुच वैकुण्ठ अगर उसके पास में नहीं सोता था तो नुट्टु को नींद ही नहीं आती थी। वैकुण्ठ की देह-गन्ध नुट्टु की नाक में नहीं पहुँचती थी तो उसे जैसे नींद ही नहीं आती थी। नुट्टु के मकान के ओसारे पर सोने पर मेरी नींद टूट जाती थी, ऐसी घटना बहुत बार हो चुकी थी। नींद टूटने पर देखा करता था कि वैकुण्ठ को अपनी जाँघों से दबाये नुट्टु गहरी नींद में डूबा हुआ है।

इतना ही नहीं, वैकुण्ठ भी जैसे नुट्टु की बात समझता था।

प्रेम में सम्भवतः एक प्रकार की अलौकिक क्षमता रहती है। उस क्षमता को दबाकर रखा नहीं जा सकता है। वैकुण्ठ समझता था कि नुट्टु उसे प्यार करता है। वह एक साधारण-सा भेड़ का मेमना था। नुट्टु एक पाँव का लँगड़ा है, यह बात वह समझता था। वह नुट्टु के पैर को गौर से देखता था, जैसे नुट्टु के लँगड़े पाँव के लिए उसके मन में बड़ी ममता है। जब कोई नहीं रहता था, वैकुण्ठ चुपचाप नुट्टु के लँगड़े पैर को जीभ से चाटा करता था।

नुट्टु कहता, "देख रहे हो न!"

"वैकुण्ठ पिछले जन्म में आदमी था।" मैं कहता था।

नुट्टु कहता, "दुत, वह मेरा भाई था···"

सचमुच नुट्टु के भाई नहीं था। कहा जा सकता है कि वैकुण्ठ ही उसका सगा भाई था। सगा भाई रहने पर भी कोई उसे इस तरह प्यार नहीं करता है।

नुट्टु कहता, "तुम लोगों को पैसे का इतना अभाव है तो चालीस रुपये में उसको बेचने के बजाय मुझे ही बेच डालो। मुझे ही बकरे का मांस कहकर बेच दो···"

रास्ते-भर नुट्टु बुड़बुड़ाता रहा। उसका गुस्सा उफन रहा था।

मैं और वैकुण्ठ उसके आस-पास चले जा रहे थे।

नुट्टु एकाएक ठिठक गया।

"साँप···साँप···" वह जोरों से चिल्लाया।

एक बहुत ही बड़ा गेहुँअन साँप था जो रास्ता पार कर रहा था। साँप को देखते ही नुट्टु वैकुण्ठ पर कूद पड़ा। वैकुण्ठ ने साँप को नहीं देखा था।

"अरे साँप है साँप···"

नुटु को चाहे साँप काट ले, कुछ आता-जाता नहीं है, मुसीबत तो तब है जब कि वैकुण्ठ को काट ले। साँप ने वैकुण्ठ का पीछा कर फन उठाया। उसके फन के दोनों ओर खड़ाऊँ की छाप थी।

फन खड़ा कर उसने जोरों से फुफकार छोड़ी।

लेकिन उसके पहले ही नुटु ने वैकुण्ठ को पकड़कर हटा दिया था। जब उसने फन बढ़ाया उस समय वैकुण्ठ वहाँ नहीं था। उसका फन जमीन से जाकर टकराया। उसके बाद शायद अपनी गलती समझकर साँप ने जब अपना मुँह ऊपर उठाया, नुटु ने पेड़ की एक बड़ी डाल उठाकर साँप की ओर निशाना करके फेंकी।

लेकिन गेहुँअन साँप था न! फन मारने में जितना तेज भागने में भी उतना ही तेज। साँप जितनी तेजी से भागने लगा नुटु भी उतनी ही तेजी से उसका पीछा करने लगा। उसको हाथ में जो कुछ मिल जाता था, उसी को उठाकर साँप पर फेंकने लगा। मैदान के बाद जंगल पड़ता था। नुटु जंगल के भीतर चला गया।

मुझे डर लगा। नुटु के चलते यह तो बहुत बड़ी विपत्ति आयी।

पीछे से मैंने पुकारा, "नुटु, ओ नुटु···"

नुटु का कोई उत्तर नहीं आया। मैं वैकुण्ठ के कारण ही भारी मुसीबत में फँस गया। वैकुण्ठ भी नुटु के पीछे-पीछे जंगल के अन्दर जाना चाहता था। मैंने वैकुण्ठ के गले को कसकर पकड़ा और उसे रोक रखने की जी-जान से कोशिश करने लगा और पुकारने लगा, "नुटु, ओ नु-टुऽऽ···"

मयनाडांगा गाँव यों खेत-मैदानों से भरा हुआ था। ज्यादातर हिस्सा खुली जगह ही था। वह बंगाल का एक उजड़ा हुआ गाँव था इसीलिए कुछ मकान खाली पड़े थे। उन झाड़-झंखाड़ों में एक बार घुसने पर बाहर निकलना आसान नहीं था।

वैकुण्ठ शायद बहुत डर गया था। वह भी बें-बें करके चिल्लाकर नुटु को पुकारने लगा। एक भेड़े की देह में इतनी ताकत हो सकती है, मुझे पता नहीं था। क्या भेड़े को भी अन्ततः साँप के गुजलक में फँसना है।

मेरे कानों में झाड़ी-झुरमुट से पट-पट आवाज आ रही थी।

मैंने चिल्लाकर पुकारा, "नुटु···नु-टुऽ···"

मेरे साथ-साथ वैकुण्ठ पुकारने लगा, "बें···बेंऽऽ···"

दूर से नुटु की आवाज आयी। वह चिल्लाकर पुकार रहा था "ज्योति···इ···ई···"

मैंने जवाब दिया, "मैं यहाँ हूँ···"

नुटु ने वहीं से कहा, "वैकुण्ठ को पकड़े रहो, मैंने साँप को मार डाला है···"

नुट्टू सांप को मार चुका था। मुझे आश्चर्य लगा। लंगड़े पांव से नुट्टू ने सांप को कैसे मारा !

मैं वैकुण्ठ को पकड़े वहीं खड़ा था। नुट्टू आया। उसके हाथ में पेड़ की एक बहुत बडी डाल थी। उसी डाल के सिरे में मरा हुआ गेहुंअन सांप झूल रहा था।

नुट्टू ने मेरे पास आकर बताया, "साले सांप को मार डाला है। साला मेरे वैकुण्ठ को डसने आया था। उसकी यह हिम्मत !"

मैं उस वक्त भी थर-थर कांप रहा था।

मैंने कहा, "तुमने सांप के पीछे क्यों दौड़ लगायी ? अगर तुम्हें डस लेता तो क्या होता ?"

नुट्टू ने कहा, "यह मेरी गलती है या सांप की गलती ? उसने जब मेरा पीछा किया तो मैं पेड़ पर चढ़ गया। पेड़ से डाल तोड़कर मैं उसे नहीं मारता। लेकिन वह वैकुण्ठ को डसने क्यों आया ?"

"सांप से आदमी की कहीं चालाकी चल सकती है ?" मैंने कहा, 'सांप अगर तुम्हारा पीछा करता ! तुम उसकी तरह दौड़ नहीं लगा सकते थे।"

"उस बेटे ने मेरा पीछा किया था। यही वजह है कि मैंने उसे मारा।"

नुट्टू के कारनामे सुनकर मैं अवाक् रह गया। वैकुण्ठ की भी यही हालत थी। तब वह सांप की ओर अपलक देख रहा था।

नुट्टू ने कहा, "चलो, अब इस पट्ठे को जलाना होगा। जलाकर पट्ठे को राख कर दूंगा।"

और सांप को सर के सामने नचाते-नचाते वह चलने लगा। उसके साथ-साथ मैं भी जाने लगा और हम दोनों के बीच वैकुण्ठ।

मैंने कहा, "मरे को मारना क्या ? वह तो मर ही चुका है।"

नुट्टू को जब क्रोध आता था तो उसका क्रोध चरम सीमा पर पहुंच जाता था।

उसने कहा, "सांप और दुश्मन—इनमें से किसी की भी आखिरी निशानी नहीं रहने देनी चाहिए। अगर जलाकर इसे राख न कर दूं तो पट्ठा फिर से जी उठेगा और जीकर वैकुण्ठ को डसेगा।"

वह सांप को और जोर से सर पर नचाने लगा।

अचानक शंकर कमरे में आया। उसके साथ थाल लिये रसोईया था।

शंकर ने कहा, "अभी तुरन्त खाना खा लें ज्योतिदा ! घी गरम करके ले आया हूं। बिल्कुल शुद्ध घी है।"

सचमुच शंकर किसी-न-किसी दिन उन्नति अवश्य करेगा। खुशामद किस तरह करनी चाहिए, शंकर इस कला में दक्ष है।

ज्योतिर्मय सेन ने पूछा, "मैं घी खाना पसन्द करता हूं, यह बात तुम्हें कैसे

मालूम हुई शंकर ?"

शंकर इस प्रश्न से खुश हुआ। "आप क्या कह रहे हैं ज्योतिदा !" उसने कहा, "आप आज यहाँ खाना खायेंगे। फिर आप क्या खाना पसन्द करते हैं, यह मैं नहीं जानूं भला ?"

सचमुच यह लड़का उन्नति करेगा।

ज्योतिर्मय सेन ने पूछा, "आजकल घी की दर क्या है शंकर ?"

"घी ? घी मयनाडांगा में नही मिलता है। यह घी मैं कलकत्ते से लाया हूँ।"

ज्योतिर्मय सेन को आश्चर्य हुआ। "कलकत्ते से ?" उन्होंने पूछा।

शंकर ने कहा, "हाँ ज्योतिदा, सब-कुछ कलकत्ते से ले आया हूँ। यह जो फूलगोभी है, यह भी यहाँ नहीं मिलती है। गाँव बिल्कुल उजड़ गये है ज्योतिदा ! यही वजह है कि हमारी कांग्रेस पार्टी मुश्किल में पड़ गयी है। कलकत्ते में राशन से जो चावल मिलता है, उसकी दर एक रुपया चालीस पैसा है और गाँव में दो रुपये बारह पैसे। इसी से यहाँ के लोग कम्युनिस्ट होते जा रहे हैं। अब उन्हें धोखे में रखना मुश्किल है।"

"वे लोग चले गये ?"

शंकर ने कहा, "नहीं। वे लोग अब तक हैं ही। चुनाव के लिए मनोनीत होना चाहते हैं।"

"अच्छा शंकर···" ज्योतिर्मय सेन ने खाते-खाते पूछा, "पुलिस अभी तक पहरे पर है ?"

"हाँ, पुलिस के बड़े अफसर ने हुक्म दिया है। पहरा क्यों नहीं देगी ?"

"लेकिन इसके बावजूद इतने लोग मेरे पास कैसे पहुँच जाते हैं ? इन लोगों को पुलिस आने देती है। देखो, बात यह है कि यहाँ चार बजे सम्मेलन है, और मैं सवेरे यहाँ इसलिए पहुँचा हूँ कि थोड़ा आराम करूँ, लेकिन तुम लोगों ने मेरे आराम का जरा भी इन्तजाम नहीं किया है।"

शंकर ने उत्तेजित होकर कहा, "मैंने कहाँ किसी को आने दिया है ? कोई अन्दर आया था क्या ?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "मैं यह गोड़रा मछली किसी भी हालत में नहीं खाऊँगा शंकर। इसे ले जाओ।"

"क्यों ज्योतिदा, क्या हुआ ? मछली से बदबू आ रही है क्या ?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "यह रथीन सिकदार की मछली है। रथीन सिकदार मुड़ागाछा मण्डल कांग्रेस का अध्यक्ष था। उसने छह महीने की जेल की सजा काटी है। मगर मछली देने के पीछे उसका कोई स्वार्थ है तो मैं इसे खा ही नहीं सकता शंकर। अगर खाऊँ तो चुनाव के लिए उसे उम्मीदवार बनाना ही पड़ेगा। यह मछली उसे लौटा दो···"

शंकर की समझ में न आया कि वह क्या करे।

"मैंने आपसे कहा था न ज्योतिदा कि वह आदमी के लिहाज से अच्छे हैं।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "काम बनाने के लिए जो रिश्वत देता है वह आदमी कभी अच्छा हो ही नहीं सकता है शंकर। ऐसे लोग सुविधावादी होते हैं। इन्हीं लोगों के चलते आज हमारी पार्टी इतनी बदनाम हो गयी है।"

शंकर ने कहा, "मैंने सिकदार जी से यह बात कही थी ज्योतिदा, लेकिन उन्होंने बताया था कि अगर उन्हें मनोनीत नहीं किया गया तो वह दिल्ली जाकर केन्द्र से मनोनयन ले आयेंगे। यहाँ सिर्फ आप ही ईमानदार आदमी हैं मगर दिल्ली में सब-के-सब ईमानदार हैं। यहाँ बीसेक गोड़रा मछली देने पर काम हासिल नहीं हुआ लेकिन दिल्ली जाकर लाखेक रुपया खर्च करने से मनोनयन प्राप्त हो जायेगा। उनके पास रुपये की कोई कमी नहीं है..."

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "अच्छा, केस्टो हालदार जी को जरा बुलाकर ला सकते हो?"

शंकर ने कहा, "अभी तुरन्त बुला सकता हूँ। आधा घण्टे के अन्दर ही बुला लाता हूँ..."

"तुम केस्टो हालदार जी को पहचानते हो?"

शंकर ने कहा, "अच्छी तरह पहचानता हूँ। हमारे यहाँ जब अनाज का दंगा हुआ था तब उन्होंने दो लाख रुपये की चैरिटी दी थी।"

"दो लाख!"

शंकर ने कहा, "जी हाँ, दो लाख। केस्टो हालदार जी के पास गजब का पैसा है। चाहते तो और रुपया दे सकते थे। लेकिन..."

"लेकिन क्या?"

शंकर ने कहा, "क्योंकि वह शराब का कारोबार करते हैं, लोग उन्हें 'कलाल' कहते हैं। यह बात उन्हें बहुत बुरी मालूम होती है। इसीलिए अबकी बार चुनाव में खड़े होकर वह थोड़ा सम्मान खरीदना चाहते हैं, इसके अलावा उन्होंने पार्टी को कितने लाख रुपये दिये हैं, यह बात आपको मालूम ही है ज्योतिदा।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "मन्त्री बनने से ही सम्मान मिल जाता है?"

"मन्त्री होने से ही आदमी वी. आई. पी. हो जाता है।"

"लेकिन जब मन्त्री नहीं रहता है?"

शंकर ने कहा, "मन्त्री का पद छिन क्यों जायेगा ज्योतिदा? रुपया रहने पर किसी भी पार्टी की ओर से मन्त्री चुना जा सकता है। रुपये के बल पर पार्टी खरीदी जा सकती है। बिना पैसे कोई पार्टी चल नहीं सकती है। यह सारी बातें मेरे बनिस्बत आप ही अच्छी तरह जानते है ज्योतिदा।"

"जानता हूँ," ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "लेकिन ये बातें तुम्हारे मुँह से

सुनने में अच्छी लगती हैं। तुम्हें इन बातों की जानकारी कैसे हुई ?"

शंकर ने कहा, "मुझे ? सिर्फ मेरी ही बात क्यों करते है ज्योतिदा, मयनाडांगा का हर किसान-मजदूर यह सब जानता है। जानकर भी वे निरुपाय हैं। चुनाव के पहले उन्हें इतना पैसा मिलता है कि वे गूंगे हो जाते हैं। इस किसान-सम्मेलन की ही बात लीजिए, इसमें यहाँ के पचासेक आदमी में से हर व्यक्ति ने बीस-बीस हजार रुपया कमाया है।"

"कैसे ?"

"एक आदमी को नल-कूप का ठेका मिला है, एक आदमी को बाँस की सप्लाई का आर्डर, एक व्यक्ति को टीन का आर्डर, एक व्यक्ति को…"

अचानक रतन कमरे के अन्दर आया। "और एक अदद राजभोग लीज़िए।" उसने कहा।

राजभोग की बात सुनने पर मुझे नुटु का स्मरण हो आया। राजभोग ! नुटु को भात खाने को मिलता नहीं था पर मयनाडांगा के बाजार की खाने की दुकानों की ओर वह ललचायी निगाहों से देखा करता था।

मैंने एक दिन पूछा था, "क्या देख रहे हो ?"

नुटु ने कहा था, "वह देखो, वो बड़े-बड़े रसगुल्ले है न, उनका नाम है राजभोग। इसे बाबू लोग खाते हैं।"

दुकानदार नुटु को देखते ही दुरदुराने लगते थे, "भाग, भाग, यहाँ से भाग जा, नजर मत लगा।"

आश्चर्य है ! सारी जिन्दगी इस पृथ्वी को समझने की कोशिश की जाये तो भी समझना नामुमकिन है। हालाँकि लाखों वर्षों से अपने अधिकार को सुव्यवस्थित करने के उद्देश्य से आदमी संघर्ष करता आ रहा है, फिर उसी संघर्ष को कमजोर बनाने के लिए लाखों वर्षों से आदमी प्रयास भी कर रहा है। जिस राजभोग की ओर ताकना एक व्यक्ति के लिए पाप है, उसी राजभोग को खाने के लिए दूसरे से खुशामद की जा रही है। फिर इसी का नाम क्या ताकत है ? इसी ताकत को उपलब्ध करने के लिए ही क्या मैंने बीस वर्षों तक कारावास की यातना सही है ? इसी ताकत को पाने के लिए ही क्या मैं मुख्यमन्त्री बना हूँ ? और इसी ताकत के लिए ही क्या रथीन सिकदार और केस्टो हालदार मे आज होड़ लगी हुई है ?

एकाएक शंकर की बात कान में आयी, "मैं केस्टो हालदार जी को बुला लाता हूँ ज्योतिदा। रतन यहाँ रहा।"

मुझे स्वयं एक प्रकार का आश्चर्य लगा। मैं यहाँ केस्टो हालदार से मिलने नही आया था और न रथीन सिकदार से ही। जो लोग राइटर्स बिल्डिंग में मुझसे मिलने को व्याकुल रहते हैं, वे ही लोग मुझसे मिलने के लिए यहाँ आ रहे

हैं। इन्ही लोगों से जान छुड़ाने के लिए ही मैं मयनाडांगा आया हूं। आज किसान-सम्मेलन है। लेकिन एक भी किसान मुझसे मिलने के लिए नही आया। किसान जिससे यहां नहीं आ सकें इसके लिए बाहर गेट पर मैंने पुलिस का पहरा बिठा दिया है। वे लोग मेरे पास आयें तो कैसे आयें। मैं उन्हें बुलावा नहीं भेज रहा हूं। यहां आकर जिसकी बात मन में सबसे अधिक उमड़-घुमड़ रही है, उस नुटु को भी मैंने बुलावा नही भेजा है। इतने दिनों से, हो सकता है कि मैं इसी किस्म की धोखाधड़ी करता आ रहा हूं। "अच्छा, जाओ।" मैंने कहा।

तब मेरा भोजन समाप्त हो चुका था। रतन साबुन और तौलिया लेकर नलघर में मौजूद था। प्लास्टिक के मग में पानी लेकर उसने मेरे हाथ धुलाये। हाथ-मुंह धोकर ज्योतिर्मय सेन पुनः अपनी जगह पर आकर बैठ गये। उन लोगों ने गद्दीदार एक बेहतरीन आराम-कुरसी का इन्तजाम किया था। उन लोगों ने यानी शंकर वगैरह ने। जिला कांग्रेस के अध्यक्ष से लेकर मण्डल कांग्रेस के शंकर तक ने बखूबी सारा इन्तजाम किया था। खाने का इन्तजाम भी इन्हीं लोगों ने किया था। शुद्ध घी, बढ़िया चावल, बढ़िया दाल खरीदकर ले आये थे। साथ-ही-साथ उम्दा किस्म की गोड़रा मछली, बेहतरीन राजभोग। इतना उम्दा खाना बाहरी आदमियों के सामने मुझसे खाया नहीं जाता। मुख्य मन्त्री सबके सामने इतना उम्दा खाना नही खा सकता है। खाये तो दूसरे दिन ही विरोधी दलों के अखबार यह खबर छाप देंगे। मैं उन लोगों को राशन में मोटा चावल खाने को देता हूं और सो भी आधा पेट ही, लेकिन मैं स्वयं इतना बढ़िया खाना खाता हूं—इस बात का पता अगर बाहरी लोगों को चल जाये तो पार्टी के लिए हानिकारक है ही, साथ-ही-साथ मेरे चुनाव के प्रचार के लिए भी हानिकारक साबित होगी।

और नुटु के घर में खाने को क्या रहता था ?

नुटु की मां कहती, "तुम तो कुछ खा ही नही रहे हो बेटा। तुम्हारी तबीयत खराब है क्या ?"

"नही।" मैंने कहा।

नुटु ने कहा, "आज दिन-भर वह कड़ी धूप में घूमा है। जानती हो मां, मेरे साथ इसने भी ईंट ढोयी है।"

"बाप रे! कह क्या रहे हो ? इससे तुमने ईंटें ढुलवायी हैं ?"

"मैंने मना किया था," नुटु ने कहा, "मगर इसने मेरी बात मानी ही नही।"

"क्यों जी, मैंने मना नही किया था ? अब सारा बदन टूट रहा है न ?"

"नही, नही टूट रहा है।" मैंने कहा।

मुंह से तो कह दिया कि नहीं टूट रहा है लेकिन सचमुच सारा बदन टूट रहा था। तब न केवल बदन वल्कि सर भी दुख रहा था। लग रहा था कि उलटी हो जायेगी। मयनाडांगा के मैदान में धूप की तपिश से दिन-भर सर तपता रहा था। और उस पर ईंट की ढुलायी। क्यों ईंट ढोने गया, मालूम नहीं। हो सकता है कि मेरे मन में आया था कि मैं भी हर तरह की परिस्थिति से तालमेल विठा सकता हूँ। कि मेरा जो 'मैं' कलकत्ता शहर के प्रमुख व्यक्ति का पुत्र है, मेरा वही 'मैं' मयनाडांगा के दरिद्र से दरिद्र व्यक्ति नुटु का मित्र भी है। यह दो सत्ताएँ बिल्कुल अलग रहने पर भी एक पूर्ण सत्ता है। मालूम नहीं, मनोविज्ञान के जगत् के लिए इस रहस्य-का उद्‌घाटन करना सम्भव है या नहीं। लेकिन संसार में इस तरह की घटनाएँ इतनी हुई हैं जिनकी कोई सीमा नहीं। इक्ष्वाकु राजवंश की एकमात्र सन्तान होकर किसी को पथ का भिखारी बनने की अभिलाषा हो सकती है, इस बात को इतिहास में बिना पढ़े किसी को इस पर विश्वास नहीं होता। देखने में आया है कि गरीबों की बहुत प्रकार की जातियाँ होती हैं लेकिन अमीरों की एक ही जाति होती है। इस दुनिया में छोटे से बड़े होने के बारे में जितनी कहानियाँ हैं, उसकी अपेक्षा बड़े से छोटे होने की कहानियाँ ही अधिक हैं। नीचे उतरने में तकलीफ नहीं होती, ऊपर चढ़ना ही कठिन होता है। लोग नीचे उतरने की कहानी सुनना पसन्द नहीं करते। वे कहते हैं, "छोटे से बड़ा कैसे हुआ—इसी की कहानी कहो।" लिखित इतिहास में इसी तरह की घटनाओं की प्रधानता है, क्योंकि हर कोई बड़ा बनना चाहता है। राजा मनु ने सिंहासन त्यागकर संन्यास क्यों ग्रहण किया था, इसके इतिहास की हमें जानकारी नहीं है। न हम समझते हैं और न जानना ही चाहते हैं। लाला बाबू के गृह-त्याग या सिद्धार्थ के गृह-त्याग के बारे में जो कविता, कहानी लिखी-गयी है, इसका कारण है कि ये दोनों राजा थे या राजा के समान जमीदार के पुत्र। लेकिन संख्यातीत कितने ही मध्यवित्त वंश के पुत्रों ने कंगाल होने के आनन्द में जो त्याग किया है, उसके बारे में किसी ने चर्चा नहीं की है। [illegible] है। 'विराट्' की कल्पना कर हम रोमांचित होते हैं, 'विराट्' के बारे में ही हम बहुत-कुछ कहते-सुनते हैं। चाहे त्याग हो या भोग—जब तक वह विराट् है तभी तक वह हमारे लिए आलोचना की वस्तु है। एक पैसे के दान का हिसाब कहीं नहीं रहता है और लाख रुपये के दान की प्रशंसा समाचार-पत्र जी खोलकर करते हैं। मोटर पर चढ़कर जानेवाले भिखमंगों को जितने पैसे देते हैं उससे अधिक पैसे दान करते हैं पैदल चलनेवाले। बड़े लोगों का दान बड़ा होता है तो वह 'चैरिटी' कहलाता है और छोटों का छोटा दान 'परोपकार' कहलाता है। जो लोग चैरिटी करते हैं, वे इसलिए करते हैं कि अखबारों में उनका नाम छपे। परोपकार

निःस्वार्थ भावना से किया जाता है। परोपकार का कर्ता और ग्रहीता—दोनों निःशब्दता के भक्त होते हैं। विद्यासागर इसी श्रेणी के व्यक्ति थे। इसीलिए वह चैरिटी नहीं करते थे। करते थे तो उपकार ही करते थे। याद है, बचपन में मैंने पढ़ा था, 'बनना अगर बड़ा है तुमको, तो छोटा बन जाओ...'

यह सत्य नहीं, बल्कि उपदेश है। जिसे न मानने से कोई हानि नहीं होती, उसी को उपदेश कहते हैं। जो छोटे हैं उनका काम है उपदेश का पालन और जो बड़े हैं उनका काम है उपदेश-दान। बड़ा होने से कोई काम नहीं करना पड़ेगा, इसीलिए बड़े बनने का सभी में बड़ा ही लोभ रहता है। ज्योतिर्मय सेन हमेशा बड़े ही रहे हैं, अब और भी बड़े हो गये हैं। लेकिन बड़े होने से उपदेश-दान में वृद्धि होने के बावजूद झंझट-झमेलों में कमी नहीं आयी है।

अचानक नुटु चिल्ला उठा, "तुम्हें बुखार है जी।"

रात में नींद के आवेग के कारण शायद मेरे बदन से उसका हाथ छू गया था। मुझे भी कैसा-कैसा लग रहा था। सर में टीस मालूम हो रही थी। मैं बहुत देर से बेचैनी का अहसास कर रहा था।

"बड़ी प्यास लगी है भाई।" मैंने कहा।

नुटु ने कहा, "ठहरो, पानी लाकर देता हूँ।"

वैकुण्ठ हम लोगों की बगल में सोया करता था। एक ही बिछावन पर हम लोग अगल-बगल सोया करते थे। नुटु को उठते देखकर वैकुण्ठ भी उठा। पानी की कलशी बाहरी ओसारे पर रहती थी। वैकुण्ठ नुटु के साथ जाकर उसके पीछे खड़ा हो गया।

"गिलास कहाँ है वैकुण्ठ?" उसने कहा।

जैसे वैकुण्ठ गिलास खोजकर ला देगा। वैकुण्ठ ने बरतनों की ओर ताका। "तुमसे कोई काम हो ही नहीं सकता है।" नुटु ने कहा और लंगड़ाता हुआ वहाँ गया और गिलास लाकर उसमें पानी भरकर ले आया।

"लो पियो।" उसने कहा।

मुझे पानी पिलाकर उसने गिलास रख दिया और कहा, "वैकुण्ठ किसी भी काम का नहीं है, उससे कोई काम नहीं हो सकता है। वह सिर्फ पीछे-पीछे घूमा करता है।"

फिर उसने मुझसे कहा, "तुमसे कहा था कि धूप में मत घूमो। मेरी तुमने सुनी नहीं। अब तकलीफ भोगो।"

वैकुण्ठ अपना मुँह मेरे पास ले आया था और कुछ सूँघ रहा था। नुटु ने उसे ढकेलकर कहा, "जाओ, भागो, उसका माथा क्यों सूँघ रहे हो? तुम डॉक्टर हो जो बुखार देखोगे? तुम किसी भी काम के नहीं हो। सिर्फ खाने में बहादुर हो।"

दूसरे दिन मुझे होश नहीं रहा। मुझे जब बुखार आता था तो घर के सारे लोग व्याकुल हो उठते थे, बाबूजी का टेलीफोन मिलते ही कलकत्ते के बड़े-बड़े डॉक्टर दौड़े-दौड़े आते थे, लेकिन आज मैं ज्वर के आवेग के कारण बेहोशी की हालत में मयनाडांगा की एक अनजान और साधारण झोंपड़ी में पड़ा था। हो सकता है कि अब भी हरिसाधन बाबू मेरे घर में आते होंगे और मेरे बारे में पूछताछ करते होंगे, "ज्योति कहाँ गया? पुलिस ने कोई सूचना दी है या नहीं?"

पुलिस भी क्या कम परेशान होगी!

हो सकता है कि हरिसाधन चटर्जी खुद थाने में गये हों और पुलिस से पूछताछ की हो।

पुलिस का ओ. सी. ओ. लज्जित होगा। गरीबों का लड़का खो जाये तो उनके लिए फिक्र की कोई बात नहीं है। जितनी परेशानी होती है वह सब बड़े लोगों के लड़कों के कारण ही।

तब अंग्रेजों का राज्य था। हो सकता है कि ओ. सी. ओ. कहे, "चारों ओर खबर भेज दी है सर। अब तक कोई पता नहीं चला है।"

बाबूजी बैरिस्टर है। *बाबूजी ने बिगड़कर कहा होगा,* "फिर आप लोग हैं ही क्यों? ह्वाट यूआर दे यार फॉर? मैं गवर्नर के प्राइवेट सिक्रेटरी को फोन करूँगा···"

गवर्नर के प्राइवेट सिक्रेटरी तक हर किसी की पहुँच नहीं हो सकती है। जिनकी पहुँच है, उनकी समस्या का समाधान हो जाता है। जिनकी समस्या का उससे भी समाधान नहीं होता है वे अन्त में यह सोचकर सान्त्वना धारण करते हैं कि जहाँ तक उनकी सामर्थ्य है, उन्होंने कोशिश की। सरकार की पुलिस और उसके कर्मचारियों ने आखिर-आखिर तक कोशिश की। लेकिन जो गरीब हैं वे सोचते हैं कि हमारे लिए किसी ने कोई कोशिश नहीं की।

और घर में क्या हालत होगी? रघु की तनख्वाह जरूर ही काट ली गयी होगी। बैजू की भी यही हालत हुई होगी। बैजू दरभंगा जिले का आदमी है। विश्वासी भी है। रात-दिन फाटक पर पहरा देता है। वह भी सहमा-सहमा होगा।

और शुकदेव? शुकदेव को लेकर ही पुलिस अधिक खींचतान कर रही होगी। जिरह करते-करते नाकों दम कर दिया होगा।

"तुम जब घर से निकले तो ज्योतिर्मय सेन को अपने साथ क्यों ले गये?"

"गाड़ी के अन्दर कोई और आदमी नहीं था, तुम्हें मालूम है?"

"तुम पर जब छोटे बच्चे की जिम्मेदारी थी तो उसे छोड़कर भागना तुम्हारे लिए क्या उचित था?"

मयनाडाँगा में लेटे-लेटे मैं कल्पना करता था कि मेरे लिए कलकत्ते में हंगामा मच गया है। लेकिन किसी को यह मालूम नही है कि मैं अभी यहाँ बेहोश होकर पड़ा हूँ।

इस अज्ञातवास में सम्भवतः एक प्रकार का आनन्द छिपा है। पाण्डवों ने जो अज्ञातवास किया था उसका कोई अवश्य ही अर्थ था। इस अज्ञातवास में सम्भवतः मनुष्य के लिए आत्मान्वेषण सहज होता है। अज्ञातवास मे जितनी यातना है उसकी अपेक्षा सुख की मात्रा कही अधिक है। जब मैं राइटर्स बिल्डिंग में रहता हूँ तब चाटुकारों की स्तुतियों से अन्धा हो जाता हूँ। लेकिन यहाँ मयनाडाँगा में मँझले बाबू के घर पर भी ये लोग भागे-भागे पहुँच गये हैं। इस मयनाडाँगा का विष्णु घोष रसगुल्ला खिलाकर प्रमाण-पत्र माँगने आया है, रथीन सिकदार गोडरा मछली खिलाकर मनोनयन माँगने आया है, और आया है'''

"कैसी तबीयत है ज्योति ?"

कोई जवाब नही मिला। नुटु ने मेरे माथे पर अपना हाथ रखा। उसका हाथ जैसे आग से जल गया। नुटु चौंक पड़ा। वैकुण्ठ भी नुटु की देखादेखी मेरे मुँह के पास अपना मुँह ले आया।

नुटु ने जोरों से धमकाया, "तुम्हारे कारण भारी मुसीबत है। यहाँ से हटो-हटो, देख नही रहे हो कि ज्योति बीमार है ?"

वैकुण्ठ बात समझता था। वह अपना सर झुकाये थोड़ा हटकर खड़ा हो गया।

"अरे हट जाओ, उधर हटो। कह रहा हूँ'''"

वैकुण्ठ और अलग हटकर खड़ा हो गया।

नुटु ने कहा, "तुम्हारी देह की बदबू से आदमी यों ही भागता है। और वह ठहरा बीमार आदमी। उसे तो उलटी हो जायेगी। खबरदार, कहे देता हूँ कि बीमार आदमी के पास मत जाना।"

वैकुण्ठ अपराधी की तरह माथा झुकाये वहीं खड़ा रहा। सचमुच, अपने अपराध की भीषणता उसकी समझ में आ गयी थी। डाँट-फटकार सुनने के कारण उसकी आँखें छलछला आयी थीं।

नुटु ने फिर डाँटा, "अब रुलायी फूटने लगी। कौन-सी ऐसी अन्याय की बात मैंने कही ? तुम्हारी देह से क्या खुशबूदार साबुन की खुशबू निकलती है कि आदमी तुम्हे गोद मे लेकर नाचे ? तुम मेरे घर में आये ही क्यों, सुनूँ तो जरा। बाबू लोगों के घर नहीं जा सके ? वे लोग तुम्हें खुशबूदार साबुन लगाते, तुम्हारी देह में इत्र छिड़कते। वे सब चीजें मैं कहाँ से लाऊँ ? हम लोग गरीब आदमी ठहरे, यह क्या तुम्हे मालूम नही है ?"

वैकुण्ठ फिर भी चुप रहा।

अचानक बातों की भनक माँ के कानों में पहुँची। माँ रसोई का इन्तजाम कर रही थी।

"क्या हुआ नुटु ?"

नुटु ने कहा, "देखो न माँ, मैं चिन्ता के मारे अलग ही परेशान हूँ और इधर वैकुण्ठ रोगी के पास जाकर उसका माथा चाटने लगता है। मैं उसके माथे पर हाथ रखकर बुखार देखूँगा तो वह भी देखेगा। जानवर आखिर कहते हैं किसे…"

माँ ने रसोई बनाते-बनाते कहा, "उसको तुम घर से विदा कर दो।"

नुटु ने कहा, "मैं भी यही सोच रहा हूँ कि उसे विदा कर दूँगा। वह अब आदमी नहीं हो सकेगा…"

बोलने के लिए तो वह बोल गया लेकिन उसने वैकुण्ठ की ओर गौर से देखा। वह जैसे माथा झुकाये सब सुन रहा था। नुटु आहिस्ता-आहिस्ता वैकुण्ठ के पास गया और जाकर उसके सींगों को पकड़ा। "क्या रे," उसने कहा, "डाँटा है तो तुम्हें गुस्सा हो आया है ?"

फिर माँ को पुकारकर कहा, "ए माँ, देखो-देखो, जानवर कहा है इसलिए वैकुण्ठ गुस्सा गया है। जानवर को जानवर नहीं कहूँ तो क्या कहूँ ? देवता कहूँ ? हम लोगों के देवता ? देवता कहकर आदर करूँ ?"

वैकुण्ठ के गले को पकड़कर नुटु उसे पुचकारने लगा। नुटु उसे जितना ही पुचकारता था, वैकुण्ठ उतना ही अपना मुँह घुमा लेता था। किसी भी हालत में पुचकारने नहीं देता था। उसे गुस्सा नहीं आता क्या ? वह मान नहीं कर सकता है ? वह क्या बेवकूफ है कि कुछ समझता ही नहीं ?

नुटु समझ गया। "क्यों गुस्साये हुए हो वैकुण्ठ ?" उसने कहा, "मैंने तुम्हें कुछ बुरा कहा है ? मुझे क्या एक ही झंझट है ? इधर घर में चावल नहीं, बाप शराब पीकर कहीं पड़ा रहता है और उस पर तुम गँवार की तरह काम करते हो। घर में बड़े आदमी के लड़के को लाकर रखा है और वह बीमार है। मैं कौन-सा मोर्चा सँभालूँ ? बताओ तो सही।"

वैकुण्ठ अब जैसे हल्की हँसी हँसा, जैसे उसका गुस्सा अब उतरा।

नुटु के चेहरे पर कितनी हँसी छलक आयी। "माँ, यह देखो," उसने कहा, "अब वैकुण्ठ का गुस्सा उतरा है। वह सब समझता-बूझता है माँ। जानवर होने से क्या होगा, इसको बड़ी समझ है।"

वैकुण्ठ तब खुश होकर नुटु का गाल चाट रहा था।

नुटु भी तब उसके लाड़-प्यार से खुश हो रहा था। माँ की बात सुनकर वह अचानक होश में आया। माँ ने कहा, "वैकुण्ठ को दुलारने से ही तेरा पेट भरेगा ? मुझे भात नहीं बनाना है ?"

नुटु उठकर खड़ा हुआ और बोला, "हाँ, अभी तुरन्त जा रहा हूँ।"

फिर उसे याद आया। "ज्योति क्या खायेगा माँ ?" उसने कहा।

माँ झुंझला उठी, "वह क्या खायेगा, मैं क्या जानूँ। अंगूर, बेदाना, सेब खायेगा और क्या खायेगा।"

"क्या कह रही हो माँ ! बीमारी की हालत में कोई अंगूर, बेदाना और सेब कहीं खाता है ! उसके लिए थोड़ा सागूदाना बना दो। बाबू लोगों को ज्वर होता है तो वे सागूदाना खाते हैं। बिन्दावन साव की दुकान में देखा है कि ज्वर होने पर लोग सागूदाना खरीदते हैं।"

माँ ने कहा, "बाबू लोगों के घर में किसी को ज्वर होता होगा तो वह सागूदाना खाता होगा। मुझे जब ज्वर हुआ था तो मैंने क्या सागूदाना खाया था या तुमने ही मेरे लिए सागूदाना ला दिया था ?"

"लेकिन माँ, ज्योति क्या हम लोगों की तरह है ? उसका ज्वर कहीं बढ़ गया तो ?"

"फिर डॉक्टर बुलाओ। सागूदाना ले आओ, दवा लाओ। तुम्हारे पास पैसा है, तुम डॉक्टर बुलाओगे, दवा लाओगे, इसमें मेरा क्या !"

नुटु उस ताने को समझ गया। बात सुनकर वह कुछ क्षणों तक खामोश रहा। फिर बोला, "तुम इस तरह क्यों बतिया रही हो ? बिना ताना मारे आदमी से बात नहीं की जा सकती है ?"

"ताना न मारूँ तो क्या करूँ ! जिसे खाने के लिए अनाज नहीं जुटता है, उसके लिए बड़े आदमी के लड़के को शौक से रखना शोभा देता है ?"

नुटु ने तीखी आवाज में कहा, "उसका यहाँ कोई नहीं है तो वह क्या बेमौत मरे ?"

माँ ने कहा, "मरेगा या नहीं, सो तुम जानो। मैं उसके बारे में क्या जानूँ ? मुझे क्या परवाह ! मैं उसे ले घर आयी हूँ या उसका पालन-पोषण कर रही हूँ ?"

"बार बार तुम एक ही बात करोगी ! मुझे क्या उस वक्त मालूम था कि वह इस तरह बीमार हो जायेगा !"

"नहीं मालूम था तो इस पाप को मरने के लिए घर उठाकर क्यों ले आये ?"

"माँ !" नुटु चिल्ला उठा। फिर कुछ क्षणों तक चुप रहने के बाद बोला, "खबरदार ! कहे देता हूँ, ऐसी बात मत बोलना।"

"क्यों नहीं बोलूँगी, सुनूँ तो जरा। तुम तो खेत में मजदूरी करने जा रहे हो। घर पर मुझे ही रहना है। मुझे ही तो सब करना पड़ेगा। फिर कहूँ क्यों नहीं ?"

"नहीं, तुम नहीं बोल सकती हो। तुम्हारे मुंह से अपशकुन की बातें मैं दुबारा नहीं सुनना चाहता हूँ।"

"जरूर कहूँगी। अलबत्ता कहूँगी। बड़े ही कमाऊ पूत है मेरे। तब मानती जब दोनों जून दो मुट्ठी खाना लाकर देते। जो खाना नही दे सकता है उसकी इतनी फरमायश ही क्यों। मुझसे सागूदाना बनाना नही हो सकेगा। जरूरत है तो खुद सागूदाना खरीदकर ले आओ और बनाओ।"

नुटु तब गुस्से से उबल रहा था। "आखिरी बार कहे देता हूँ माँ, मुझे गुस्सा मत दिखाओ, गुस्सा आया तो मैं लंकाकाण्ड मचा दूंगा···"

"क्या लंकाकाण्ड मचाओगे? मचाओ न, घर में आग लगा दो न, छुटकारा मिल जायेगा।"

ऐसे में झूमते-झामते दिगम्बर वहाँ आ पहुँचा।

"क्या हुआ, इतना हो-हल्ला किसलिए हो रहा है?"

वह भीगे कपड़े पहने था। कन्धे पर भीगा अँगोछा और दोनों आँखें लाल-लाल।

"फिर झगड़ा क्यों शुरू हुआ?"

माँ ने कहा, "देखो न, तुम्हारा बेटा पता नहीं किसके लड़के को घर पर लाकर पाल रहा है। अभी वह ज्वर से बेहाल है। उसके लिए अभी सागूदाना बनाना पड़ेगा और उसकी तीमारदारी करनी पड़ेगी। मैंने कहा कि मुझसे नहीं बन पड़ेगा तो मुझे आँखें दिखा रहा है। कह रहा है कि घर में आग लगा देगा।"

एक तो दिगम्बर ने रात-भर जगकर नसाखोरी की थी और उस पर घर में यह अशान्ति। गाँजे का दम लगाने के कारण उसकी आँखें लाल-लाल थीं। बात सुनकर वह वहाँ नहीं रुका। सीधे अपने लड़के की ओर बढ़ा। "हरामी का बच्चा," उसने कहा, "घर में तू आग लगायेगा, तेरी यह हिम्मत!"

नुटु लँगड़ाते-लँगड़ाते एक कदम पीछे हट गया। फिर बोला, "कहे देता हूँ, अब आगे मत बढ़िए वरना मारकर धराशायी कर दूंगा।"

"क्या कहा हरामजादे!"

दिगम्बर की लाल-लाल आँखें और भी लाल हो गयी।

"जो कह रहा हूँ, ठीक ही कह रहा हूँ। अब आगे मत बढ़िए, आगे बढ़िएगा तो आपका सर फोड़ दूंगा। मेरा दिमाग अभी ठिकाने नहीं है।"

दिगम्बर तब होश-हवास गँवा बैठा था। "कहाँ गया पट्ठा? देखूँ, उसे किस तरह का ज्वर है? मैं पट्ठे का ज्वर उतार देता हूँ···"

"बाबूजी!"

नुटु चिल्ला उठा। "ज्योति के बदन को छुआ तो फिर आपकी जान रहेगी

या मेरी ही जान रहेगी । मैं सागूदाना लाने जा रहा हूँ, डॉक्टर को भी बुलाना है । लौटकर अगर पाया कि ज्योति को कुछ हुआ है तो आप दोनों को देख लूंगा···कहे देता हूँ ।"

इतना कहकर उसने वैकुण्ठ को पुकारा, "चलो वैकुण्ठ ।"

वैकुण्ठ के गले के घुंघरू टुन-टुन बज उठे । जैसे उसने भी इत्मीनान की साँस ली । फिर उसने बैलों को गाड़ी में जोता । गाडी चलने लगी । पीछे-पीछे वैकुण्ठ भी घुंघरुओं को टुनटुनाते हुए जाने लगा । मयनाडांगा के स्टेशन के रास्ते के बायें से एक रास्ता सीधे बाजार की ओर जाता था । बाजार के अन्दर साहा बाबू की आढ़त थी ।

नुटु लँगड़ाता हुआ गद्दी में हाजिर हुआ ।

"परणाम साहा बाबू ।"

साहा बाबू के पास उतना वक्त नही था कि जब-तब इसका-उसका प्रणाम स्वीकार करे । उसने नजर उठाकर एक बार नुटु की ओर देखा और वह हिसाब के खाते में डूब गया । हिसाब में थोड़ी भी चूक हो जाये तो रुपया-आना-पाई में गलती हो जायेगी ।

हाथ की उँगली में हासिल के पैसे को अटकाये साहा बाबू ने कहा, "ए केदार, फिर यह शैतान क्या कहने आया है । पूछो ।"

केदार मुनीम आगे बढ़कर उसके सामने आया ।

"क्या जी, क्या चाहते हो ?"

नुटु ने विवश बालक की तरह विनम्रता के साथ कहा, "आज खेप नहीं मिलेगी ?"

केदार ने आवाज धीमी करके कहा, "तुम कितनी खेपें चाहते हो ?"

नुटु ने कहा, "आप जितनी दे सकें । काम-धन्धे में बड़ी कमी आ रही है मुनीमजी ! घर में मुसीबत का दौर चल रहा है । अगर कुछ पेशगी दें तो घर पर सागूदाना पहुँचा आऊँ । घर पर बीमारी का सिलसिला चल रहा है ।"

केदार मुनीम ने अपनी आवाज को और भी धीमी करके कहा, "साहा बाबू तुम पर बिगड़े हुए हैं, मालूम है न ? उस बार तुम्हें खेप देने के कारण कई वैगन खाली लौट गये थे ।"

नुटु ने कहा, "यह सब बात मैं नहीं सुनना चाहता हूँ मुनीमजी ! आपको जो नजराना लेना हो ले लें । मुझे एक रुपया चाहिए । आपके पैर पकड़ता हूँ···"

"अरे कर क्या रहे हो ? सुबह-सुबह छू दिया ।"

"न होगा तो आप नहा लें हुजूर । मुझे एक रुपया देना ही पड़ेगा । जब तक न देंगे मैं आपका पैर नहीं छोड़ूंगा ।"

उस तरफ से साहा बाबू की आवाज आयी, "केदार, वह क्या बक-बक कर रहा है ? क्या चाहता है ?"

केदार ने कहा, "खेप माँग रहा है मालिक !"

"मत देना, हरगिज मत देना । पट्ठे को जरा होश में आने दो । कहे देता हूँ, मत देना ।"

केदार ने आँख मटकायी । फिर धीमी आवाज में कहा, "लो, रुपये को छिपा लो । मालिक दोपहर में जब खाने चले जायेंगे, तब आना । खेप दूँगा । लेकिन अब चार आने से काम नहीं चलेगा । साढ़े चार आना नजराना देना पड़ेगा ।"

"उतना ही दूँगा मुनीमजी । आपके पैरों पड़कर कहता हूँ कि देह से खटकर मैं वसूल कर दूँगा । गरीबों को देने से आपकी भलाई होगी । आप दीजिए ।"

केदार मुनीम के हाथ से नुटु ने झपट्टा मारकर रुपया ले लिया और लँगड़ाता हुआ दौड़ने लगा । वैकुण्ठ भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा । जब तक वह बाजार के बिन्दावन हाजरा की दुकान में नहीं पहुँच जाता है, तब तक उसकी दौड़ थमने की नहीं है ।

"क्या जी केदार, वह पट्ठा क्या कह रहा था ?"

केदार मुनीम ने कहा, "कहेगा क्या, खेप माँग रहा था ।"

"खेप नहीं दी है न ?"

केदार ने कहा, "आप पागल हुए हैं ! उस हरामजादे को अब खेप दूँगा ? हरामजादे के चलते एक बार गद्दी का नुकसान हो चुका है । अब दूँ भला ।"

"अच्छा किया, बहुत ही अच्छा ।" साहा बाबू फिर हिसाब के कत्थई खाते में डूब गये । रुपया-आना-पाई···"

"कौन ?"

महीन खादी का चुन्नटदार कुरता पहने हुए है । दूध की तरह सफेद देह का रंग । मोटा-सोटा बदन । आते ही मेरे पैरों को छूने लगा ।

"यह क्या कर रहे हैं ? कौन हैं आप ?" मैंने कहा, "शंकर कहाँ है ? रतन ?"

रतन और शंकर दोनों दौड़े-दौड़े आये ।

"आप कौन हैं ?" मैंने कहा, "मैंने केस्टो हालदार को बुलाने को कहा था न ।"

शंकर ने कहा, "केस्टो हालदारजी खाना खाने गये हैं । खाकर तुरन्त आयेंगे । और आप हैं मन्मथ बाबू । यहाँ के मँझले बाबू । आपसे इनके बारे में कहा था । यह मकान इन्हीं का है । जमींदारी तो चली गयी है न ! अब इन

लोगों ने कलकत्ते मे कब्जे का कारखाना खोला है।"

"बैठिए।" मैंने कहा।

मन्मथ बाबू प्रसन्न हुए। खुलकर मुसकराते हुए बोले, "आपको यहाँ कोई तकलीफ तो नही हो रही है ज्योतिदा ? आप आइएगा, यह सुनकर मैंने समूचे मकान मे सफेदी पोतवाई है। अब यहाँ नहीं रह रहा हूँ···सारे फर्निचर का इन्तजाम कर दिया है··"

फिर वही खुशामद। मैंने उसके चेहरे की ओर देखा। एक जैसा ही चेहरा। इन चेहरो से ज्योतिर्मय सेन परिचित है। ऐसे लोगों को खुशामद की कला आती है और खुशामद कर मन्त्रियों से परमिट और लाइसेंस वसूल सकते है। उतनी दूर कलकत्ते से वह यो ही नही आया है। ये ही लोग ये नुटू और दिगम्बर के बाबू। कभी इन लोगों के इसी मकान में मोर था, काकातुआ था और कुत्ता था। आज यह मकान खाली पड़ा है। इन बाबुओं ने जमींदारी बेचकर लाखों रुपये से कलकत्ते में नया मकान बनवाया है। हो सकता है कि उस मकान में बाबू लोग रेडियो, रेडियोग्राम और रेफ्रिजेरेटर रखे हुए हैं। अमरीका, जर्मनी और इंग्लैण्ड मे जो-जो चीजें बनती हैं, सब रखे हुए हैं। नही रखे है तो केवल मोर, काकातुआ और कुत्ता···

"तकलीफ हो तो बतायें, लजाने की जरूरत नही है। इसे अपना ही घर समझें ज्योतिदा···"

दस

मन्मथ बाबू का चेहरा देखते ही समझ मे आ जाता है कि कभी ये लोग जमीदार रहे होंगे। लेकिन ज्योतिर्मय सेन को लगा कि जमीदारी चली जाने के बावजूद इन लोगों की जमीदारी नही गयी है। क्षतिपूर्ति के रूप मे मोटी रकम पाकर मोटा लाभ हुआ है। बस मोटे लाभ के रुपयों को और भी बड़ी जमींदारी में लगाकर अब और मोटा लाभांश प्राप्त कर रहे हैं अन्यथा चेहरा-मोहरा इतना सुडौल क्यों रहता !

ज्योतिर्मय सेन हँस पड़े। इन बातों पर हँसना ही चाहिए। वह हँसी तृप्ति और आनन्द की हँसी थी। जब से राजनीति कर रहे हैं, तब से इस तरह की हँसी हँसना उन्होंने सीखा है। मन में चाहे जितना आक्रोश उबलता हो, जितनी घृणा हो, जितनी शत्रुता हो, लेकिन बाहर से हँसी ओढ़कर रहना पड़ेगा। इसी से काम बनता है। जनप्रियता बनी रहती है। और जनप्रियता ही एकमात्र पूँजी है।

"इस गाँव की हालत देख रहे हैं न !"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "कैसे देखूं, सुबह से मैं तो यहीं बैठा हुआ हूँ ।"

"लेकिन कुछ-न-कुछ अवश्य ही सुना होगा।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "खबर राइटर्स बिल्डिंग में पहुँच ही जाया करती है।"

"सो तो पहुँचेगी ही। हम लोग जब तक इस गाँव में थे, यहाँ के लोगों की ऐसी बदतर हालत नहीं थी। मेरे पिताजी पूजा के अवसर पर हर व्यक्ति को एक-एक कपड़ा दिया करते थे।"

"तब यह क्यों नहीं कहते कि आप लोगों के चले जाने से गाँव के लोगों की बहुत बड़ी हानि हुई है।"

मन्मथ बाबू ने बात को दूसरी ओर मोड़ दिया। "मेरे कहने का यह मतलब नहीं है। आप गाँव के लोगों से पूछकर देख लें कि उनका क्या कहना है। वे अब अच्छी हालत में हैं या तब अच्छी हालत में थे।"

"फिर आप क्या कहना चाहते हैं कि जमींदारी प्रथा फिर से लौट आये ?"

मन्मथ बाबू को जैसे लज्जा का बोध हुआ।

"छिः-छिः ! घड़ी की सूई क्या उलटी दिशा में घूम सकती है ? मैं आपसे यह सब नहीं कहने आया हूँ। यों ही आपके दर्शन को चला आया। हमारे घर में आप जैसे व्यक्ति के चरणों की धूल गिरी है, यह क्या हम लोगों के लिए कम सौभाग्य की बात है। मुझे सिर्फ यही पूछना था कि आपको कोई असुविधा तो नहीं हो रही है।"

फिर वही खुशामद। इस तरह की खुशामद सुनने के ज्योतिर्मय सेन आदी हो गये हैं। जब से ताकत हाथ में आयी है तब से यह सब देख-सुन रहे हैं। इसीलिए तो आदमी ताकत चाहता है। ताकत में बड़ा ही मोह रहता है। उसके सामने रुपया-पैसा, मान-सम्मान और स्वास्थ्य तुच्छ हैं। ताकत के लिए ही आदमी संन्यास ग्रहण करता है। ताकत के लिए ही आदमी अर्थ को अनर्थ के रूप में लेता है। इसीलिए ताकत दुनिया में सबके लिए हानिकारक साबित होती है।

अचानक शंकर ने कमरे में प्रवेश किया।

"ज्योतिदा, आप तो आराम नहीं कर सके।" उसने कहा।

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "कहाँ कर पाया।"

"आपसे मिलने के लिए इतने आदमी आ रहे हैं कि उन्हें रोककर रखना मुश्किल हो रहा है।"

"मैं इसका अभ्यस्त हो गया हूँ शंकर।"

आज ज्योतिर्मय सेन जिस स्थान पर पहुँच चुके हैं, शंकर वगैरह भी उसी स्थान पर पहुँचने के लिए प्राणपण से कोशिश कर रहे हैं। जिस दिन वहाँ

पहुँचने में असफल हो जायेंगे, उस दिन मेरा सम्मान करना भी छोड़ देंगे। तब दूसरे ज्योतिर्मय सेन को पकड़ेंगे। उनकी भी खुशामद इसी तरह करेंगे। इसी तरह सम्मान भी करेंगे। यही तो नियम है। इसके बारे में सोचकर मन खराब नहीं करना चाहिए। सच तो यह है कि मन किसी भी वजह से खराब नहीं करना चाहिए। मन खराब होता है तो स्वास्थ्य भी बिगड़ता है और स्वास्थ्य के बिगड़ते ही अध:पतन की शुरुआत हो जाती है।

जब किसी आदमी का जीवन से सम्बन्ध टूट जाता है तो उसमें भय की शुरुआत होती है। जीवन का अर्थ व्यक्ति है। व्यक्ति का अर्थ मनुष्य। मनुष्य से सम्बन्ध का अर्थ ही जीवन से सम्बन्ध है। जीवन की शुरुआत में यह सहज है। मसलन शंकर। शंकर के जीवन की यह शुरुआत है। घर-द्वार छोड़कर मुझसे सम्बन्ध-सूत्र जोड़े हुए है। चुनाव में उतरेगा तो मेहनत करेगा, प्रचार करेगा लेकिन जब उम्र ढल जायेगी तब मेरी ही तरह उसको भी आराम की जरूरत महसूस होगी। अभी यह नहीं खाता है या नहीं सोता है तो कोई हर्ज नहीं होता। लेकिन तब उसे इन शंकर जैसे लोगों पर निर्भर करना होगा। इन्हीं लोगों की मेहनत और ईमानदारी पर निर्भर कर अपनी प्रतिष्ठा सुरक्षित रखनी पड़ेगी।

"लेकिन एक बार हमारी हालत पर गौर करें ज्योतिदा।"

एकाएक सपना जैसे चकनाचूर हो गया। "आप लोगों की हालत क्या इन दिनों खराब हो गयी है?" मैंने पूछा।

"खराब क्यों नहीं हुई है? पहले इस तरह की फिक्र नहीं रहती थी। पहले जितनी आमदनी होती थी उससे हम आराम से जीवन जीते थे और भविष्य के लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी।"

"लेकिन अब तो आप लोगों की आमदनी बहुत बढ़ गयी है। आपने कलकत्ते में कब्जे की फैक्टरी बनायी है न? विलायती कब्जे का आयात बन्द हो जाने के बाद आप लोगों का एकाधिकार कारोबार रह गया है।"

"लेकिन वही होने से क्या होगा ज्योतिदा! तब हड़ताल का डर नहीं था। तब जमींदारी की तालाबन्दी की बात तक दिमाग में नहीं थी। अभी कोई यह गारण्टी नहीं दे सकता है कि कल मेरी फैक्टरी खुलेगी या बन्द रहेगी। खुल भी सकती है और नहीं भी खुल सकती है। यह भी तो एक तरह की अशान्ति ही है। यह अशान्ति और भी अधिक भयंकर है।"

"रुपया पैदा कीजिएगा और अशान्ति से घबड़ाइएगा?" मैंने कहा।

"मैं इस तरह रुपया पैदा नहीं करना चाहता हूँ ज्योतिदा, हम लोग सुरक्षा चाहते हैं। भविष्य में अगर सुरक्षा ही नहीं रही तो इतना रुपया रहने से क्या फायदा?"

ज्योतिर्मय हैं ! अब शीत-ताप नियन्त्रित भवन में डनलपपिलो की गद्दी-
विषयवस्तु मिली हो र जब सचिवालय की फाइलें देखा करते हैं तब मेदनीपुर
थी और आज दस गुना इरों के दंश की कल्पना करने में भी भय का अहसास
गयी है।

"जानते हैं, यूनियन के आदमउन्होंने अंग्रेज लाट साहब के भवन के सामने
हम लोगों के सामने चूँ शब्द तक नहीं उनके मकान के सामने नारे लगा रहे है।
कर प्रणाम करती थी।" के पहिये घूमा करते हों। लेकिन

"इसके लिए क्या सरकार जिम्मेदार है ? उनके अतीत की स्मृतियाँ हैं ?

मन्मथ बाबू ने कहा, "सरकार ही इन्हें बढ़ावे। भी ऐतिहासिक ही है। वह
की अराजकता के लिए उन्हें दबा नहीं सकती है ?" लेकिन हुए नहीं। अतीत

मैंने कहा, "सरकार जिस तरह आपके लिए है, वैसे की स्थापना कर अपने
तो है।" को कहते है।

"रहे, सरकार गरीबों के लिए रहे। लेकिन अन्याय और जु को इतनी
क्यों बर्दाश्त करती है ?" दास की

ज्योतिर्मय सेन को अब ऊब महसूस हुई। "सरकार का अपना एक कानून देशे
है। उस कानून को देश के ही आदमी बनाते हैं। आप लोगों के मन-पसन्द
आदमी ही उस कानून को बनाते हैं। कानून को मानकर चलना सरकार का
काम है।"

"लेकिन..."

मन्मथ बाबू कुछ कहना चाहते थे पर उन्होंने अपने को रोक लिया। शंकर
एकाएक वहाँ आया।

"क्या बात है शंकर ?"

शंकर ने कहा, "सर, बाहर बड़ी भीड़ लग गयी है। सुनने में आया है कि
दक्षिणपाड़ा से एक जुलूस आ रहा है।"

"जुलूस ? क्यों ? किस चीज का जुलूस ?"

"कम्युनिस्टों का जुलूस।"

"कम्युनिस्ट का मतलब ? कौन-सी कम्युनिस्ट पार्टी ? सी. पी. आई. या
जनसंघ ?"

"इसके बारे में अब तक सूचना नहीं मिली है। मैं पुलिस के बड़े अफसर
को यह खबर पहुँचाने गया था। फाटक पर जो दो-चार पुलिसवाले हैं, उनसे
काम नहीं चलेगा।"

ज्योतिर्मय सेन ने पूछा, "वे लोग क्या चाहते हैं ?"

शंकर ने कहा, "और क्या चाहेंगे, यहाँ आकर सिर्फ चिल्लायेंगे और आपको
तकलीफ पहुँचायेंगे।"

पहुँचने में असफल हो जायेंगे, उस दिन मेरा सम्मान करना भी
दूसरे ज्योतिर्मय सेन को पकड़ेंगे। उसकी भी खुशामद इसी
तरह सम्मान भी करेंगे। यही तो नियम है। इसके बा
नहीं करना चाहिए। सच तो यह है कि मन किसी
चाहिए। मन खराब होता है तो स्वास्थ्य भी बि
ही अध:पतन की शुरुआत हो जाती है।

जब किसी आदमी का जीवन से स
शुरुआत होती है। जीवन का अर्थ
से सम्बन्ध का अर्थ ही जीवन है
है। मसलन शंकर। शंकर
मुझसे सम्बन्ध-सूत्र जो
करेगा लेकिन जब
जरूरत महसूस
नहीं होता
इन्हीं
रूप में

ग्यारह

ज्योतिर्मय सेन यह सब बहुत देख चुके हैं और वह भी अंग्रेजों के जमाने ही। किसी दिन वे ही लोग लाट साहब के भवन के सामने जुलूस लेकर जाते थे और नारे लगाते थे। कलकत्ते के मैदान में जाकर, कस्बों में पहुँचकर कानून तोड़ते थे और माथे पर लाठी का वार झेलते थे। इसलिए इसके चलते उनके लिए डरने की कोई बात नहीं है।

आज उन्हें इतना आराम और इतना सम्मान उपलब्ध है। उस जमाने में कभी-कभी सिर्फ चाय पीकर ही दिन बिताना पड़ा है। जिन दिनों मेदनीपुर में बाढ़ आयी थी, दो दिनों तक भोजन भी नसीब नहीं हुआ था।

पार्टी का काम करने के लिए निकलने पर खाने-पहनने की बात सोचने से काम नहीं चल सकता है।

मेदनीपुर के पुलिस के बड़े अफसर ने उन्हें एक दिन हवालात में रोके रखा था। उस दिन उन्हें पीने के लिए एक गिलास पानी तक नहीं मिला था। प्यास से कण्ठ सूख रहा था। पानी के लिए उन्होंने शोरगुल मचाया था। वे सब बातें

उन्हें क्या अब याद हैं ! अब शीत-ताप नियन्त्रित भवन में डनलपपिलो की गद्दी-मढ़ी कुरसी पर बैठकर जब सचिवालय की फाइलें देखा करते हैं तब मेदनीपुर हवालात के बड़े-बड़े मच्छरों के दंश की कल्पना करने में भी भय का अहसास होता है।

एक दिन जुलूस निकालकर उन्होने अंग्रेज लाट साहब के भवन के सामने नारे लगाये थे। आज ये लोग आकर उनके मकान के सामने नारे लगा रहे हैं।

हो सकता है कि इसी तरह इतिहास के पहिये घूमा करते हों। लेकिन इतिहास है क्या चीज ? इतिहास क्या केवल उनके अतीत की स्मृतियाँ है ? यदि केवल अतीत की स्मृति ही होता तो फिर वह भी ऐतिहासिक ही हैं। वह राजनीतिक होने के बजाय ऐतिहासिक हो सकते थे। लेकिन हुए नहीं। अतीत की स्मृतियों को लेकर जो अतीत और वर्तमान मे समन्वय की स्थापना कर अपने एक स्वाधीन दर्शन का आविष्कार कर सके, ऐतिहासिक उसी को कहते हैं।

गिब्बन की बात याद आयी। इतिहास लिखकर किसी और को इतनी ख्याति मिली हो, ज्योतिर्मय सेन को सुनने मे नहीं आया है। वही इतिहास की बातें। वर्तमान के तीर पर बैठकर एक द्रष्टा की तरह उसने अतीत के रेशे-रेशे को इस तरह उधेड़कर देखा था जैसे वह उस युग मे जीवित था। उसी अतीत युग में बैठकर उसने वर्तमान के विश्व-निवासियों को सम्बोधित करके कहा था, 'शृन्वन्तु विश्वे…'

बाहर जुलूस की आवाज स्पष्ट से स्पष्टतर हो रही है।

कभी यह मयनाडांगा कितना निस्तब्ध था ! तब मयनाडांगा में एक मकान यहाँ था तो दूसरा मकान उससे एक मील की दूरी पर।

याद है, बीमारी के समय जब मैं चुपचाप लेटा रहता था, लगता जैसे मरुभूमि मे हूँ। बीच-बीच में अपने घर की याद आती थी, बाबूजी की याद आती थी, मास्टर साहब की याद आती थी। रघु याद आता था, बैजू भी और ड्राइवर शुकदेव भी ! यह भी याद आता था कि अभी अगर वहाँ रहता तो दवा, डॉक्टर और नर्स से घर भरा रहता।

लेकिन यहाँ दूसरी ही बात थी।

पहले दिन नुटु ने कालमेघ के पत्ते का रस पीने के लिए दिया।

नुटु ने कहा, "यह ज्वर पेट की गरमी के कारण है। हम लोगों को जब ऐसा होता है तो हम कालमेघ के पत्ते का रस पीते हैं।"

नुटु ने बहुत तरह की चीजें खिलायी। कालमेघ, चिरायता वगैरह। जिन चीजों को पैसे से नही खरीदना पड़ता है, उन्ही चीजो को उसने लाकर मुझे खिलाया।

हो सकता है कि वे लोग इन चीजों से अच्छे हो जाते हों। डॉक्टर या वैद्य

मयनाडांगा के लिए विलासिता थी। मन्मथ वाबू जैसे लोग डॉक्टर-वैद्य बुलाते थे। उन लोगों के लिए बोतल में लाल रंग की दवा रखी रहती थी, बर्फ आती थी, आइस-बैग मँगाया जाता था।

नुटु को जब-जब वक्त मिलता वह मेरे पास आकर बैठ जाता था।

"कैसी तबीयत है।" वह पूछता था।

तब मुझमें इतनी ताकत नहीं रह गयी थी कि अच्छी तरह बोल सकूँ। मैं सिर्फ माथा हिलाता था और मेरी आँखों से आँसू की बूँदें ढुलक पड़ती थीं।

नुटु चिल्लाकर पूछता, "माँ, नुटु को सागूदाना दिया था?"

माँ जवाब देने में देर करती तो वह और जोर से चिल्ला उठता था। "माँ," वह कहता, "मैं बोल रहा हूँ और बात तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँच रही है। तुम बहुत सर पर चढ़ गयी हो।"

माँ कहती, "देती हूँ। सागूदाना बना देती हूँ बाबा। मुझे एक काम है तब न।"

नुटु चिल्लाकर कहता, "तुम्हारा काम ही बड़ा है। सारा काम छोड़कर पहले सागूदाना बना दो। इधर एक आदमी ज्वर से बेहाल होकर उपवास कर रहा है और तुम्हारा ध्यान कहीं और है। जितने वाहियात काम हो सकते हैं, सब तुम्हारे ही पास है···"

फिर वह मन-ही-मन बुड़बुड़ाने लगता, "मैं केदार बाबू को नजराना देकर बिन्दावन हाजरा की दुकान से सागूदाना ले आया और उसे तुमने एक किनारे रख दिया। इस घर का कारोबार आलतू-फालतू आदमी से चल रहा है।"

वह बुड़बुड़ाता हुआ रसोईघर के अन्दर चला जाता था। अन्त में अपने हाथों से सागूदाना बनाकर मुझे पिलाता था।

"लो पियो," वह कहता, "मुँह खोलो।"

मुझे अरुचि हो गयी थी। सागूदाना में न नीबू का रस रहता था और न मिसरी ही। सागूदाना का नाम सुनते ही मुझे मितली आने लगती थी।

"मुँह खोलो, खोलो···"

एक दिन मैंने नुटु की देह पर ही उल्टी कर दी। उफ्, कितनी तकलीफ महसूस हो रही थी!

नुटु ने कहा, "दुत, तुमसे सकना मुश्किल है। मेरा कपड़ा बरबाद कर दिया न। मेरे पास एक ही कपड़ा है। अब क्या पहनूं।"

लेकिन उस दिन मैं होश में नहीं था। मेरी संज्ञा लुप्त हो गयी थी। सुना था, तब मेरी आखिरी हालत हो गयी थी। मैं चेतनाशून्य की स्थिति में था। कहते हैं, मेरी साँस और नाड़ी की भी गति रुक गयी थी।

मेरी हालत देखकर नुटु अपने को रोक नहीं सका। वह दौड़ा-दौड़ा डॉक्टर के पास पहुँचा। ज्योति अब जिन्दा नहीं रहेगा, यह बात उससे बर्दाश्त नहीं हो रही थी।

माँ ने पूछा, "कहाँ जा रहे हो ?"

नुटु ने दौड़ते-दौड़ते कहा, "भाड़ में···"

उसके बाद मुझे कुछ याद नहीं है। तब मैं शिथिल-शून्य पड़ गया था।

अचानक हो-हल्ला सुनकर ज्योतिर्मय सेन चौंक पड़े।

"गरीबों का शोषण, मन्त्री का पोषण, नहीं चलेगा, नहीं चलेगा···"

एकमंजिले के सदर फाटक पर भीषण शोर-गुल की शुरुआत हो गयी थी। एक नेता चिल्ला-चिल्लाकर नारा लगा रहा था, "गरीबों का शोषण, मन्त्री का पोषण···"

"नहीं चलेगा, नहीं चलेगा।" बाकी लोग उसी तेजी से चिल्ला रहे थे।

बारह

उन लोगों के द्वारा कोई चीज किसी भी हालत में नहीं चलेगी। गरीबों का शोषण, मन्त्री का पोषण, नहीं चलेगा। बात तो बड़े मार्के की है, लेकिन उन्हीं लोगों का नेता यदि मन्त्री बन जाये तब वे लोग क्या नारा लगायेंगे ? चिरन्तन काल तक मन्त्री भी रहेंगे और गरीब भी रहेंगे। इतिहास में कोई ऐसा युग नहीं मिलता कि जिसमें न मन्त्री हों और न गरीब। गरीबों और मन्त्रियों की लड़ाई का ही एक दूसरा नाम इतिहास है। इसी लड़ाई के बीच पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती रहेगी। कुछ आदमी आराम करेंगे और ज्यादातर आदमी का मटियामेट हो जायेगा। विनाश में ही जीवन की उर्वर मिट्टी में फसल पैदा होगी और फिर उसी फसल के कारण आदमी-आदमी में छीना-झपटी की शुरुआत होगी। तब क्रम-परिवर्तन के नियम के आधार पर कोई नया नारा बनाया जायेगा। फिर लड़ाई की शुरुआत होगी और फिर ध्वंस का सिलसिला चलेगा।

आज सवेरे से मैं यहाँ बैठा हुआ हूँ, लेकिन मैंने कितना सरकारी काम किया है, मुझे मालूम नहीं। आराम करने के अतिरिक्त मैंने किया ही क्या है। लेकिन राइटर्स बिल्डिंग में पहुँचने के बाद खर्च का बिल मुझे ही पास करना है। उस बार बाढ़ आ जाने के कारण मैं गाँव के लोगों की दुर्दशा देखने गया था। जाने का मकसद था अपनी आँखों से देखकर प्रभावितों को राहत पहुँचाना। लेकिन मेरे घूमने-फिरने में ही चालीस हजार रुपये का खर्च बैठ गया। उन रुपयों को बाढ़-पीड़ितों की सहायता में लगाया जाता तो उनकी भलाई है

एक बार पण्डित नेहरू से मैंने कहा था, "आप इतना भ्रमण क्यों करते हैं ? इसमें भी तो खर्च होता है । आप यदि भ्रमण न करें तो भ्रमण में जो खर्च होता है वह तो बच जाये ।"

नेहरूजी ने कहा था, "मैं अपनी आँखों से हिन्दुस्तान का चप्पा-चप्पा देखना चाहता हूँ । बिना देखे गलती होने की सम्भावना रहती है ।"

लेकिन उस गलती की सम्भावना की रोकथाम के लिए देश के आदमी को किराया चुकाना पड़ता है । पैसा तो उन्हीं का खर्च होता है । एड़ी-चोटी का पसीना एक कर वे जो पैसा कमाते हैं, वही पैसा प्रधानमन्त्री के भ्रमण में खर्च होता है । मैंने भी आज वही अपराध किया है । आज मेरी खातिर कई घण्टों के अन्दर कम-से-कम दस-बारह हजार रुपया खर्चा होगा । मैं कई घण्टों में दस-बारह हजार रुपया क्या कमा सकता था ? मैं यदि इंजीनियर या बैरिस्टर होता या व्यवसायी या' कि डॉक्टर तो यह क्या मेरे बूते की बात थी कि कई घण्टे में इतना पैसा कमा लेता ?

दरअसल मैं एक अपराधी हूँ ।

यह बात मैं अपने मन्त्रालय की बैठक में नहीं कह सकता हूँ । संवाददाता सम्मेलन में भी खोलकर नहीं कह सकता हूँ । कारण है कि हम लोग किसी के सामने अपना हृदय नहीं खोलते हैं । लेकिन मैंने स्वयं अपने-आपसे कई बार पूछा है कि मैं ईमानदार हूँ या बेईमान ? मैं सच्चा हूँ या झूठा ?

कभी-कभी मैं मन-ही-मन एक सूची बनाया करता हूँ कि जीवन में मैंने कौन-कौन से अच्छे और कौन-कौन से बुरे काम किये हैं । लेकिन बुरे कामों की तालिका ही लम्बी और बड़ी हो जाती है ।

फिर भी नुटु के लिए तो मैंने अच्छा ही किया है । मेरी बीमारी के समय नुटु ने जो किया वह कोई बाप अपने पुत्र के लिए नहीं करता है । लेकिन मैंने क्या किया ? मैंने उसके लिए जो किया वह काम क्या कोई मित्र अपने मित्र के लिए करता है ?

दरअसल शुभ इच्छा ही शायद सबसे बड़ी चीज होती है । इच्छा ही मनुष्य के लिए उसकी सिद्धि ला देती है । मनुष्य का मन उस इच्छा का वाहन होता है ।

एक बार विजयकृष्ण गोस्वामी को एक अजीब ही अनुभव हुआ था । तब महापुरुष के रूप में उन्हें स्वीकृति नहीं मिली थी । महापुरुषत्व के लिए तब वह जमीन तैयार कर रहे थे । गायक होने के लिए जिस तरह एक दिन शिष्यत्व ग्रहण करना पड़ता है जीवन के हर क्षेत्र में यही बात होती है । लेखक बनने के लिए क्या शिष्यत्व ग्रहण नहीं करना पड़ता है ? खिचड़ी-फरोश के दुकानदार को भी शिष्यत्व ग्रहण करके अनुभव हासिल करना पड़ता है ।

वह एक दिन दार्जिलिंग गये हुए थे।

शहरी सभ्यता और जनता की भीड़ से अलग हटकर एक एकान्त और निर्जन पहाड़ी जंगल में जाते ही उन्हें एक तीक्ष्ण प्रकाश दिखायी पड़ा। वह समझ नहीं सके कि उस निर्जन स्थान में वह रोशनी कहाँ से आयी।

जहाँ से वह प्रकाश आ रहा था उस ओर ध्यान से देखने पर उन्हें एक ध्यानमग्न साधु बैठा हुआ दिखायी पड़ा। उसके मस्तक से वह प्रकाश आ रहा था।

देखकर विजयकृष्ण दंग रह गये।

उन्होंने उस साधु को पुकारा और उसका ध्यान भंग हो गया। साथ-ही-साथ वह प्रकाश भी बुझ गया।

तब विजयकृष्ण को और भी अधिक आश्चर्य हुआ।

"आपके मस्तक से यह प्रकाश क्यों निकलता है ?"

साधु ने कहा, "मैं जब ध्यानमग्न होता हूँ तो यह प्रकाश निकलता है।"

विजयकृष्ण ने कहा, "उस प्रकाश को फिर से आप निकाल सकते है ?"

"हाँ।"

और वह फिर से ध्यानमग्न हो गया और तत्काल उसके मस्तक से प्रकाश निकलने लगा।

इसी को इच्छा कहते है। मन को अपने वश में कर लेने से मस्तक ही क्या, सम्पूर्ण शरीर से प्रकाश निकल सकता है। इच्छा-मृत्यु की तरह इच्छा-जीवन और इच्छा-यौवन भी प्राप्त किया जा सकता है। इन सारे तथ्यों को पुस्तकों में पढ़ा है। लेकिन मुझमे यदि वैसी शक्ति होती तो मैं इस बात की इच्छा करता कि पृथ्वी पर जितने मनुष्य हैं, सबकी भलाई हो। पृथ्वी सुख और समृद्धि से परिपूर्ण हो जाये। समस्त पृथ्वी का अगर न हो सके तो कम-से-कम बंगाल के लोगों का मंगल हो।

बहुत दिन पहले, बचपन में मैंने चाहा था कि नुटु की भलाई हो। उसका लँगड़ा पैर अच्छा हो जाये। नुटु का बाप नशा छोड़ दे। नुटु के मकान का छप्पर टूटा हुआ न रहे। उसे दोनों जून दो मुट्ठी अनाज जुटे।

इतने दिन पहले मेरी जो बात थी वह अवश्य ही अब पूरी हो गयी होगी। क्योंकि मुख्यमन्त्री बनते ही मैंने मयनाडांगा के एस. डी. ओ. से रिपोर्ट माँगी थी।

मिस्टर राय समझ नहीं सका था कि मैं बार-बार मयनाडांगा के बारे में क्यों पूछताछ करता हूँ।

मिस्टर राय ने कहा था, "गाँव के लोगों की हालत आम तौर से जैसी हुआ करती है, वैसी ही हालत है।"

मैंने पूछा था, "पहले के बनिस्यत अच्छी है या खराब ?"

"पहले के बनिस्बत जरूर ही अच्छी है।" मिस्टर राय ने कहा था।

"कोई ऐसा मामला है कि खाना न जुटता हो ?"

"नही सर। खाना न जुटने की बात क्यों रहेगी। चावल दो रुपया चालीस पैसा किलो मिलता है। उससे सस्ता और क्या हो सकता है। इसके अलावा हर किसी को धान का बीज खरीदने के लिए कृषि-ऋण दिया जाता है। इस बार धान की पैदावार भी काफी हुई है। अब किसी को कोई शिकायत नही है। मैंने थाने को आदेश दिया है कि कोई भूख से न मरे, इस पर कड़ी निगरानी रखे।"

मैंने कहा था, "मयनाडांगा के बारे में मुझे व्यक्तिगत अनुभव है। वहाँ के लिए मैं उद्विग्न रहता हूँ। आप जरा खास खयाल रखिएगा मिस्टर राय। मैं नही चाहता हूँ कि वहाँ कोई भूखा रहे।"

मिस्टर राय ने कहा था, "जरूर-जरूर, मैं खास निगरानी रखूँगा सर।"

फिर बहुत तरह के कामों में व्यस्त रहने के कारण मयनाडांगा के बारे मे सोचने की मुझे फुरसत ही नही मिली। मेरे कामों का कोई अन्त है भला। तीन-तीन बार मुझे यूरोप और अमरीका जाना पड़ा है। यह भी क्या मामूली काम है! इसके अलावा अपनी पार्टी की बैठक, दल को सही रास्ते पर रखना, खाना-पीना। अपनी कुरसी को बरकरार रखने के लिए ही मुझे क्या कम काम करना पड़ता है! सभी मेरी कुरसी पर नजर गड़ाये हुए हैं। जैसे मैंने यहाँ अनधिकार प्रवेश किया हो। हालांकि इतने दिनों तक देश के लिए मैंने जो त्याग किया है फिर भी जैसे वह समाप्त हो गया है। जैसे मैं उड़कर आया और यहाँ बैठ गया। जैसे देश की स्वाधीनता-प्राप्ति मे मेरा कोई अवदान नही है।

मेरे मन में कम-से-कम यह सान्त्वना तो अवश्य थी कि इस मयनाडांगा के लिए मैंने काफी कुछ किया है। जब चावल का अकाल पड़ा था तो मैंने यहाँ लंगरखाना खुलवा दिया था। गाँव के लोगों को पानी की तकलीफ हो रही है, यह देखकर मैंने मुख्यमन्त्री के कोष से नलकूप लगवा दिये थे, हालांकि कोई यह नही कह सकता है कि मयनाडांगा मेरा चुनाव-क्षेत्र है। मैं यहाँ से चुनाव मे खड़ा नही हुआ हूँ।

चाणक्य ने अवश्य ही कहा है कि 'वेश्या वारागना इव राजनीति'। सो कहे, लेकिन राजनीति के क्षेत्र मे आकर मैंने वेश्यावृत्ति की है, यह कोई नही कह सकता है। मानता हूँ, मैंने देशवासियों के लिए बहुत-कुछ नहीं किया है लेकिन यह भी सही है कि बहुत-कुछ किया है।

नुट्ट के लिए भी कुछ नही किया है!

याद है, उस दिन मेरी हालत बहुत खराब थी। तब मेरे शरीर का तापमान

एक सौ पाँच डिग्री था। ज्वर के उत्ताप से तब मैं बेहोशी की हालत में था।

उस समय नुटु पागल जैसा हो गया था।

सदर का बड़ा डॉक्टर कलकत्ते से डॉक्टरी की परीक्षा पास कर आया था।

नुटु उसके पास पहुँचा।

डॉक्टर को इतनी फुरसत कहाँ थी कि वह नुटु जैसे लोगों से बातचीत करे।

"रोगी कहाँ है ? ले आये हो ?" उसने कहा।

नुटु ने कहा, डॉक्टर साहब, "रोगी को हिलाने-डुलाने से वह मर जायेगा। आप खुद एक बार चलकर देख लें।"

बड़ा डॉक्टर एक दूसरे रोगी की जाँच कर रहा था। उसी हालत मे उसने कहा, "मयनाडांगा यहाँ से बहुत दूर है, चालीस रुपया देना पड़ेगा।"

नुटु ने कहा, "हुजूर, हम लोग गरीब आदमी ठहरे, रुपया देने की हममें सामर्थ्य नहीं है। गरीब पर दया करें···"

"दया !"

बात सुनकर डॉक्टर ने एक बार आँख उठाकर नुटु की ओर देखा। उसके बाद कहा, "दया नाम की चीज मुझमें नही है। समझे ! चालीस रुपये का इन्तजाम करके आओ, फिर मैं चलूँगा।"

"हुजूर, चालीस रुपये मैं कहाँ से लाऊँ ? मुझे काट भी डाला जाये तो चालीस रुपया नही निकलेगा।"

लेकिन सदर के डॉक्टर के पास इतना वक्त कहाँ कि जिससे-तिससे बातचीत करे। "जाओ यहाँ से," उसने कहा, "यहाँ खड़े रहकर परेशान मत करो। मेरे पास इतना वक्त नही है।"

नुटु तब भी छोड़नेवाला जीव नहीं था।

"भगवान आपका मंगल करेगा डॉक्टर साहब ! आप एक बार चलिए···"

"विभूति !"

विभूति बड़े डॉक्टर का कम्पाउण्डर था। पुकारते ही सामने आया। डॉक्टर ने कहा, "देखो, यह छोकरा यहाँ खड़ा होकर बक-बक कर रहा है, इसे यहाँ से बाहर जाने को कहो।"

विभूति भी बड़ा व्यस्त रहता था। उसका वक्त भी कीमती था। नुटु के सामने आकर कहा, "यहाँ से निकलो, निकलो···"

"हुजूर, एक बार मेरी बात सुन लें, फिर मैं निकल जाऊँगा।"

और थोड़ी देर हो जाती तो विभूति गले पर हाथ धरकर निकाल देता। उसके चेहरे की ओर देखने पर नुटु को ऐसा ही प्रतीत हुआ।

"कम्पाउण्डर साहब, एक बार मेरी बात आप सुन लें···"

"निकलो, पहले तुम यहाँ से निकलो, फिर बातें करूँगा।"

इतना कहकर उसने सचमुच नुटु के गले पर हाथ रखकर उसे कमरे के बाहर निकाल दिया।

नुटु कुछ देर तक ठिठककर खड़ा रहा। उसका शरीर सुन्न होने लगा। उसे महसूस हुआ जैसे किसी ने उसके शरीर पर लाठी से प्रहार किया है। हो सकता है कि ज्योति अभी ज्वर से कराह रहा है। उसके पेट में दवा की एक बूंद भी नहीं गयी है। अब तक सागूदाना खिलाने से भी कुछ नहीं हुआ। बड़े आदमी का ज्वर कहीं केवल सागूदाने से जाता है। ज्योति बड़ा आदमी है।

अकस्मात् उसकी दृष्टि नुटु पर गयी जो उसके पास ही खड़ा था।

दृष्टि पड़ते ही उसका माथा चकराने लगा। उसकी मुट्ठी में ही तो चालीस रुपये हैं।

नुटु अब वहां नहीं रुका। वहां से वह तीर के वेग की तरह आगे बढ़ा।

वैकुण्ठ उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। नुटु की आंखों के सामने तब सारी दुनिया दनादन चक्कर काट रही थी। उसे लग रहा था कि जरा भी देर हुई कि पृथ्वी की सारी चीजें उलट-पुलट जायेंगी। दौड़ते-दौड़ते वह सीधे मयनाडांगा के बाजार में पहुंचा। साहा बाबू की दुकान से मुड़कर कलिमुद्दीन मियां की दुकान के सामने पहुंचकर उसने सांस ली।

कलिमुद्दीन मियां दत्तचित्त होकर मांस काट रहा था।

"मियांजी!"

कलिमुद्दीन ने ज्यों ही चेहरा उठाकर देखा, वह स्तम्भित रह गया।

"मियांजी, तुमने कहा था कि मेरे वैकुण्ठ को खरीदना चाहते हो।"

तब तक वैकुण्ठ भी घुंघरुओं को टुनटुनाता वहां पहुंच चुका था और हांफ रहा था।

लेकिन उतने दिन पहले की बात याद रखना कलिमुद्दीन के लिए मुश्किल था।

"वैकुण्ठ कौन?" उसने पूछा।

"यही है, यही।"

अब उस कसाई के बेटे को याद आया।

"हां, तो फिर क्या है? उसने कहा।"

"मैं इसको बेचना चाहता हूं। कितना दोगे? तब तुमने बताया था कि चालीस रुपया दूंगा।"

"देने को राजी हूं।"

"दो, यह रहा वैकुण्ठ। नकद चुकाना पड़ेगा। मुझे अभी तुरन्त पैसे की जरूरत है। रुपया लेकर मैं सदर के डॉक्टर के पास जाऊंगा..."

"सर, वे लोग आये हैं।"

"कौन आये हैं ?"

ज्योतिर्मय सेन जैसे अब तक सपना देख रहे थे। शंकर को देखते ही चौंक पड़े।

वे लोग जो अब तक नारा लगा रहे थे।

अब सारी बातें उन्हें याद आयी।

ज्योतिर्मय सेन ने पूछा, "वे लोग किस दल के हैं ?"

शंकर ने कहा, "कम्युनिस्ट पार्टी के।"

"वे लोग क्या चाहते हैं ? अब तक वे लोग शोर-गुल क्यों मचा रहे थे ? 'गरीबों का शोषण, मन्त्री का पोषण, नहीं चलेगा, नहीं चलेगा' कहकर वे लोग चिल्ला क्यों रहे थे ? मैंने क्या मयनाडांगा के गरीबों के लिए कुछ भी नहीं किया है ? मैंने यहाँ के एस. डी. ओ. मिस्टर राय को अकाल के समय नकद डोल देने को कहा था। मैंने ही यहाँ नलकूप लगाने को कहा था…"

शंकर ने कहा, "ये सारी बातें मैं उन्हें बता चुका हूँ सर, लेकिन वे सुनें तब न ! उनका कहना है कि वे एक बार आपसे मिलना चाहते है। उनके पाँच नेताओं का एक शिष्ट-मण्डल आपसे मिलना चाहता है।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "ठीक है, उन लोगों को यहाँ ले आओ।"

तेरह

उन लोगों में से पाँच व्यक्ति कमरे के अन्दर आये। उनका चेहरा शान्त-शिष्ट और हँसी से भरा था। जो अन्दर-अन्दर चंचल रहते हैं वे बाहर से साधारणतः शान्त रहा करते हैं। चेहरे पर हँसी ओढ़कर वे भीतर की चंचलता को ढकने की कोशिश करते है। जो हँसते नही हैं, वे पहचान में आ जाते हैं। लेकिन जो हमेशा नही हँसते हैं वे जब हँसा करते हैं तब समझ में आता है कि वे हँस रहे हैं। सुना है कि चीनी लोग हँसते नही हैं। हँसते भी हों तो चेहरा देखकर समझ में नही आता है कि हँस रहे हैं। अंग्रेजी में दो तरह की हँसी होती है। एक को 'लाफ' और दूसरे को 'स्माइल' कहते हैं। लेकिन बंगालियों की हँसी एक ही है। बंगाली केवल हँसा करते है। बहुत हँसते हैं—जितनी हँसी की जरूरत पड़ती है उससे भी ज्यादा। इसी से बंगालियो की हँसी देखते ही मुझे डर लगने लगता है। लगता है कि इस हँसी के पीछे कोई अर्थ है। कहते हैं, जो हँसते हैं और हँसाते हैं उनकी आयु लम्बी होती है। हँसी स्वास्थ्यप्रद है।

लेकिन हर किस्म की हँसी अच्छी नहीं होती है। जिस कहकहे से घर-द्वार गूंज उठे वही हँसी स्वास्थ्यप्रद होती है।

शेक्सपियर ने अपने 'हैमलेट' के प्रथम अंक में हैमलेट से कहलाया है, "One may smile, and smile, and be a villain"[1]

उन लोगों को देखकर पहले-पहल मुझे ऐसा ही महसूस हुआ। सचमुच, इतनी हँसी अच्छी नहीं होती है। हँसी को अन्त के लिए जमा करके रखना चाहिए। जो अन्त मे हँसता है उसी की हँसी सार्थक होती है। तुलसीदास ने इसीलिए कहा है कि 'इस दुनिया से विदा लेने के समय तुम हँसते हो और दुनिया तुम्हारे लिए रोती है।'

नुटु को भी हँसने की कला आती थी। लेकिन उस दिन उसके चेहरे पर हँसी लौटकर नहीं आयी। कलिमुद्दीन ने वास्तव में चालीस रुपये देकर वैकुण्ठ को खरीद लिया।

नुटु ने कहा, "बिना रुपया चुकाए मेरे वैकुण्ठ को क्यों खींच रहे हो?"

वैकुण्ठ तब उसके पीछे खड़ा था। उसको मालूम नहीं था कि उसे नुटु बेच रहा है। उसका सर आहिस्ता-आहिस्ता हिल रहा था। शायद उसके मुंह पर मक्खी बैठी हुई थी। मुंह पर मक्खी बैठ जाये तो किसी को भी बेचैनी का अहसास हो सकता है। लेकिन एक क्षण के बाद उस मुंह में ही जब अनुभूति नहीं रह जायेगी तो मक्खी का बैठना एक जैसा हो जायेगा।

कलिमुद्दीन मियाँ उस वक्त भी भेड़े की ओर अपलक ताक रहा था। हो सकता है, वह सोच रहा था कि चालीस रुपया देने पर उसे कितना लाभ होगा। या वजन करने पर मांस का तौल कितना होगा।

"लो, रुपया निकालो।"

तब नुटु एक तरह के द्वन्द्व के दौर से गुजर रहा था।

"देख क्या रहे हो मियांजी, पैसा निकालो। तुम्हें नुकसान नहीं होगा।"

पैसा मिलते ही नुटु ने नोटों को मुट्ठी में ऐसे दबोचा जैसे शेर किसी को दबोच लेता है। फिर वह क्या करे, उसकी समझ में नहीं आया। नुटु पैसा लिये चला आ रहा था। एकाएक वैकुण्ठ की तैरती आवाज उसके कानों में पहुँची। उसने चिल्लाना शुरू कर दिया था। अजी मुझे अपने साथ लिए चलो। इन लोगों ने मुझे पकड़ रखा है। मुझे छोड़ नहीं रहे हैं। मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा...

वैकुण्ठ की आवाज क्रमशः तीव्र से तीव्रतर होकर उसके कानों में आने लगी...

---

1. कोई मुसकराता रहकर भी खलनायक हो सकता है।

श्रौर भी तीव्र श्रौर भी···

अन्ततः नुटु को इच्छा हुई कि एक बार वह मुड़कर देखे। फिर वह दृश्य उसकी आँखों के सामने तैरने लगा। कलिमुद्दीन अपनी तेज कटारी निकाल रहा है। बार-बार रेत पर रगडकर सान चढा रहा है। अब भी वैकुण्ठ बॉ-बॉ कर चिल्ला रहा है। वैकुण्ठ समझ गया है क्या ? वैकुण्ठ यों सब-कुछ समझता है। कटारी पर सान चढ़ाते हुए देखकर बात उसकी समझ में आ गयी होगी। वह डर गया होगा। और इसीलिए डर से चीख रहा है, "अजी, तुमने मुझे इस तरह कसाई के हाथ बेच डाला। चन्द रुपयों के कारण आज मैं तुम्हारे लिए पराया हो गया ?"

"नुटु···नुटु···"

नुटु ने हाथों से अपने कानों को बन्द कर लिया जोर से और जोर से और वह बेतहाशा दौड़ने लगा।

"नुटु···नुटु···"

उँगलियों के बीच के छेद से अब भी वैकुण्ठ की आवाज उसके कानों में आ रही थी। नुटु भी बेतहाशा भागा जा रहा है। अरे भैया, ज्योति बीमार है न। वह बेहोश होकर पड़ा हुआ है। यह रुपया लेकर जब तक डॉक्टर के हाथ में नहीं थमाता हूँ, वह नहीं देखेगा···

लँगड़े पाँवों से अच्छी तरह दौड़ भी नहीं पा रहा है। फिर भी नुटु बेतहाशा दौड़ा जा रहा है।

एकाएक उसे लगता है जैसे पीछे वैकुण्ठ के गले के घुँघरुओं की आवाज हो रही है टुन···टुन···। फिर वैकुण्ठ भाग आया क्या ? कलिमुद्दीन के हाथों से खुद को छुड़ाकर भाग आया है।

पीछे की ओर मुड़ते ही उसकी नजर वैकुण्ठ पर पड़ती है।

"वैकुण्ठ तुम आ गये ?"

वैकुण्ठ मुंह उठाकर उसके निकट आता है। नुटु के लँगड़े पाँव पर मुंह टिकाकर कहता है, "तुमने मुझे बेच डाला था ?"

नुटु उसे पुचकारकर कहता है, "तुम अन्यथा मत लेना। ज्योति बहुत बीमार है। डॉक्टर बिना पैसे लिये नहीं देखेगा। मैं क्या करूँ ? रुपया कहाँ से लाऊँ, तुम्हीं बताओ···"

वैकुण्ठ रोने लगता है।

नुटु उसका सर सहलाने लगता है।

"मत रो भाई, मत रो।" वह कहता है, "तुम जो भाग आये, अच्छा ही किया। आओ, मेरे साथ चलो···"

"अरे तुम फिर आ धमके ?"

एकाएक वह चौंक पड़ा। देखा, वैकुण्ठ नहीं था। सामने कम्पाउण्डर खड़ा था। फिर वह क्या सदर के डॉक्टर साहब के बाहरी कमरे की बेंच पर बैठा-बैठा अब तक सपना देख रहा था?

विभूति कम्पाउण्डर ने पूछा "रुपये ले आये हो?"

नुटु ने अपनी मुट्ठी खोलकर नोटों को दिखाया।

"यह रहे।" उसने कहा।

विभूति नोटों को लेकर एक-एक कर गिनने लगा।

"लोहू के दाग लगे नोट कहाँ से ले आये? बाजार मे चलेंगे न?"

सचमुच नोटों पर खून के छीटे थे।

विभूति ने कहा, "तुम चले जाओ। डॉक्टर साहब साइकिल पर चढ़कर तुम्हारे घर जायेंगे।"

चौदह

मैं उस वक्त भी अचेत पड़ा था। कब डॉक्टर आया, कब नुटु दवा ले आया, कब मुझे दवा पिलायी—मुझे बिल्कुल याद नहीं है।

नुटु बीच-बीच में मेरे पास आता था और नीचे झुककर मेरे माथे को सहलाता था।

"अब कैसा लग रहा है?"

मैं क्या कहता। तब बोलने-चालने की सामर्थ्य मुझमें नहीं थी। किसी तरह आँखें खोलकर नुटु की ओर देख लेता था। सब-कुछ सूना-सूना लगता था। कुछ सोचने की कोशिश करता तो माथा भारी लगने लगता था और मैं आँखें बन्द कर लेता था। आहिस्ता-आहिस्ता फिर से आँखों को खोलता था और कमरे के इर्द-गिर्द ताकता था। पुआल की चाल की सूराख से धूप आकर मेरे बिछावन पर छलाँग लगाती थी। मैं धूप के चकत्ते को पकड़ना चाहता था लेकिन वह छलाँग लगाकर मेरे हाथ पर बैठ जाता था। मैं पुनः पकड़ने की कोशिश करता और वह आकर मेरी देह पर बैठ जाता था।

उसके बाद एक-एक कर सब-कुछ याद आने लगा। घर से एक दिन मैं मयनाडांगा भाग आया था। मेरे बाबूजी बड़े आदमी हैं—एक बहुत बड़े बैरिस्टर। मैं नुटु के घर मे आकर उतरा था। नुटु से मेरी दोस्ती हो गयी है। वह मुझे प्यार करता है। नुटु के बाप दिगम्बर, उसकी माँ और वैकुण्ठ—एक-एक कर सबका स्मरण आने लगा।

एक दिन नुटु सहसा मेरे कमरे के अन्दर आया।

"क्यों भाई, कैसी तबीयत है ?" उसने पूछा।

"अब थोड़ा अच्छे लगता है।" मैंने कहा।

उसने कहा, "जल्दी-जल्दी अच्छे हो जाओ भाई, अब मुझे अकेलापन काटने को दौड़ता है।"

"वैकुण्ठ कहाँ है जी ?" मैंने पूछा, "उसे देख नहीं रहा हूँ।"

उस बात का उत्तर न देकर नुटु ने कहा, "तुमने दवा नहीं पी है ?"

"बड़ी ही कसैली लगती है भाई," मैंने कहा, "पीने में अब अच्छी नहीं लगती है।"

"दवा नहीं पियोगे तो अच्छे कैसे होगे ? कैसे चलेगा ?"

उसने खुद शीशी से एक खुराक दवा गिलास में ढाली और मेरे पास आया।

"लो पियो, मैं पानी दे रहा हूँ।"

दवा पीते ही उसने मेरे मुंह में पानी डाल दिया और फिर मेरा मुंह पोंछकर कहा, "अब तुम सो रहो। मैं आया..."

"कहाँ जा रहे हो ?"

"मैं बैठा रहूँ तो कैसे चले भाई ? मुझे बहुत काम रहता है।"

"आजकल तुम क्या काम करते हो ?"

नुटु ने कहा, "रात-दिन काम किये जा रहा हूँ, अभी-अभी ईंट के भट्ठे से लौटा हूँ, अब पुआल की खेप लेने जा रहा हूँ। बीच में आकर तुम्हें दवा पिला जाऊँगा। तुम अपने से दवा भी नहीं पी पाते हो ?"

फिर मेरी देह पर चादर रखते हुए उसने कहा, "सो रहो, मैं चला। अच्छा..."

और नुटु चला गया। मैं चुपचाप लेटा रहा। लेकिन तब लेटे रहना मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। लेटे रहने के कारण मेरा शरीर दुख रहा था। सारा मकान निस्तब्धता ओढ़े हुआ था। पूरा मुहल्ला खामोशी में डूबा हुआ था। चाल पर बैठा एक कौवा काँव-काँव कर रहा था। दीवाल पर एक छिपकली रेंग रही थी। मैं उसकी ओर अपलक निहारने लगा। बीच-बीच में वह छिपकली भी मेरी ओर टकटकी लगाकर देखती थी। बीच-बीच में उसके गले के आसपास का हिस्सा धड़कता था और फिर वह अपनी पूंछ हिलाती-डुलाती थी। शायद वह मन-ही-मन किसी मतलब की टोह में थी। क्योंकि मैं कोई बाधा नहीं डालता था इसलिए घूम-फिरकर मेरी ओर ताकती थी। हो सकता है कि वह विस्मय में डूबने-उतरने लगती थी। विस्मित होकर सोचती थी कि यह आदमी रात-दिन लेटा क्यों रहता है ? दुनिया में जब हर व्यक्ति को खटकर खाना पड़ता है तो इस व्यक्ति के दिन-रात लेटे रहने का कारण उसकी समझ में ठीक-ठीक नहीं आ रहा था। फिर एक बार छलांग मारकर उसने एक कीड़े

को पकड़ा और पकड़कर उसे पल-भर में निगल गयी। निगल चुकने के बाद उसे एक प्रकार की निश्चिन्तता का बोध हुआ। छिपकली की ओर ताकते-ताकते मैंने अपने शरीर में भी एक अजीब किस्म के लिजलिजेपन का अनुभव किया। लगा जैसे मैंने ही उस कीड़े को निगल लिया है। फिर पूरे जिस्म में मुझे कमजोरी का अहसास होने लगा और मैं अनजाने ही नींद की बाँहों में खो गया।

अब उन बातों को सोचते ही मुझे लगता है कि हम लोग भी सम्भवतः छिपकली की तरह ही हैं। मौका मिलते ही हम हरेक को निगलने का प्रयत्न करते हैं। किस तरह दूसरे का सर्वनाश कर अपने स्वार्थ की पूर्ति करें—इसी की चेष्टा।

नुटु पूछता, "अकेले रहने में तकलीफ महसूस होती है?"

"नहीं, तकलीफ क्यों होगी!" मैं कहता।

"तकलीफ तो थोड़ी होती ही होगी। मन मारकर किसी तरह कुछ दिन पड़े रहो, फिर तुम्हें साथ लेकर बाहर निकला करूँगा।"

उस दिन मैंने उससे दुबारा पूछा, "वैकुण्ठ कहाँ है जी? वैकुण्ठ, दिखता नहीं है।"

नुटु ने कहा, "वैकुण्ठ की बात छोड़ो। वह भाग गया।"

मैं अचम्भे में पड़ गया। "भाग गया कहने का मतलब?" मैंने पूछा।

नुटु ने कहा, "दरअसल वह एक जानवर ही तो था और जानवर को अकल रहती ही कितनी है! यहाँ उसे भरपेट खाना नसीब नहीं हो रहा था फिर भागे न तो क्या करे। भागा तो अच्छा ही हुआ, मैं बेहद खुश हूँ..."

"भागकर कहाँ चला गया?"

नुटु ने कहा, "वैकुण्ठ की बात छोड़ो। मुझे भी वह अच्छा नहीं लग रहा था। दिन-रात पीछे-पीछे घूमता रहे तो ऐसे में कहीं काम होता है भला?"

"तुम्हें खोया-खोया-सा महसूस नहीं होता है?" मैंने पूछा।

उस बात का उत्तर न देकर नुटु ने कहा, "तुम सो जाओ। मैं चलूँ, बहुत काम करने को पड़ा है।"

लेकिन उस दिन सारी बातें मेरे सामने स्पष्ट हो गयीं। तब मैं बहुत-कुछ अच्छा हो चुका था। उस दिन मुझे पथ्य में भात खाना था। नुटु की माँ ने मेरे लिए पानी गरम कर दिया। नहा-धोकर मैं फर्श पर खाने बैठा था। गरम-गरम भात था। बहुत दिनों के बाद भात खाने को मिल रहा था। खुशी के मारे मेरी आँखों से आँसू चूने लगे। लग रहा था, एक हाँड़ी भात खाकर खत्म कर दे सकता हूँ।

लेकिन जब खाने बैठा तो खाया नहीं गया।

नुटु की माँ ने कहा, "क्या बात है बेटा, तुम खा क्यों नहीं रहे हो ?"

"अब और खाना अच्छा नहीं लग रहा है मौसीजी !" मैंने कहा ।

नुटु की माँ ने कहा, "यह क्या ! नुटु ने तुम्हारे लिए महीन चावल का इन्तजाम किया । तुम आज भात खाओगे यह जानकर वह कल से पुराने चावल के लिए चक्कर काट रहा था ।"

"नुटु कहाँ है ?"

नुटु की माँ ने कहा, "वह मुँह-अँधेरे गाड़ी लेकर निकला है ।"

"आजकल इतने तड़के नुटु निकल जाता है ?"

नुटु की माँ ने कहा, "उतने तड़के निकलता है और आधी रात बीतने पर घर लौटता है ।"

"क्यों आधी रात तक वह क्या करता है ?"

नुटु की माँ ने कहा, "चाहे जैसे भी हो, जी-जान से पैसा कमाने की कोशिश करता है ? तुम्हारी बीमारी के समय उसने कम मेहनत की है ?"

"और वैकुण्ठ कहाँ है ? वैकुण्ठ को आजकल देख नहीं रहा हूँ मौसीजी ?"

नुटु की माँ ने कहा, "वैकुण्ठ को कैसे देखोगे बेटा ! वह अब नहीं है ।"

"नहीं है का मतलब ? भाग गया ? खाना न मिलने के कारण भाग गया ?"

"उसे नुटु ने बेच दिया ।"

"बेच दिया ?"

"हाँ, बाजार के कसाई के हाथों चालीस रुपये में बेच दिया । तब मैंने बेचने को कितनी बार कहा था लेकिन नहीं बेचा । तब वह हम लोगों को जो-सो गाली-गलौज करता था । तुम्हारी बीमारी के समय जब डॉक्टर को पैसा देने की जरूरत पड़ी तो उसे बेच डाला ।"

पन्द्रह

उन बातों को सुनकर शरीर के भीतर की सारी चीजें अस्त-व्यस्त हो गयी । इतिहास के पृष्ठों में स्वार्थ-त्याग की बड़ी-बड़ी घटनाओं का उल्लेख मिलता है । देश के लिए, दस के लिए, नारी के लिए, प्रेम के लिए जो त्याग किये गये हैं, उनके उदाहरणों की कोई कमी नहीं है । चैतन्यदेव ने अपने विद्यार्थी जीवन में न्याय-शास्त्र की एक पुस्तक लिखी थी । वह पुस्तक बेहद परिश्रम का प्रतिफल था । नदी के किनारे से होकर जाते-जाते उन्होंने अपने एक मित्र से यह बात

बतायी और उसे पाण्डुलिपि दिखायी। लेकिन उसे देखते ही मित्र का चेहरा उदास हो गया।

चैतन्यदेव को विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा, "सुनकर तुम्हें कष्ट हुआ क्या ?"

मित्र ने कहा, "नही भाई। लेकिन मैंने भी बहुत परिश्रम से न्यायशास्त्र की एक पुस्तक लिखी है। तुम्हारी पुस्तक प्रकाशित हो जायेगी तो मेरी पुस्तक कौन पढ़ेगा ? तुम्हारी विद्वत्ता से मेरी कोई तुलना नहीं हो सकती है।"

चैतन्यदेव कुछ देर तक मौन रहे। फिर उन्होंने कहा, "ठीक है। मैं अभी तुरन्त अपनी पुस्तक को नष्ट कर देता हूँ..."

और उन्होने उस पाण्डुलिपि को पानी में बहा दिया। बेहद परिश्रम और निष्ठा का वह फल हमेशा के लिए नदी के गर्भ में समा गया।

हो सकता है कि यह किंवदन्ती है। हो सकता है कि इसके पीछे कोई ऐतिहासिक तथ्य नही है। लेकिन गौड़ीय वैष्णव समाज इस कहानी को सुनाकर ही चैतन्यदेव के माहात्म्य का भजन-कीर्तन करते हैं। लेकिन दरअसल यह माहात्म्य है या अपराध ? सारी दुनिया के करोड़ों आदमियों को न्यायशास्त्र के ज्ञान से वंचित कर एक व्यक्ति से मित्रता निभाना—इसे त्याग कहें या प्रवंचना ? तब प्रश्न खड़ा होता है कि व्यक्ति बड़ा है या व्यष्टि ?

लेकिन नुटु का त्याग ? उस लँगड़े नुटु बिहारी ने पाले-पोसे अपने वैकुण्ठ को कसाई के हाथों किस महान त्याग से प्रेरित होकर बेचा था ? मैं उसका कोई नही था। मेरे लिए उसने जो त्याग किया था, उसे कोई भी गौड़ीय समाज गौरव के साथ नहीं भजेगा। इसके अतिरिक्त उसके त्याग से विशाल मानव समाज की भी कोई क्षति नहीं हो रही है। इस महत्त्व की तुलना रामायण-महाभारत में मिल सकती है लेकिन आधुनिक युग में इसका दृष्टान्त कहाँ मिलेगा ? इतने दिनों से देखता आ रहा हूँ। कांग्रेस का चार आने का स्वयंसेवक भी बनकर देखा है, कांग्रेस का अध्यक्ष बनकर भी। और अब एक प्रान्त का मुख्यमन्त्री भी बनकर देख रहा हूँ। मिसाल के बतौर रथीन सिकदार और केस्टो हालदार का ही झगड़ा लें। मनोनयन किसका किया जायेगा, इसी के कारण इतनी खुशामदें चल रही हैं और इतना भय दिखाया जा रहा है। एक आदमी के पास मछली के बांधों का पैसा है और दूसरे के पास शराब की भट्ठी का। वे पैसा देकर नेता बनना चाहते हैं। और केवल उन दोनों की ही बात क्यों की जाये ! वह आदमी जो रेलवे स्टेशन में रसगुल्ले का वेंडर है, वह भी अपने हाथो से बनाये रसगुल्ले को खिलाकर प्रमाण-पत्र लेने आया था।

एक बार एक साहित्यिक महोदय भी प्रमाण-पत्र लेने आये थे। वह एक सुप्रसिद्ध साहित्यिक हैं। सुनने में आया है कि उनकी किताबों की भी बाजार में

खपत होती है।

ज्योतिर्मय सेन उन्हें देखकर अचकचा गये थे।

"आप भी आखिर पहुँच ही गये?" उन्होने कहा था।

सब-कुछ सुनने के बाद उन्होने अन्त में कहा था, "देखिए, रवीन्द्रनाथ और शरतचन्द्र की लिखी पुस्तकों के अलावा मैंने किसी की भी पुस्तक नहीं पढी है और न पढ़ने का वक्त ही मेरे पास है। आपने किताबें लिखी है, यह अच्छी बात है। हो सकता है कि आप भी एक बड़े लेखक हैं। लेकिन आप अपनी पैरवी के लिए क्यों आये हैं? आपका आना अच्छा नही दिखता है।"

साहित्यिक महोदय ने कहा, "आपके पास न आऊँ तो कहाँ जाऊँ? पुराने जमाने मे राजा-बादशाह कवि, कलाकार और साहित्यिको का भरण-पोषण किया करते थे, उनकी जगह आजकल आप लोग देश के कर्णधार है। अब आप ही लोगों को हम लोगों का कर्ण सँभालना है। आप लोग हम लोगों की देख-भाल नहीं कीजिएगा तो फिर कौन करेगा?"

मजाक के स्वर में कहने के बावजूद ज्योतिर्मय सेन को उसका गूढ़ार्थ समझने में कठिनाई नही हुई थी। फिर उन्होने कहा था, "आप घर जायें, जो करने का होगा, मैं करूँगा।"

उसके बाद शिक्षा-सचिव को बुलाकर कहा था कि उस वर्ष का रवीन्द्र पुरस्कार उसी व्यक्ति को दे दें।

शिक्षा-सचिव ने फिर भी एक बार विनम्रता के साथ कहा था, "कमेटी के सदस्य अगर न मानें फिर क्या किया जाये सर?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा था, "कमेटी वगैरह छोड़ो। मैं जो कह रहा हूँ, वही करो।"

वही हुआ। उस वर्ष उन्हीं को पुरस्कार मिला। इसके चलते किसी ने कुछ नही कहा था। *कहेगा ही क्या? जब तक मैं अपनी कुरसी पर हूँ तब तक कोई* क्या कहेगा?

लेकिन असली बात यह नही है। जिस युग में आदमी निर्लज्ज हो गया है, जिस युग में आदमी ने साधारण बुनियादी बातों को बिलकुल तिलांजलि दे दी है, उसी युग में इसी प्रकार आत्मीयों को सन्तुष्ट करके उनका पोषण किया जाता है। वास्तव मे उन्हें लगता है कि यदि वह इस कुरसी पर नहीं बैठे हुए होते तो आदमी की नीचता और हीनता की इस तरह निर्लज्ज रूप मे देखने से वह वंचित रह जाते। यह जो शराब की भट्ठी का मालिक केस्टो हालदार है और वह जो मछलियों के बांध का मालिक रथीन सिकदार—जो जैसे-तैसे रिश्वत देकर और डराकर मन्त्रिमण्डल मे सम्मिलित होने के लोभ से मनोनीत होना चाहते हैं—उनमें और उस साहित्यिक महोदय में ही कौन-सा अन्तर है?

आज चाहे उसने भीख मांगकर पुरस्कार लिया, लेकिन अगर उसे पुरस्कार नहीं मिलता तो कल वह कम्युनिस्ट पार्टी में सम्मिलित होकर कांग्रेस को गाली-गलौज करता।

लेकिन इस तरह वह कितनों को प्रमाण-पत्र देंगे? कितने लोगों को नौकरी देंगे? कितने लोगों को मन्त्रिमण्डल में लेंगे? कितने लोगों को रवीन्द्र पुरस्कार देंगे? कितने लोगों को दान देने से उनकी पार्टी बनी रहेगी? किस तरह अपनी कुरसी पर वह निश्चिन्तता के साथ बने रहेंगे?

और इन लोगों के सामने गाँव का एक अनपढ़ आदमी नुट्टू है। वह नुट्टू किसी दिन उनके पास नहीं आया। किसी दिन उसने आकर यह नहीं कहा, "ज्योति, तुम मुख्यमन्त्री बन गये हो, मेरे लिए कुछ करो।"

लेकिन अगर वह सचमुच आता और आकर अनुरोध करता? अगर वह आकर कहता, "मैंने तुम्हारा इलाज कराने के लिए अपने वैकुण्ठ को कलिमुद्दीन के हाथों बेच दिया और तुमने मेरे लिए कुछ भी नहीं किया?"

यह घटना कितने दिन पहले की है। समय हवाई जहाज के चक्के की तरह लुढ़ककर कितना आगे बढ़ गया है। घण्टे में हजार मील की रफ्तार से समय आगे निकल गया है। इस जेट-युग में वह समय सचमुच जेट-विमान की तरह दूर चला गया है। इतने दिनों तक उन्हें अवकाश नहीं मिला कि मयनाडांगा के बारे में सोचें। इस कुरसी पर जब से वह बैठे हैं, उन्हें एक हाथ से अपनी पार्टी को सही रास्ते पर रखना पड़ा है और दिल्ली के आला कमान को सन्तुष्ट रखना पड़ा है तथा दूसरे हाथ से शासन की बागडोर सँभालनी पड़ी है। प्रजा भी अब पहले की तरह निरीह नहीं है।

और सिर्फ प्रजा की ही बात क्यों? मैंने जिन लोगों को चुन-चुनकर मन्त्रिमण्डल में रखा है, थोड़ी-सी भी चूक हो जाती है तो वे मेरे खिलाफ षड्यन्त्र करना शुरू कर देते हैं।

लेकिन नुट्टू उन लोगों की तरह नहीं है। वही मेरा वास्तविक शुभाकांक्षी और हितैषी है। उसके कानों में मेरे मुख्यमन्त्री बनने की बात नहीं पहुँची होगी! वह एक बार भी क्यों नहीं आया?

या हो सकता है कि आया हो। नौकरी या खैरात के लिए नहीं भी आया हो, लेकिन कम-से-कम मिलने के लिए आया होगा। अखबारों में मेरी तसवीर हर रोज निकलती ही है। मेरा नाम, मेरा भाषण सब-कुछ हर रोज छपता है। मेरा नाम न जानते हों, ऐसे कितने लोग पश्चिम बंगाल में होंगे? चाहे वह खुद पढ़ने में असमर्थ हो, लेकिन दूसरों से अवश्य ही सुना होगा। सुनने के बाद हो सकता है कि वह राइटर्स बिल्डिंग भी आया हो।

हो सकता है कि आकर पूछा हो, "मुख्यमन्त्रीजी किस कमरे में रहते हैं?"

सुरक्षा-पुलिस ने पूछा होगा, "तुम कौन हो ? उनसे क्यों मिलना चाहते हो ?"

नुटु ने कहा होगा, "वह मेरे मित्र हैं।"

"मित्र !"

नुटु का चेहरा देखकर कौन सोचेगा कि वह मुख्यमन्त्री का मित्र हो सकता है ! कौन इस बात पर विश्वास ही कर सकता है !

उन लोगों ने कहा होगा, "यहाँ से भागो···"

नुटु ने फिर भी खुशामद-चिरौरी की होगी, "एक बार उनके पास आप लोग खबर तो पहुँचा दें।"

लेकिन आज की सभ्यता पोशाक पर टिकी है। पोशाक के मूल्य के तारतम्य पर ही सम्मान और प्रसन्नता कमोबेश रूप में निर्भर करते हैं। उसी का नाम पैसा है। पैसे से पोशाक का घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह कौन नहीं जानता ! पोशाक ही तो चपरास है। पुराने जमाने की चपरास जनेऊ था और आधुनिक काल की चपरास पोशाक है। मेरी राइटर्स बिल्डिंग में किसको कितनी तनख्वाह मिलती है, यह मुझे मालूम है ! मैं उन्हें अच्छी तनख्वाह नहीं दे पाता हूँ, यह भी मुझे मालूम है ! लेकिन तनख्वाह बढ़ा ही दी जाये तो क्या उनकी गृहस्थी सुख से चलेगी ? हो सकता है कि ऐसा न हो सके। उन्हें कपड़े-लत्ते की सुविधा हो जायेगी। एक किरानी कम-से-कम ढाई सौ रुपये की पोशाक पहनकर दफ्तर में आता है। मेरी पोशाक के बनिस्बत उनकी पोशाकें कीमती हुआ करती हैं। शायद यही वजह है कि चिन्तक आज के आदमी को 'ननबिइंग' (असत्) कहते हैं। सर पी. सी. राय जब गांधीजी को हावड़ा स्टेशन में ट्रेन पर चढ़ाने पहुँचे तो फाटक पर के टिकट-कलक्टर ने उन्हें प्लेटफार्म के अन्दर नहीं जाने दिया। उसी पोशाक को देखकर वाराणसी के पण्डों ने उन्हें अपमानित किया था।

नुटु, कोई सर पी. सी. राय नहीं है और न महात्मा गांधी ही। उससे मिलकर वह बीते दिनों के सारे अपराधों के लिए क्षमा माँग लेंगे।

"नुटु, वह बातें मैं भूला नहीं हूँ भाई !" वह कहेंगे, "तुमने मेरे लिए क्या-क्या किया है, सब-कुछ मुझे याद है—सिर्फ कामों के दबाव के कारण साँस लेने तक का मुझे मौका नहीं मिला था। यकीन मानो, केवल कामों के दबाव के कारण···"

नुटु की समझ में यह बात कैसे आयेगी कि मुख्यमन्त्री के सर पर कितनी जिम्मेदारी रहती है, उसे कितनी तरह की चिन्ताएँ रहती हैं। नुटु की तरह जो लाखों आदमी हैं—उनकी बातें उन्हें सोचनी पड़ती हैं। बंगाल में क्या नुटु जैसा व्यक्ति एक ही है। इसके अतिरिक्त केवल नुटु की ही बातें वह सोचा करें तो कैसे चले ? नुटु जैसे लोगों को चुन-चुनकर अगर नौकरी दी जाये तो

लोकसभा में प्रश्नों की झड़ी लग जायेगी। विरोधी दल धिक्कारेगा। उन्हें उस पहलू पर भी सोचना पड़ता है।

याद है, उस दिन नुटु ज्यों ही आया, मैंने उससे पूछा, "नुटु, तुमने वैकुण्ठ को कसाईखाने में ले जाकर बेच दिया?"

नुटु के कानों में जैसे यह बात पहुँची ही नहीं। उसने पूछा, "भात खा चुके हो?"

मैंने कहा, "नुटु, तुमने मेरे लिए जो किया, मैं जीवन-भर भूल नहीं सकूँगा···"

नुटु ने कहा, "जानते हो, मैंने अब तक भात नहीं खाया है।"

"तो तुम भात खा आओ न, तुम्हें थोड़े ही भात खाने से रोक रहा हूँ। लेकिन तुमने वैकुण्ठ को कसाईखाने में क्यों बेच दिया?"

नुटु एकाएक अजीब तरह का लगने लगा। "अबेर में मुझे रुलाने से तुम्हें कौन-सा लाभ हुआ? मैं जितना भूलना चाहता हूँ···"

और वह वहाँ खड़ा नहीं रह सका। लँगड़ाते-लँगड़ाते वह एक निमिष में कमरे से बाहर चला गया। मुझे लगा जैसे वह मेरी आँखों की ओट होकर जी गया।

सोलह

ज्योतिर्मय सेन ने ही पहले बातचीत की शुरुआत की, "कहिए, आप लोग क्या कहना चाहते हैं?"

चारों व्यक्तियों में से एक व्यक्ति बड़ा ही मृदुभाषी था। उसने कहा, "आज यहाँ जो किसान-सम्मेलन हो रहा है, वह किसकी भलाई के लिए किया जा रहा है, हम लोग आपसे यही जानना चाहते हैं?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "जो लोग किसान हैं, उन्हीं लोगों की भलाई के लिए।"

"लेकिन किसान कौन हैं? आप किन लोगों को किसान कहते हैं—जो खेत जोतते हैं वे, या जो खेतों के मालिक है?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "इस बात की चर्चा सम्मेलन में ही की जायेगी। आप लोग इसी बात को कहने के लिए नारे लगाते हुए मेरे पास आये हैं? या इस सम्मेलन को असफल बनाने के लिए आप लोगों का यह जुलूस निकला है?"

"हम लोग सिर्फ यही जानना चाहते हैं कि इस सम्मेलन का उद्देश्य क्या है।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "उद्देश्य यही है कि मैं जानना चाहता हूँ कि

किसानों की क्या-क्या समस्याएँ हैं। उनके अभाव और अभियोग क्या-क्या हैं। सरकार किसानों के लिए जो लाखों रुपये खर्च कर रही है, उससे उनकी समस्याओं का कहाँ तक निदान हुआ है।"

एक मुख्य वक्ता ने कहा, "किसान-सम्मेलन में लाखों रुपये खर्च किये बगैर वह बात क्या नही जानी जा सकती थी ?"

"जनता को जागरूक बनाने के लिए सम्मेलन करना ही पड़ता है। दुनिया के हर मुल्क में यही होता है।"

"दुनिया की सभी जगहों मे जो कुछ होता है, हो, लेकिन समाजवादी मुल्कों में ऐसा नही होता है, हिन्दुस्तान जैसे गरीब मुल्क के लिए यह सम्मेलन क्या विलासिता नही है ?"

ज्योतिर्मय सेन को गुस्सा आ रहा था लेकिन गुस्साने से राजनीति करना मुश्किल है। उन्होने कहा, "किसानों के लिए जो भी किया जाये वह विलासिता नही है। अभी हम लोग खेती के लिए सब-कुछ खर्च करने को तैयार हैं।"

"लेकिन इस सम्मेलन के लिए लाखों रुपया खर्च किया गया है। उसमें से कितनी रकम किसानों की जेब में पहुँची है और कितनी चोरबाजारी करनेवालों की जेब में—यह आपको मालूम है ?"

"बड़ा काम होगा तो कुछ बरबादी भी होगी। विवाह-घर में बहुतों को न्योता दिया जाता है, निमन्त्रितों के अलावा उसमें कुछ हिस्सा भिखमगों को भी मिलता है।"

एक दूसरे मुख्य वक्ता ने अब अपनी जबान खोली।

"सम्मेलन के लिए नलकूप लगाने के लिए डेढ़ लाख रुपये का जो ठेका दिया गया है, वह ठेका किसी किसान को दिया गया है या जिला-परिषद् के चेयरमैन शशी माइति को ?"

"यह बात मैं नही बता सकता हूँ। मेरे पास फाइल नही है। सिंचाई मन्त्री से पूछना पड़ेगा···"

"और बाँस ? सत्तर हजार रुपये के बाँस का जो ठेका दिया गया है, उसके लिए भी क्या आपको किसी मन्त्री से पूछना पड़ेगा ?"

उनकी बगल में जो सज्जन बैठा था, वह बोला, "और हम यह जानना चाहते है कि यहाँ के अस्पताल के एम. बी. डॉक्टर को जो तीन लाख रुपये की टीन का ठेका दिया गया है, क्या वह उन्हे इसलिए दिया गया है कि वह टीन के विशेषज्ञ है या इसलिए कि उनके पास चालीस हजार रोगियों के वोट हैं ?"

अचानक शंकर ने कमरे में प्रवेश किया।

शंकर जैसे वक्त को पहचानकर कमरे के अन्दर आता है। ज्योतिर्मय सेन ने सर उठाकर उनकी ओर देखा। यानी क्या कहना चाहते हो ?

शंकर ने कहा, "आपसे मिलने के लिए और लोग भी बैठे हुए हैं।"

"वे लोग कौन हैं ?"

शंकर ने कहा, "केस्टो हालदारजी और···"

"वह क्या चाहते है ?"

केस्टो हालदार के बारे में स्मरण हो आया। रथीन सिकदार ने बताया था कि केस्टो हालदार शराब चुलाने का कारोबार करता है और उसे मन्त्रि-मण्डल मे लेने से मन्त्रालय की बदनामी होगी, कांग्रेस की बदनामी होगी। वह मन्त्री शब्द का हिज्जे तक नही कर सकता है। लेकिन अगर हिज्जे नही कर पाता है तो उसमें हानि ही क्या है। प्रजातन्त्र में शिक्षित-अशिक्षित सभी को अधिकार प्राप्त है। केवल पागल नही होना चाहिए।

वह एक लाख रुपया पार्टी-फण्ड में देगा। यह भी क्या कम रकम है! बिना पैसे के कही पार्टी चल सकती है। याद है, जब ज्योतिर्मय सेन जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे, उस समय एक साधारण स्वयसेवक ने उनसे पूछा था, "अच्छा ज्योतिदा, गांधीजी यह जो पूंजीपतियो से लाखों रुपया ले रहे हैं, हिन्दुस्तान जब आजाद होगा तो वे क्या सूद-मूल के साथ इन रुपयों को वसूलेंगे नही ? फिर क्या होगा ?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा था, "तुम्हारी अक्ल कैसी है। हिन्दुस्तान जब आजाद हो जायेगा, पूंजीपतियों को लाठी मारकर निकाल दिया जायेगा। राज-नीति इसी को कहते है। अभी लडाई चल रही है, इसीलिए पैसा लिया जा रहा है। मुल्क जब आजाद हो जायेगा तो चन्दे की जरूरत नही पड़ेगी।"

सचमुच, राजनीति इसी को कहते हैं। राजनीति अगर 'नीति' होती तो चाणक्य इतने बड़े राजनयिक होकर यह क्यों कहते, "राजनीति वेश्या वारां-गणा इव···!' राजनीति की नीति क्या कोई एक निर्दिष्ट वस्तु है। समय और सुयोग के साथ-साथ जो नीति बदलती रहती है, उसी को राजनीति कहते हैं। आज तुम्हारे हाथो मे पैसा और ताकत है, इसीलिए आज मैं तुम्हारी शय्या-संगिनी हूँ, कल जब तुम्हारे हाथ में पैसा नही रहेगा तब तुमसे अधिक क्षमतावान् दूसरे व्यक्ति की शय्या-संगिनी बनूंगी।

लेकिन राजनीति चाहे जो भी हो, मैंने हमेशा राजनीति के साथ मानवता के समन्वय की स्थापना करने का प्रयत्न किया है। मैंने मनुष्य की भलाई करना चाहा है। वह इकाई के रूप मे नही, बल्कि सामूहिक रूप में। मेरा यही व्रत रहा है कि जो गिरी हुई हालत मे हैं, उनका कल्याण करूँ। जिस तरह कभी अंग्रेजो के जमाने मे विदेशी शक्ति के खिलाफ लड़ाई लड़ा हूँ, आज स्वाधीनता के युग में उसी तरह अन्याय के खिलाफ लड़ाई लड़ूँगा। लेकिन कितने अन्यायो को रोकने में मैं सफल हो सका हूँ ? अन्याय की रोकथाम के लिए मैंने कितने

अफसरों को बरखास्त किया है ? यह तो जिला परिषद् के चेयरमैन को नलकूप बिठाने के लिए यहाँ डेढ लाख रुपये का ठेका मिला है, यह जो सदर अस्पताल के एम. बी. डॉक्टर को टीन के लिए तीन लाख रुपये का ठेका दिया गया है, उसी तरह की किसी पार्टी को जो बाँस के लिए सत्तर हजार का ठेका दिया गया है, उसकी रोकथाम क्या मैं नही कर सकता था ? लेकिन रोकथाम करने जाऊँ तो मुझे ही हटना पड़े । मेरी जगह कोई दूसरा आदमी आकर इसी तरह का सिलसिला चालू रखेगा । मैं चला भी जाऊँ फिर भी अन्याय की रोकथाम की कोई उम्मीद नही है । और मेरी बात छोड भी सकते है, लेकिन पण्डित नेहरू जो प्रधानमन्त्री बनने के पहले इतनी लम्बी-चौड़ी हाँकते थे, वह भी क्या किसी अन्याय की रोकथाम कर सके थे ?

लेकिन राजा मनु ने कैसे रोकथाम की थी ? जब कोई रोकथाम नहीं कर सके, उन्होने सिंहासन, संसार और मुकुट—सबको त्याग दिया और वन में तपस्या करने के लिए चले गये । उससे हो सकता है कि मनु को मुक्ति मिली हो लेकिन मनुष्य-समाज को क्या लाभ हुआ ?

हो सकता है कि लाभ हुआ हो । चाहे सभी को न मिले लेकिन कुछ लोगों को मुक्ति मिली थी । यह मनुसंहिता का फल है कि हमे चैतन्यदेव, शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस देव, राममोहन राय, विद्यासागर और रवीन्द्रनाथ ठाकुर मिले । और भी कितने ऐसे मिले है जिनकी कोई गणना नही है ।

फिर क्या मैं मन्त्री का पद त्याग दूँ ?

इस सम्मेलन का समाचार कल ही समाचार-पत्रों के प्रथम पृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों मे छपेगा । ऊपर मेरी तसवीर रहेगी । फिर वह भाषण, जो मेरे सचिव ने लिख दिया है, मेरे ही नाम से छपेगा । सिर्फ यही बात नही है । अभी मेरा सम्मान करने के लिए बंगाल के सभी लोग व्याकुल हैं, मेरी कृपादृष्टि के लिए हर कोई उत्कण्ठित रहता है । लेकिन तब क्या होगा ?

आश्चर्य की बात है, मुझे अभी लग रहा है कि वे दिन ही अच्छे थे । इस ख्याति, इस सम्मान और इस खुशामद से परे वह जीवन ऐसा जीवन था जिसमे सहजता और स्वाभाविकता थी । सच नुटु, आज जब तुमसे मुलाकात होगी, मै तुम्हे यहाँ इसी कमरे मे ले आऊँगा । पुलिस या स्वयंसेवक कोई तुम्हे कुछ नही कहेगा । तुम्हें मै अच्छी तरह से समझा दूंगा कि आज मै क्यो सुखी नही हूँ । तुम्हारे मकान मे मैं जब बीमार हो गया था और मेरे इलाज का खर्च चलाने के लिए तुमने जो रात-दिन परिश्रम किया था—यहाँ तक कि अपने इतने दुलारे वैकुण्ठ तक को बेच दिया था—वह मैं भूला नहीं हूँ । भूला नहीं हूँ इसीलिए इतने लम्बे अरसे के बाद आया हूँ । मै तुम्हारे मुँह से तुम लोगों की दुख-दुर्दशा का इतिहास सुनूंगा और यह भी सुनूंगा कि इस सम्मेलन के चलते तुम्हें क्या

मिला और क्या फायदा हुआ। पता चलेगा कि जिला परिषद् के चेयरमन आदि व्यक्तियों के पास पैसा हो जाने से तुम लोगों को क्या लाभ या नुकसान हुआ है। क्या मैंने तुम लोगों की कोई भलाई नहीं की है?

"फिर हम लोगों को क्या कहते हैं?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "आप लोग एक लिखित बयान देते जायें, मैं राइटर्स बिल्डिंग जाकर उसका इन्तजाम करूँगा।"

"लेकिन आज अगर सम्मेलन के पण्डाल में कोई हंगामा मचे तो इस पर हमारा कोई जोर नहीं।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "सरकार अमन-चैन बनाये रखना चाहती है और अमन-चैन जिससे बना रहे इसका इन्तजाम भी वह कर सकती है।"

चारों व्यक्तियों ने खड़े होकर नमस्कार किया। "ठीक है, नमस्कार···" उन लोगों ने कहा।

ज्योतिर्मय सेन ने पुकारा, "शंकर!"

शंकर ने सामने आकर कहा, "कहिए, सर।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "पुलिस के बड़े अफसर को एक बार मेरे पास बुला लाओ और यहाँ के एस. डी. ओ. मिस्टर राय को अभी तुरन्त बुलाकर ले आओ।"

"सर, केस्टो हालदारजी बहुत देर से बैठे हुए हैं।"

"उन्हें क्या काम है, पूछ आओ। उन्हें मनोनीत तो कर लिया गया है, फिर क्यों आये हैं?"

"उन्होंने बताया है कि वह एक बार आपको नमस्कार करके चला जाना चाहते हैं।"

ज्योतिर्मय सेन चिल्ला उठे, "केवल नमस्कार और नमस्कार। मुझे नमस्कार करने से ही उन्हें स्वर्ग मिल जायेगा? इधर एक व्यक्ति नमस्कार करने के लिए धरना दिये हुए है और उधर एक दल पण्डाल में आग लगाने की धमकी दे गया। जाओ, पहले एस. डी. ओ. को खबर भेजो। जल्दी···"

शंकर ने कहा, "इसीलिए कहा था सर, कि टेलीफोन की लाइन···"

बाहर तब जोरों से आवाज हो रही थी, "गरीबों का शोषण, मन्त्री का पोषण, नहीं चलेगा, नहीं चलेगा···"

सत्तरह

मैंने अपने जीवन में क्या कोई अच्छा काम किया है ? किसी का कोई उपकार किया है ? मैंने क्या केवल स्वार्थी व्यक्ति की तरह अपनी ताकत बढाने की ओर ध्यान दिया है और देश-सेवा का भान किया है ? जानता हूँ, जो मेरे प्रति सम्मान प्रकट करते है वे मेरी कुरसी की खुशामद करते हैं। यह भी जानता हूँ कि यह कुरसी जिस दिन छिन जायेगी उस दिन मेरे इर्द-गिर्द मँडरानेवाले लोग भी एक-एक कर चुपचाप हट जायेंगे। यही नियम है। लेकिन अगर यह सही भी हो तो क्या मेरा सारा कुछ छलनाओं से भरा-पूरा है ? आदमी होकर जब जन्म लिया है तो देवता नहीं हो सकता हूँ, यह जानी हुई बात है। लेकिन मेरे इस मन मे क्या सोने का थोड़ा-सा भी अंश नही है ?—सब-का-सब मिलावट ही है ? और अगर मिलावट भी है तो वह क्या चौदह कैरेट का सोना है ?

छुटपन से ही लोगों से प्रशंसा और प्यार मिला है। सम्मान और प्रेम पाते-पाते मैं उनका अभ्यस्त हो गया हूँ। बीच-बीच मे मुझे लगा है कि यह सब पाना क्या लाभप्रद है ? और प्राप्त हो भी तो इतनी मात्रा मे प्राप्त होना क्या ठीक है ? इसको पाने के ही कारण न पाने के आनन्द से वंचित रह गया हूँ। माँगने पर न मिले, इस तरह के दुख का साक्षात्कार नहीं हुआ है, और शायद यही कारण है कि प्राप्ति को मैंने उचित मर्यादा नही दी है। दैवयोग से मैं शहरी आदमी हूँ और बड़े आदमी के घर पैदा हुआ हूँ। लेकिन बड़े आदमी की सन्तान रहने के बावजूद क्यों मैं त्याग का गौरव अर्जित नहीं कर सका ? मन-ही-मन मुझे इस बात का गौरव है कि मैं महान् हूँ। हर कोई महान के रूप में ही मेरा वर्णन करता है। यों मेरी निन्दा करनेवाले भी हैं। कौन ऐसा है जिसकी निन्दा करनेवाले नही होते ? मेरी कृपा से जो लाभान्वित हुए हैं, वे इस निन्दा को महत्त्व नही देते। उनका कहना है कि यह ईर्ष्या का ही दूसरा रूप है। लेकिन वह ऐसा क्यों करता है, मैं जानता हूँ। उसका कारण है कि वे मेरे कृपाकांक्षी हैं और मेरी कृपा से लाभान्वित हो चुके है। मैंने उनमे से किसी को टैक्सी का परमिट दिया है, किसी को नौकरी और किसी को अन्य तरह की सुविधा। और समाचारपत्र ? वे तो मेरी मुट्ठी में हैं। मैं जिसे सरकारी विज्ञापन दूँगा वही मेरी निन्दा करने से कतरायेगा। नमक खाने से मेरा गुण गाना ही पड़ेगा। लेकिन कितनों को नमक खिलाऊँ ? मेरे नमक का भण्डार क्या अशेष है ?

यह हुई अन्य पहलू पर बात। लेकिन और एक दूसरा पहलू भी तो है। जहाँ मैं एक मनुष्य के रूप में हूँ वहाँ न कोई तमगा है, न कोई पद, पदवी या उपाधि या कि कोई सचिव ही। वहाँ मैं खासा एक उपाधिहीन व्यक्ति हूँ। उस

व्यक्ति पर किसी की दृष्टि जाती है ? उस व्यक्ति पर किसी ने कभी दृष्टि डालने की कोशिश की है ?

चाहे कोई देखे या न देखे या देखने की चेष्टा भी न ही करे, लेकिन नुटु ने भी क्या नहीं देखा है ?

उसने मेरे पद या पदवी को नहीं देखा है, मेरी राइटर्स बिल्डिंग के समारोह और चमक-दमक को नहीं देखा है या उसे देखने का मौका नहीं मिला है लेकिन कम-से-कम मेरी अस्मिता को उसने अवश्य ही देखा है।

सच, नुटु ने मुझसे कहा था कि मैंने उसके लिए क्या नहीं किया।

याद है, जब मेरा बुखार उतर गया और मैं स्वस्थ हो गया तो मैं जैसे नुटु का और भी अधिक अपना हो गया। मुझे लगने लगा कि नुटु से बढ़कर अपना मेरे लिए कोई दूसरा नहीं है। मेरे लिए जो व्यक्ति अपने वैकुण्ठ को कसाई के हाथों बेच सकता है, उसके प्यार के कर्ज को लौटाने का मैं जैसे इस जीवन में दुस्साहस न करूँ।

नुटु कहता, "तुम मेरे साथ-साथ क्यों घूमते हो ? दुबारा कहीं ज्वर न आ जाये।"

मैं कहता, "चाहे ज्वर क्यों न आ जाये लेकिन घर पर लेटे रहना अच्छा नहीं लगता है।"

नुटु गुस्से में आ जाता था। "लेकिन अब तुम बीमार पड़ोगे तो मैं तुम्हारी देखभाल नहीं कर पाऊँगा। मेरे पास उतना वक्त नहीं है।" वह कहता।

"अब तुम्हें देखने की जरूरत नहीं है।"

"देखने की जरूरत नहीं है का मतलब ? मैं तुम्हारी देखभाल न करूँ तो फिर कौन करेगा ? तुम्हारा यहाँ अपना कौन है ? तब सारी परेशानी मेरे मत्थे पड़ेगी। फिर कराह-कराहकर रोना मत।"

मैं नुटु की ओर गौर से देखता। तब मैं कच्ची उम्र का था। उन दिनों मनुष्य के चरित्र के बारे मे मुझे उतना ज्ञान नहीं था। लेकिन इतना समझ जाता था कि नुटु की बातों के पीछे प्यार का कितना आवेग है। मैं फिर चुप कर जाता था। उसके साथ-साथ मैदान मे घूमता-फिरता था। मेरे सर पर धूप की तपिश लगती तो नुटु बिगड़ता, "फिर धूप लगा रहे हो न !"

"उससे कुछ भी नहीं होगा।" मैं कहता।

"ठीक है, तुम-जी भर धूप में घूमो। मैं अभी कुछ नहीं कहूँगा। अगर फिर से ज्वर आया तो देखना कि मैं क्या करता हूँ।"

"क्या करोगे ?"

"तुम्हारे लिए मैं डॉक्टर नहीं बुलाऊँगा और न दवा ही खरीदकर लाऊँगा। फिर देखना क्या होता है।"

मैं नुट्टु की बातें सुनकर मन-ही-मन हँसा करता था। वह नुट्टु के मन के अन्दर की बातें नहीं थी। दरअसल वह मेरी भलाई चाहता था और मेरी शुभ-कामना करता था।

और न केवल धूप ही थी बल्कि उसके साथ-साथ बारिश की झड़ी भी थी। मैं पानी से भीगता था और धूप से भी तपता था। फिर भी घर की याद कतई नहीं आती थी। लगता था यही बढ़िया है। कलकत्ते मे अपने घर मे मेरी जो हालत थी उसके बनिस्बत यह अच्छा है। यहाँ खाने और रहने की तकलीफ थी लेकिन उस छुटपन मे मुझे वे तकलीफें तकलीफ जैसी लगती ही नहीं थी।

नुट्टु मेरे लिए रात-दिन जी-तोड़ परिश्रम किया करता था। और वह इसलिए कि हाथ मे दो पैसे आ सकें। वह विप्टु बाबू के ईंट के भट्ठे मे जाकर झगड़ता था, बाजार मे गाड़ी की खेप के बारे मे बिगड़ता था। मैं कुछ भी नहीं बोला करता था। एक तो मैं उसका दिया खा रहा था, और उस पर अगर मैं कुछ बोलता तो वह और भी अधिक गुस्से मे आ जाता। उसका हमेशा का साथी वैकुण्ठ भी उन दिनों नहीं था। उसका अभाव मुझे बड़ा ही अखरता था। लेकिन जबान खोलकर मैं कुछ नहीं कह पाता था। वैकुण्ठ के नाम का उच्चारण करता तो नुट्टु मुझे तत्क्षण मार डालता।

उन दिनों मेरे लिए करने को कोई काम नहीं था। नुट्टु जो कहता उसे सर झुकाकर मान लेना ही मेरा कर्तव्य हो गया था।

लेकिन एक दिन एक काण्ड हो गया।

उस दिन नुट्टु बाजार गया हुआ था। वह व्यापारियों से दर-दाम कर रहा था। मैं दुकान की गद्दी से एक अखबार लेकर उसे उलट-पलट रहा था। आम-तौर से मयनाडांगा मे कोई आदमी अखबार नहीं पढ़ता था। यहाँ तक कि अखबार उनकी नजरों से गुजरता भी नहीं था। और तब अखबारों का उतना चलन भी नहीं था।

अखबारों की प्रयोजनीयता के बारे मे भी लोगों ने चर्चा-परिचर्चा की है। अखबार क्या वास्तव मे एक जरूरी चीज है? साधु रामानन्द का कहना था, "अखबार ही इस युग की अशान्ति का मूल कारण है।" आन्द्रे जिद ने अपने जर्नल में एक जगह लिखा है, "कई सालों से अखबार न पढ़ने के कारण मैं शान्ति से जी रहा हूँ। मेरी कोई हानि नहीं हो रही है।"

लेकिन उस दिन, उस कच्ची उम्र मे मुझे लगा कि अखबार न रहता तो मुझे किसी भी बात की जानकारी नहीं होती। अखबार वे ही पढ़ते हैं जो राजनीति के शिखर पर बैठे हैं। अखबार पढ़ने से उन्हें इस बात का पता चलता है कि उनकी स्थिति क्या है—लोगों की दृष्टि के बैरोमीटर मे वे नीचे उतर रहे है या ऊपर की ओर चढ़ रहे हैं।

साहा बाबू की आढ़त में तब गाहकों की भीड़-भाड़ थी। साहा बाबू जितना व्यस्त था उसका मुनीम केदार भी उतना ही व्यस्त था। तब उसके लिए भी काम से जी चुराना मुश्किल था।

"तुम कौन हो जी ?"

काम की व्यस्तता के बीच ही केदार मुनीम की नजर ज्योतिर्मय सेन पर पड़ी।

"क्या चाहते हो ?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "कुछ भी नहीं, यों ही···"

"यों ही का मतलब ?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "मेरा दोस्त नुटु बाजार गया है। वह काम करने गया है और मैं यहां जरा अखबार देखने के लिए बैठा हूं···"

पता नही क्यो, केदार मुनीम के हृदय में दया उपजी। या उसे ठीक ठीक दया भी नही कहा जा सकता है। उसे सिर्फ इस बात का पता चल गया कि यह लड़का लिखना-पढ़ना जानता है और बिल्कुल गँवार नही है। इसीलिए उसने फिर कुछ नही कहा।

छोटे पाये की एक चौकी थी। उसके ऊपर एक फटी चटायी बिछी हुई थी। उसी के ऊपर वह अखबार रखा हुआ था। बहुत दिनो से कोई समाचार जान नही पाया था। पढते-पढ़ते अकस्मात् एक जगह मेरी दृष्टि ठिठक गयी।

बड़े-बड़े अक्षरों के शीर्षक के नीचे की पंक्तियाँ पढ़कर मैं अवाक् हो गया। कलकत्ते से बाबूजी ने विज्ञापन निकलवाया था कि उनका लड़का खो गया है। उस लड़के का नाम ज्योतिर्मय सेन है। देखने में स्वस्थ और सुन्दर है। उस लड़के का पता जो लगा देगा उसे दस हजार रुपये इनाम देंगे···

पढते-पढते मैं अभिभूत हो गया। यह तो मैं ही हूँ। कोई मुझे यहाँ देख ले ? कोई पहचान ले ? मेरे चेहरे से इस तसवीर की समानता का पता लगा ले ?

मैंने केदार मुनीम की ओर गौर से देखा। इस तसवीर को केदार मुनीम ने देख लिया है क्या ? लेकिन वह काम में इतना व्यस्त है कि सम्भवतः सवेरे से उसे अखबार पढ़ने की फुरसत नहीं मिली होगी। साहा बाबू की भी यही हालत रही होगी। साहा बाबू ने पुआल बेच-बेचकर पैसा कमाया है। उसका ध्यान पुआल बेचने में ही लगा हुआ है। अखबार क्योंकि रखना पड़ता है इसलिए रखता है। फिर काम-काज से अगर फुरसत मिलेगी तो अखबार के पृष्ठों को एक बार उलट-पलटकर देख लेगा। उसके पहले केवल हिसाब करता रहेगा। मयनाडांगा बाजार के पुआल के व्यापारी साहा बाबू की नजर केवल कत्थई खाते पर ही लगी रहती है। हिसाब में कहीं कोई भूल-चूक न हो जाये। पृथ्वी में कहीं कोई भूल-चूक रहे तो रहे, मेरे हिसाब का सिलसिला ठीक

रहना चाहिए। हिसाब के बाहर साहा बाबू की नजर कहीं किसी दूसरी दिशा में नही रहती है।

"ए केदार, यह लड़का क्या चाहता है ?"

केदार तब पुम्रालों की खेप का हिसाब जोड़ रहा था। "मुझे कुछ कह रहे हैं मालिक ?" उसने कहा।

"हाँ, कह रहा था कि यह कौन है और क्या चाहता है ?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "मैं कुछ भी नही चाहता हूँ।"

"नही चाहते हो तो फिर बैठे हुए क्यों हो ? पुग्राल लेना है ?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "नहीं। नुटु मेरा दोस्त है, वह मुझे यहाँ बिठाकर बाजार में काम करने गया है। इसीलिए···"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"जी···"

कहते-कहते मैं एकाएक रुक गया। अगर परिचय दूँ और पहचान लें तो ?

"कलकत्ते में···" मैंने बताया।

"कलकत्ते मे है तो यहाँ क्या करने आये हो ?"

"नुटु के पास आया हूँ।"

"नुटु के पास ? दिगम्बर का लड़का नुटु न ? नुटु तुम्हारा कौन लगता है ?"

अचानक मुझे बहुत डर लगने लगा। उसकी नजर अखबार पर पड़ी है क्या ? कई दिनों से मेरी तसवीर छप रही है। कई दिनों से लापता होने की खबर छप रही है।

मैंने कहा, "नुटु मेरा दोस्त है।"

साहा बाबू ने कई बार मुझे आपाद-मस्तक देखा। जैसे उसको सन्देह हो रहा हो। मुझे लगा कि वह मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा है। दस हजार रुपये का लोभ है। वह मुझे पकड़वा देगा। मेरा पता बताकर दस हजार रुपया इनाम लेगा।

साहा बाबू ने कहा, "मेरे पास आओ।"

"क्यों ?" मैंने पूछा।

"अरे, तुम तो बड़े बेअदब लड़के लग रहे हो। तुम्हें आने के लिए कहता हूँ तो तुम कहते हो क्यों।"

उसी वक्त वहाँ नुटु लँगड़ाता हुआ आया।

"आओ, चलें।" उसने कहा।

मैं बिना किसी ओर ताके नुटु की ओर बढ़ गया।

पीछे से साहा बाबू ने पुकारा, "ए नुटु, नुटु, सुनो।"

नुटु साहा बाबू की ओर जा रहा था। "कहिए, क्या कह रहे हैं ?" उसने

दिगम्बर ने कहा, "नही। वह घर के बजाय नरक है।"

"फिर कहाँ रहते हो ?"

दिगम्बर ने कहा, "जहाँ भी मरजी होती है। कभी श्मशान में, कभी हाट-बाजार में और कभी जिसके-तिसके दरवाजे पर पड़ा रहता हूँ। मेरे रहने का कोई ठीक-ठिकाना नहीं है हुजूर।"

"तुम्हारे लड़के के साथ वह कौन घूमा-फिरा करता है ?"

दिगम्बर ने कहा, "वह हरामजादा कहीं से आ टपका है।"

"कौन है ?"

दिगम्बर ने कहा, "मालूम नहीं हुजूर। काम-धाम तो कुछ करता नहीं, सिर्फ ढेर सारा भात निगलता रहता है। उसी साले के चलते मैंने घर-द्वार छोड़ दिया है।"

"वह आया कहाँ से है ?"

दिगम्बर ने कहा, "वह कहीं से उड़कर चला आया है और जमकर बैठ गया है। न जाता है और न देह से मेहनत ही करता है।"

"उसका घर कहाँ है, यह तुम्हे मालूम नहीं है ? किसका लड़का है, यहाँ क्यों आया है, कुछ भी नही जानते हो ?"

दिगम्बर ने कहा, "कहता तो है कि कलकत्ते में घर है और बड़े आदमी का लड़का है।"

"बड़े आदमी का लड़का है तो तुम्हारे घर में क्यों पड़ा है ?"

दिगम्बर ने कहा, "यही बात तो मैं अपने लड़के से कहा करता हूँ। मेरा बेटा साला नम्बरी हरामजादा है।"

"तुम्हारा लड़का क्या कहता है ?"

दिगम्बर ने कहा, "मेरा लड़का इस बात का कोई जवाब ही नहीं देता है हुजूर। मेरा लड़का आदमी रहे, तब न हुजूर। आदमी नहीं है बल्कि हरामजादा है, हरामजादा।"

साहा बाबू ने एक दूसरी बीड़ी आगे बढ़ा दी। "लो, और एक बीड़ी पियो दिगम्बर," उसने कहा, "तुम्हारी तकदीर बड़ी खोटी है।"

दिगम्बर ने कहा, "मेरी तकदीर का ही दोष है हुजूर। आपसे यों ही कहता हूँ कि मुझे कोई काम-धन्धा दें ? मैं आपके चरणों का दास बनकर रहूँगा।..."

"दूंगा, तुम्हे कोई काम दूंगा। तुम्हारे जैसा आदमी भूखों मरे, यह तो कोई अच्छी बात नही है। तुम मेरे यहाँ आकर रहो और काम किया करो।"

दिगम्बर ने हाथ बढ़ाकर साहा बाबू का पैर छुआ और उसे माथे से लगाया।

"अहाहा, कर क्या रहे हो ! छोड़ो, छोडो···" और साहा बाबू ने अपने दोनों पैर भली भाँति उसके सामने बढ़ा दिये।

"तुम अपने लड़के को एक बार मेरे पास ला सकते हो ?"

दिगम्बर ने कहा, "ले आऊँगा, चाहे जैसे भी हो, ले आऊँगा···"

"और उस छोकरे को···"

अचानक शंकर कमरे के अन्दर आया। उसके पीछे-पीछे मिस्टर राय, मयनाडाँगा का एस. डी. ओ.।

"नमस्कार सर।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "नमस्कार ! बैठिए।"

मिस्टर राय बैठ गया।

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "बाहर हंगामा मचा हुआ है, यह देख लिया है न ? आज के सम्मेलन मे जिससे कोई गड़बडी न हो, इसके लिए आप कौन-सी कार्रवाई कर रहे है ?"

अठारह

पहले-पहल जब मन्त्रिमण्डल गठित हुआ था तब मेरे सामने यही समस्या थी कि किसको कौन-सा विभाग दूँ। कूड़ेदान में फेंके गये जूठन को लेकर जिस तरह भिखमंगों के बीच छीना-झपटी शुरू होती है, मन्त्रियों में विभाग के लिए भी वैसी ही छीना-झपटी मच गयी थी। कृषि-विभाग को कोई भी पसन्द नही करता था। उनका कहना था कि उससे सम्मान नहीं मिलता है। मन्त्रियों मे भी मैंने देखा है कि सम्मान का तारतम्य विभाग के तारतम्य पर निर्भर करता है। जिसके हाथ में गृह-मन्त्रालय रहता है उसको सबसे अधिक सम्मान मिलता है और जिसके हाथ में कृषि-मन्त्रालय रहता है उसका सम्मान सबसे कम होता है हालांकि तनख्वाह, मान, सुयोग और सुविधा हर किसी को एक जैसी मिलती है। यह बहुत कुछ अंग्रेजी में एम. ए. और बंगला में एम. ए. के तारतम्य की तरह है। तुमने एम. ए. पास किया है, मानता हूँ, लेकिन किस विषय में एम. ए. किया है ? मन्त्रियों के सन्दर्भ में भी यही बात है। तुम मन्त्री बने हो, मानता हूँ, लेकिन किस विभाग के मन्त्री हो ? अगर सुनने को मिले कि कृषि-विभाग का है तो मेरे चेहरे पर तिरस्कार की रेखा खिंच जायेगी। हर जगह यही स्थिति है। किसी भी मन्त्री के बाल-बच्चे हिन्दुस्तान के स्कूल-कॉलेजों में नही पढ़ते हैं। वे

पढ़ने के लिए या तो अमरीका या इंग्लैण्ड जाते हैं। हिन्दुस्तान में लिखने-पढ़ने से बाल-बच्चों के पिता की प्रतिष्ठा पर आँच आती है। लोगों के सामने परिचय देने में लज्जा का बोध होता है।

खैर, यह बात रहे। मैंने पहली बार ही कृषि-विभाग का भार ग्रहण कर लिया था।

सभी ने पूछा, "आपने यह क्या किया ज्योतिदा? इससे आपकी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी।"

इस प्रश्न का मैंने उत्तर नहीं दिया था। लेकिन मैंने कृषि-विभाग को अपने हाथों में क्यों लिया, इस बात को चाहे कोई न भी जाने लेकिन अन्तर्यामी जानता है।

मिस्टर राय योग्य एस. डी. ओ. हैं। ज्योतिर्मय सेन ने मिस्टर राय को चुनकर मयनाडाँगा में भेजा है। राइटर्स बिल्डिंग में बुलाकर बहुत तरह का उपदेश दिया था। "बड़ा ही गरीब जिला है वह," उन्होंने कहा था, "मैं चाहता हूँ कि आप उस जिले का प्रशासन अच्छे ढंग से करें।"

मुख्य सचिव ने भी कहा था, "नजर रखिएगा मिस्टर राय, मुख्यमन्त्रीजी ने चुनकर आपको ही वहाँ का कार्य-भार दिया है। वह चाहते हैं कि आप वहाँ के प्रशासन में खास दिलचस्पी लें।"

हर किसी का उद्देश्य अच्छाई पर टिका रहता है। लेकिन बाहर से जो अच्छा मालूम पड़ता है वह व्यावहारिक रूप में क्या सदैव अच्छे रूप में साबित होता है। अच्छा काम घोषित कर हम लोग हर रोज कितने ही बुरे काम किया करते हैं। हम लोग क्या अपराधी को रिहा कर सकते हैं? जो हमारी बुराई करता है उसको हम क्षमा कर पाते हैं? हो सकता है सत्य युग में यह सब सम्भव हो। प्रह्लाद से भगवान् ने कहा, "वर माँगो प्रह्लाद।"

प्रह्लाद ने कहा, "भगवन्! आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं, यही मेरे लिए सब-कुछ है, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

भगवान् फिर भी नहीं माने।

तब प्रह्लाद ने कहा, "यदि वरदान देना ही है तो यही वर दें कि मुझे जिन लोगों ने कष्ट दिया है, उन लोगों को कभी कोई हानि न हो।"

ऐसा मन और ऐसी मनःस्थिति लेकर मैं कैसे देश का प्रशासन करूँगा? फिर से सारा देश चोर, बदमाश और गुण्डों से भर जायेगा। फिर भी खासकर मयनाडाँगा की बात मैंने मिस्टर राय को याद दिला दी थी। देखिएगा, कांग्रेस की कोई बदनामी न हो···

मयनाडाँगा में मैंने देखा था कि गरीबों पर बड़े आदमी कितना अत्याचार करते हैं। एक ओर नुटु जैसे लोग अर्थाभाव से पीड़ित थे और दूसरी ओर

साहा बाबू जैसे लोग उनका शोषण करते थे। मयनाडांगा में कितने ही लोगों को भरपेट भोजन नसीब नहीं होता था। वहाँ केवल दिगम्बर ही वैसी स्थिति में न था बल्कि दिगम्बर जैसे बहुत-से लोग थे।

उस दिन साहा बाबू की मीठी बातों से दिगम्बर द्रवित हो गया।

उसने कहा, "नुटु मेरी बात सुनता तो मुझे चिन्ता ही क्या रहती।"

साहा बाबू ने कहा, "मेरे पास एक बार बुलाकर उसे ला नहीं सकते हो? मै उसे काम दूंगा। तुमको भी नौकरी दूंगा और तुम्हारे लड़के को भी।"

दिगम्बर ने कहा, "तब मैं आपका खरीदा हुआ गुलाम बनकर रहूँगा हुजूर।"

"फिर अपने लड़के को लेते आओ।"

उसके बाद दिगम्बर वहाँ रुका नहीं। दौड़ता हुआ अपने घर लौट आया।

"नुटु, नुटु···"

दिगम्बर चिल्लाता हुआ घर के अन्दर घुसा।

"नुटु कहाँ है?"

नुटु की माँ रसोईघर में कपड़े उबाल रही थी। दिगम्बर ने उसके पास आकर पूछा, "नुटु कहाँ है?"

नुटु की माँ ने कहा, "मालूम नही।"

"कहाँ गया है, यह तुम्हें मालूम नहीं?"

नुटु की माँ ने कहा, "मैं कैसे जानूं? वह कहाँ जाता है मुझे थोड़े ही बता जाता है! तुम्ही ने कभी बताया है?"

दिगम्बर ने कहा, "भारी विपत्ति की बात है। साहा बाबू ने कहा है कि वह नुटु को पुआल की आढ़त में नौकरी देगा। आज से ही नौकरी करनी पड़ेगी।"

इतनी देर के बाद नुटु की माँ को जैसे होश आया।

"क्यों जी, एकाएक नौकरी देने को क्यों तैयार हो गया?"

दिगम्बर ने कहा, "बड़ा आदमी है न। मन में दया उपज गयी। फिर नौकरी नही देगा। मैंने आज साहा बाबू के पैर पकड़ लिये। उससे कहा, मेरा लड़का बरबाद हो रहा है। कोई काम-काज न देंगे तो कैसे चलेगा। मेरे घर के सभी लोग भूखों मर रहे हैं।"

"तो आज से ही नौकरी दे रहे हैं?"

"फिर मैं कह क्या रहा हूँ? आज से ही, अभी तुरन्त···"

दिगम्बर के हाथ में जैसे आकाश का चाँद आ गया था। "मैं लड़के के लिए दौड़-धूप कर मर रहा हूँ और वह आराम से बदन में हवा लगा रहा है। वह हरामजादा दोस्त ही उसके लिए काल साबित हो रहा है।"

और वह वहाँ रुका नही। "जाऊँ", उसने कहा, "साले को खोज लाऊँ···" जैसे ही वह बाहर निकला वैसे ही तुरन्त लौट भी आया।

उन्नीस

नुटु ने उस दिन सोचा था कि वह फिर घर लौटकर नही श्रायेगा। सुबह से ही वह इधर-उधर घूम रहा था। मैं भी उसके साथ-साथ घूम रहा था। नुटु ने कहा, "चलो, अब घर चलें।"

मैंने कहा था, "अगर साहा बाबू पकड़ लें ?"

नुटु की समझ में कुछ नहीं आया था। "क्यों ?" उसने पूछा था, "हम क्या साहा बाबू के नौकर हैं ? चलो, मैं अभी साहा बाबू की आढ़त के सामने के रास्ते से चलता हूँ। देखूँ, वह क्या कर लेता है।"

मैंने कहा, "तुम जाओ। मैं नही जाता।"

उन दिनों नुटु विष्टु सामन्त के ईंट के भट्ठे में काम करता था। सर के आखिरी बोझ को सर से उतारकर बदन का पसीना पोंछ रहा था। "तुम क्यों नहीं जाओगे ?" उसने पूछा।

मैंने कहा, "साहा बाबू मुझे देखते ही पकड़ लेगा।"

नुटु ने कहा, "तुम्हें पकड़ लेगा ? क्यों ? तुमने साहा बाबू का क्या बिगाड़ा है ? मैं जब तक जिन्दा हूँ किसी साले में हिम्मत नही है कि तुम्हें छू ले। मेरे साथ आओ।"

और वह मेरा हाथ खींचता हुआ चलने लगा।

मैंने कहा, "मेरा हाथ छोड़ दो, मैं नहीं जाऊँगा।"

मैं जितना ही मना करने लगा, वह उतना ही खींचने लगा।

नुटु ने कहा, "मेरे साथ आओ। मैं देखना चाहता हूँ कि वह बेटा तुम्हारा क्या बिगाड़ लेता है ?"

"छोड़ो, मुझे छोड़ दो।" मैंने कहा।

अन्त मे मेरा हाथ छोड़कर नुटु ने कहा, "फिर तुम पहले यह बताओ कि माजरा क्या है ? तुम साहा बाबू की आढ़त के सामने क्यों नहीं जाना चाहते हो ?"

मैने कहा, "तुम मुझे अखबार लाकर दे सकते हो ?"

"अखबार ? अखबार लेकर क्या करोगे ? तुम अखबार पढ़ लेते हो ?"

"हाँ, पढ़ लेता हूँ", मैंने कहा, "चाहे जहाँ से हो, मेरे लिए एक अखबार ला दो। आज का अखबार···"

तब भी नुटु की समझ में कुछ नही आया। "फिर रेलवे स्टेशन चलो," उसने कहा, "वहाँ स्टेशन मास्टर के पास अखबार है।"

हम लोग वही पहुँचे। स्टेशन मास्टर उस वक्त रेलवे के काम में बहुत ज्यादा व्यस्त था। वह ज्यों ही एक फोन उठाता कि दूसरा फोन घनघना उठता

था। बात करने की उसे फुरसत नही थी। न जाने कहाँ-कहाँ से गाड़ी, असबाब और खबरें आ रही थी और स्टेशन मास्टर उत्तेजाना में जी रहा था।

"कौन ?"

किसान के एक लँगड़े लड़के को देखकर उसी स्थिति में पूछा, "तुम कौन हो ? क्या चाहते हो ? अभी कलकत्ते के लिए कोई गाडी नहीं है।"

नुट्टु ने कहा, "सरकार, गाड़ी के लिए नहीं आया हूँ..."

"गाड़ी के लिए नही आये हो तो फिर आना क्यों हुआ है ? यहाँ भीख-वीख नही मिलेगी। यह सरकारी दफ्तर है।"

"हुजूर, ऐसी बात नहीं है। आपके पास अखबार है ?"

"अखबार ! अखबार लेकर तुम क्या करोगे ? अखबार पढ़ना जानते हो ? निकलो, यहाँ से निकलो..."

फिर भी उसे बाहर निकलते न देखकर स्टेशन मास्टर पुकारने लगा, "लालधनी, कहाँ हो जी..."

याद है, सरकारी कर्मचारी पहले जैसे हुआ करते थे, आज भी वैसे ही हैं। बहुत पुकारने पर भी नही आया। लगा, लालधनी शायद प्वायण्ट मैन है। या चौथे दर्जे का कोई रेलवे कर्मचारी। उसको स्टेशन मास्टर के काम के लिए ही रखा गया था। लेकिन पुकारते ही आ जाये तो फिर वह रेलवे की नौकरी करने आया ही क्यो है ?

लेकिन इस बीच स्टेशन मास्टर के पास फिर फोन आ गया। वह बातचीत करने मे मशगूल हो गया।

नुट्टु ने बाहर आकर कहा, "नही जी, अखबार मुझे नहीं देगा। चलो।"

मैंने कहा, "इतने बड़े गाँव मे अखबार नही मिलेगा ?"

क्या किया जाये। कोई उपाय नहीं था। स्टेशन के प्लेटफार्म से बाहर निकल आया। नुट्टु ने कहा, "देख रहे हो न, बाबू लोग गरीबों को आदमी समझते ही नहीं। हर कोई हमे ठुकराते है।"

मैंने कहा, "अखबार देने से उसका कोई पैसा तो नही खर्च हो रहा था। फिर भी तुम्हें क्यों नही दिया ?"

सोचा, शायद यही बात है। क्यों देगा ? देने से कही किसी आदमी की भलाई न हो जाये। बहुत दिनों के बाद एक बार 'रामकृष्ण कथामृत' पढ़ा था। एक जगह लिखा है, 'किसी को जब अहंकार हो जाता है तो वह फिर कुछ नहीं कर पाता है। जानते हो, अहंकार किस प्रकार की चीज है ? वह जैसे मिट्टी का ढूह है जहाँ बरसात का पानी जमता नहीं, बल्कि बहकर निकल जाता है। नीचे की जमीन में पानी जमता है और अंकुर फूटता है। फिर वहाँ पेड़ जन्म लेता है और उसमें फल लगते हैं।

लेकिन मैं ही क्या अहंकार से मुक्त हो सका हूँ ? आज लगता है जैसे ताकत पाने के कारण शायद मैंने भी उसी स्टेशन मास्टर की तरह सबको कमरे से बाहर निकाल दिया। नुटु की भाषा में हमने उन्हें 'ठुकरा' दिया है। अन्यथा बाहर से वह आवाज आती ही क्यों, 'गरीबों का शोषण, मन्त्री का पोषण, नहीं चलेगा, नहीं चलेगा।' यदि मैंने ऐसा न किया होता तो वे फूलों की माला लाकर मेरे गले में पहना जाते। या बात यह है कि न तो पहले का वह गाँव है, न पहले का वह आदमी और न पहले की दुनिया ही। सम्भवतः बात यही है। या बात ऐसी नहीं है। मैं जिस मयनाडाँगा में पहले आया था, यह मयनाडाँगा सम्भवतः पहले जैसा नहीं है। उस मयनाडाँगा के आदमी भी अब नहीं हैं। आज अभी, तीसरे पहर हो सकता है कि सभा में जाने पर देखने को मिला कि यहाँ का सब-कुछ बदल गया है। अब यहाँ रेडियो और ट्रांजिस्टर आ गये हैं। हो सकता है कि ये लोग अब तंग मोहरी की पैण्ट पहनकर हिन्दी फिल्मों के गीत गाते हों। हो सकता है कि अब इन लोगों ने बीड़ी के बदले सिगरेट पीना शुरू कर दिया हो। अब ये लोग अपने दावे को अच्छी तरह समझने लगे हैं। राजनीति की भाषा जब यहाँ आकर पहुँच चुकी है तो उसके साथ-साथ अन्यान्य लक्षणों का पहुँचना भी क्या सम्भव है ? लास्की ने कहा है, "Every State is formded on force,"[1] हर राज्य अगर ताकत से ही कायम किया जाता है तो यहाँ के निवासियों को जोर-जबर्दस्ती करने का हक है।

मैकाईवर ने कहा, "The State is considered the sole source of the 'right' to use violence. Hence 'politics' for us means striving to share power or striving to influence the distribution of power, either among States or among groups in within a State."[2]

पुराने जमाने में जैसी स्थिति थी आधुनिक काल में भी वही स्थिति है। उस युग में देश के राजा-महाराजे किसी को कारावास में ठूँसकर और किसी को उपाधि से विभूषित कर अपने अधीन रखा करते थे। इस युग में भी हम लोग वही काम करते हैं। किसी को कारावास में ठूँस देते हैं और किसी को पद्मश्री की उपाधि से विभूषित करते हैं। उद्देश्य एक ही है। हर किसी को अपने अधीन कर अपने खेमे में ले आना। जो इस पर भी अधीनता स्वीकार

१. हर राज्य की स्थापना ताकत से ही की जाती है।
२. राज्य को हिंसा करने का एकमात्र अधिकार है, ऐसा समझा जाता है। अतः हम लोगों के लिए राजनीति का अर्थ है शक्ति के विभाजन की तड़प या शक्ति के विभाजन में अपने प्रभाव को उपयोग में लेने की तड़प—चाहे वह राज्य-राज्य के बीच हो अथवा किसी राज्य के दलों के बीच हो।

नहीं करता उसे हम विद्रोही कहते हैं, कम्युनिस्ट कहते हैं, अपने हाथों में ताकत बरकरार रखने के लिए हम लोग जिस तरह बन्दूक उठाकर मुंह से अहिंसा की वाणी निकालते हैं, वे लोग भी उसी तरह कह रहे है, 'गरीबों का शोषण, मन्त्री का पोषण, नहीं चलेगा।' यह ताकत की लड़ाई है। दुनिया के इतिहास का अर्थ ही है ताकत की लड़ाई का इतिहास।

आज इस किसान सम्मेलन मे ताकत की लड़ाई का ही निर्णय होनेवाला है। चाहे वे जीतें या हम जीतें। हम लोगों के दल में उपाधिकारी, बन्दूकधारी और पदवीधारी पुलिस तथा मिलेट्री ठेकेदार हैं, उन लोगों के दल में है लाठी, रोड़े, आग, नारेबाजी और अगनित साधारण जनता। अब देखना है कि जीत किसकी होती है। उनकी या हमारी ? हालांकि सोचा जाये तो हम लोग किनके लिए गद्दी पर बैठे हुए हैं ? हम और वे क्या अलग-अलग हैं ?

मिस्टर राय ने कहा, "आप चाहें तो पाँच हजार पुलिस कान्स्टेबल जमा कर सकता हूँ सर। अभी-अभी, जैसा कि अगले दफा किया था···"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "सो तो हो सकता है। लेकिन इतनी संख्या में पुलिस ले आने से सरकार की बदनामी होगी। बिना पुलिस कान्स्टेबल बुलाये अमन-चैन कायम रखा जा सके, इसका उपाय बताइए।"

मिस्टर राय ने कहा, "वैसा करने के लिए अब वक्त नहीं है सर।"

"लेकिन चुनाव निकट है, यह भी तो आपको ध्यान में रखना पड़ेगा। फिर बन्दूक और पुलिस के जोर से वोट तो इकट्ठे नही किये जा सकते है।"

मिस्टर राय ने कहा, "इसके लिए दूसरा उपाय है सर।"

"कौन-सा उपाय ?"

"उस बार चुनाव होने के छः महीने पहले से ही हम लोगों ने चावल का दाम कमा किया था, कण्ट्रोल के राशन की तादाद बढ़ा दी थी और इसके अलावा दो सौ नलकूप लगवा दिये थे। इस बार दो सौ नलकूप और लगवा देंगे।"

"उससे ही क्या हवा का रुख बदल जायेगा ?"

मिस्टर राय ने कहा, "जरूर बदल जायेगा सर ! नकद पैसा मिलते ही आदमी पहले का सारा कष्ट भुला बैठता है। मनुष्य की स्मरण-शक्ति बड़ी क्षीण होती है। आपको अच्छी तरह मालूम ही है सर···"

ज्योतिर्मय सेन ने एक क्षण सोचा और कहा, "अच्छा मिस्टर राय, आपका खयाल है कि यह सब करने से वे लोग शान्त हो जायेंगे ?"

"क्यों नही होंगे ? जिस दिन यहाँ के लोग समझेंगे कि कांग्रेस देश के लोगों की भलाई चाहती है, उसी दिन काग्रेस को वोट देंगे।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "आज अगर गोली या अश्रुगैस का प्रयोग किया जाये तो लोग हमारे खिलाफ नही हो जायेंगे ?"

"लेकिन वे लोग जब हिंसा पर उतर आयेंगे तो हमें भी उतरना पड़ेगा।"

"ब्रिटिश सरकार भी यही बात कहा करती थी। वे लोग भी यही दलील दिया करते थे। फिर उनमें और हममें अन्तर ही क्या है? मैं कहूँ, इससे तो अच्छा यही होगा कि आप सब-कुछ तैयार रखें। अगर हालत वैसी हुई तो फिर देखा जायेगा। मुझे लगता है कि आज कोई बड़ी गड़बड़ी होने जा रही है।"

मिस्टर राय ने कहा, "आप जैसा हुक्म देंगे वैसा ही किया जायेगा।"

ज्योतिर्मय सेन को घड़ी की ओर देखते हुए पाकर मिस्टर राय उठकर खड़ा हो गया। "नमस्कार! फिर मैं चलूँ। आपके लिए मैंने सफेद लिबास के सौ पुलिस का इन्तजाम कर दिया है···"

ज्योतिर्मय सेन ने आपत्ति करते हुए कहा, "नहीं-नहीं, यह सब करने की कोई जरूरत नहीं।"

मिस्टर राय ने कहा, "नहीं सर, मैं जोखिम नहीं उठा सकता हूँ। आप इस पर आपत्ति नहीं कर सकते हैं। यहाँ के लोग बड़े ही खराब हैं। आज पहले का वह मयनाडांगा नहीं रहा।"

"लेकिन इसकी वजह क्या है मिस्टर राय? ऐसा क्यों हुआ?"

मिस्टर राय ने कहा, "इसके बारे में मैंने आपके पास राइटर्स बिल्डिंग में रिपोर्ट भेजी थी। पहले इन लोगों में समझ नाम की चीज नहीं थी। लेकिन अब इन लोगों की आँखें खुल चुकी हैं। वे समझ गये हैं कि उनके हाथों में सरकार के हथियार के बनिस्बत बड़ा हथियार है।"

ज्योतिर्मय सेन खामोश रहे। समझ गये। ऐसा होगा, यह बात उन्हें पहले ही जान लेनी चाहिए थी। उन्हें मालूम ही था कि हमेशा ये लोग ऐसे नहीं रहेंगे। तब महात्मा गांधी के नाम पर ही हम लोगों का सारा काम बन जाता था। तब जवाहरलाल नेहरू का भाषण सुनकर लोग तालियाँ पीटा करते थे। अब नेहरू का नाम लेते ही लोग जल-भुन जाते हैं। ऐसा होगा ही, यह तो उन्हें मालूम ही था।

"अच्छा, फिर चुनाव में मेरी पार्टी हार जायेगी क्या?"

मिस्टर राय अंग्रेजों के जमाने का अफसर था। "इसका उत्तर मुझसे मत माँगें सर!" उसने कहा।

"मछली के बाँध के मालिक, शराब की दुकान के मालिक वगैरह हमारी पार्टी के जो सदस्य बने हैं, इसको लेकर जनता आलोचना किया करती है?"

मिस्टर राय इसका उत्तर क्या देता, पता नहीं, लेकिन उत्तर देने के पहले ही शंकर ने कमरे में प्रवेश किया।

"ज्योतिदा, तीन बज चुके हैं, चाय ले आऊँ?" उसने कहा।

ज्योतिर्मय सेन कुछ कहें कि इसके पहले ही मिस्टर राय उठकर खड़ा हो

गया।

"मैं अभी चलूँ सर," उसने कहा, "उधर का सारा इन्तजाम देखना है।"

और वह चला गया। बाहर जो जुलूस था, वह चला गया था। शंकर तब उनके सामने खड़ा था। ज्योतिर्मय सेन आराम-कुरसी से उठकर आँख मूँदे बहुत सारी बातें सोच रहे थे। उन्हें अपने बीते दिनों की बातें याद आयीं—वही नमक सत्याग्रह की बातें। पुलिस की लाठी की चोट से वह बेहोश हो गये थे। अब भी शायद लाठी की चोट का निशान है। फिर जेल में आमरण अनशन की घटना उन्हें याद आयी। आज शायद वह इतिहास झूठा हो गया है। उनके व्यतीत का सब-कुछ अब मिथ्या है। अभी एकमात्र आगत ही सत्य है—राइटर्स बिल्डिंग का यह आज का जीवन!

रास्ते के मोड़ पर आते ही नुटु ने कहा, "ठहरो, मैं अभी अखबार ले आया।" और वह एक घर के अन्दर चला गया।

मैंने पूछा, "यह किसका घर है जी?"

नुटु ने कहा, "यह डाकघर है। डाकघर के चपरासियों से मेरा हेल-मेल है। देखूँ, यहाँ अखबार है या नहीं।"

नुटु थोड़ी देर बाद अखबार लिये लौटा।

"जल्दी पढ़ लो, अभी तुरन्त लौटाना है।" उसने कहा।

पृष्ठों को उलटकर ठीक जगह पर आते ही देखा कि मेरी वही तसवीर थी। नुटु पढ़ना नहीं जानता था। लेकिन मेरी तसवीर पर नजर पड़ते ही उसने कहा, "यह भी तुम्हारी तसवीर है ज्योति!"

"हाँ," मैंने कहा।

नुटु ने पूछा, 'तुम्हारी तसवीर इसमें क्यों छपी है जी?"

मैंने कहा, "मेरे बाबूजी ने यह तसवीर छपवायी है। लिखा हुआ है कि जो मेरा पता लगा देगा उसे दस हजार बतौर इनाम देंगे।"

"दस हजार रुपया!"

आश्चर्य से शब्दातीत की स्थिति में आकर नुटु मेरी ओर अपलक ताकने लगा।

मैंने कहा "तुम्हें अभी तुरन्त दस हजार रुपये मिल जायेंगे अगर तुम मेरा पता मेरे बाबूजी के पास पहुँचा दो। हाँ, दस हजार रुपये।"

दस हजार रुपये। बाबूजी के लिए उस जमाने में भी दस हजार रुपये की कीमत कोई ज्यादा नही थी। उस जमाने में भी बाबूजी की ग्राय ग्रसाधारण थी। बाबूजी के पास कम पैसा था या ज्यादा—उस कच्ची उम्र में मेरे लिए जानने का कोई उपाय नही था।

ग्रौर सत्य कहने में हर्ज ही क्या है। ग्राज की ग्रपेक्षा उन दिनों पैसा बहुत महँगा था। रुपया महँगा था लेकिन चीजें ग्रपर्याप्त थीं। ग्रपर्याप्त थी इसी कारण रुपये का मूल्य रहने के बावजूद ग्रादमी ग्राज की ग्रपेक्षा बहुत उदार होते थे। जब जिस चीज की जरूरत होती थी, दुकान में पैसा फेंककर लोग खरीद लाते थे। चीजें प्रचुर मात्रा मे मिलती थी लेकिन रुपये की कमी थी। करोडों रुपये विदेश चले जाते थे। जो पैसे बाकी रहते थे उन्हें देश के मुट्ठी-भर लोग ग्रापस मे बाँटकर ग्रपनी-ग्रपनी जेबों के हवाले करते थे। बाबूजी उन मुट्ठी-भर लोगों में से एक थे।

सवेरे से दो व्यक्तियों के लिए जितने ग्रादमियों को तनख्वाह मिलती थी, जितने ग्रादमी सुबह से शाम तक खटते रहते थे, उन लोगों को भरपेट वैसा खाना नसीब नही होता था। उन लोगों को सिर्फ तनख्वाह ही मिलती थी। ग्रपना पैसा खर्च करके उन्हें ग्रपने लिए रसोई बनानी पड़ती थी। उन लोगों से सिर्फ पैसे का ही रिश्ता था। बाबूजी उन्हे पैसा देकर उनसे सेवा खरीदा करते थे।

लेकिन ग्रपने लड़के के लिए दस हजार ही क्या, बीस हजार खर्च करने में भी उन्हे ग्रखरता नहीं था। लेकिन किसी भी कर्मचारी की तनख्वाह दो रुपया बढ़ाने में उन्हे रुपये की कमी महसूस होने लगती थी।

सुखदेव ने एक बार तनख्वाह बढ़ाने की माँग की थी।

"क्यों, बीस रुपये तनख्वाह पाने पर भी तुम्हारा नही चलता है?" बाबूजी ने कहा था।

सुखदेव यों भी शर्म से गड़ा रहता था। बाबूजी की बात सुनकर उसने कहा था, "हुजूर, देश की जमीन छुड़ानी है। बहुत दिन पहले सुखदेव के बाप ने जमीन बन्धक रख दी थी। उसका सूद बढ़कर काफी हो गया था। लगभग सात सौ रुपये। दरग्रसल सूद की रकम हजार गुनी बढ़ गयी थी ग्रौर जमीन हाथ से निकल जाने को थी। लेकिन कोई चारा नहीं था। वह बीस रुपये तनख्वाह पर कलकत्ता शहर मे नौकरी करने ग्राया था। सुखदेव को खाना ग्रलग से मिलता था। उसके लिए उसे ग्रलग से रसोई नहीं बनानी पड़ती थी। उसे दिन-भर काम रहता था ग्रौर उसको रसोई बनाने का वक्त नही मिलता

था। उसे जो बीस रुपये तनख्वाह में मिलते थे, सारी रकम वह कर्ज वसूलने के लिए देस भेज देता था। फिर भी वह नौकरी छोड़ नही पाता था। नौकरी छोड़कर वह जाये भी तो कहाँ जाये? रात हो या दिन उसे छुट्टी ही कहाँ मिलती थी? बाबूजी जहाँ-जहाँ जाते थे, उसे वहाँ-वहाँ जाना पड़ता था। जब बाबूजी को कलकत्ते से बाहर जाना पड़ता था तब सुखदेव को आराम मिलता था। वह रात-दिन पड़ा-पड़ा सोया रहता था।

याद है, बाबूजी के काम का सिलसिला दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा था। सुबह से रात दो-तीन बजे तक बाबूजी कब किस नशे मे कहाँ-कहाँ काम करते रहते थे, यह बात मुझे मालूम नही थी। किसके लिए बाबूजी काम करते थे, इसका भी हिसाब-किताब किसी के पास नही था। यह काम का नशा था या रुपये का नशा! अगर नशा रुपये का था तो बाबूजी किसके लिए रुपया इकट्ठा कर रहे थे, किसी को मालूम नही था। यह फिर क्या काम का नशा था?

काम का भी एक किस्म का नशा होता है। मैं सब-कुछ छोड़-छाड़कर यह जो पार्टी का काम कर रहा हूँ, यह किस चीज का नशा है! इस काम मे तो पैसा नही है, रुपया नही है, यह जान-सुनकर भी मैं इस क्षेत्र मे आया हूँ। शायद यह ताकत का नशा है। हिटलर का बैंक-बैलेंस एक भी पैसा नही था। एक बार उसे एक छाते की जरूरत थी। उसका मूल्य उसे सरकार से मंजूर कराना पड़ा था। एक मामूली छाता खरीदने का पैसा जिसके पास नही था, उसके बाहु-बल से सारी दुनिया भय से थरथराती थी, यह बात हर किसी को मालूम नही है।

दरअसल ताकत हथियाने के लिए ही मैं आज राजनीति में हूँ। आदमी की भलाई करना मेरा उपलक्ष्य है और लक्ष्य है ताकत पर अधिकार प्राप्त करना।

उस दिन नुटु के बाप ने एकाएक उसे पकड़ लिया।

"ए, कहाँ था? तेरी खोज में चप्पा-चप्पा छान गया हूँ।"

नुटु ने कहा, "क्यों-क्यों? आप मेरी तलाश क्यों कर रहे थे?"

"साहा बाबू ने कहा है कि वह तुझे नौकरी देगा और इधर तेरा कोई पता ही नही। चल, अभी तुरन्त मेरे साथ चल···"

नुटु ने कहा, "मैं नही जाऊँगा।"

"नही जाओगे? नही जाऊँगा कहने से ही हो गया? फिर यहाँ खाना नही मिलेगा।"

नुटु भी तैश में आ गया।

"मैं क्या आपका दिया खाता हूँ," उसने कहा, "आप मुझे खाना देते हैं? मैं खटकर खाता हूँ।"

दिगम्बर और अधिक गुस्से में आ गया। उसने कहा, "तेरा दिमाग इतना चढ़ा हुआ है, हरामजादे कहीं के। मैं नहीं रहता तो तू पैदा कैसे होता? इतना बडा जवान लडका घर पर रहे और मैं भूखों मरूँ? बूढ़े बाप को खिलाना-पिलाना तेरी जिम्मेदारी नहीं है?"

नुटु ने कहा, "आप चाहे जितना गाली-गलौज करें, मैं आपकी बात मे नहीं आनेवाला हूँ।"

"फिर तुम्हारे कहने का मतलब यही है न कि मैं जिन्दगी-भर खट-खटकर मरूँ?"

नुटु ने कहा, "आप मर जाइए न, आपको जिन्दा रहने को कौन कहता है? अभी तुरन्त मर जाइए। मैं हरि-सभा मे जाकर बतासे लुटाऊँगा।"

"फिर साले···"

और दिगम्बर एक ही छलांग में वहाँ आ गया। नुटु भी तैयार था। वह भी मुक्का कसकर बाप पर कूद पड़ा।

"साले का आप बाप बने हैं, इसीलिए इतना ख्वाब देख रहे हैं। मैं आपका ख्वाब तोड देता हूँ···"

उसके बाद मेरी आँखों के सामने ही बाप-बेटे में गुत्थमगुत्था शुरू हो गयी। नुटु लँगड़ा था लेकिन देह की ताकत में डेढा पड़ता था। उसने अपने बाप को जमीन पर पटक दिया और फिर उसकी छाती पर घुटने रखकर बैठ गया।

"साले बाप बनने का गुमान मुझे दिखाओगे?" उसने कहा।

मैंने मन-ही-मन स्वयं को अपराधी के रूप में लिया और भय से काँपने लगा।

फिर मैं स्वयं को रोक नहीं सका।

तत्क्षण वहाँ पहुँचकर मैं नुटु का हाथ पकड़कर खींचने लगा। "नुटु, ओ नुटु, उठो," मैंने कहा, "बाप को छोड़ दो, छोड़ो···"

मनुष्य की शिक्षा की अवश्य ही कोई कीमत होती है। शिक्षा मनुष्य को संयत करती है। जीव-जन्तुओं की दुनिया में एक तरह का प्राणी होता है। जिसे आप मसल भी डालें तो वह कोई विरोध नहीं करेगा। मसलन केंचुआ। इसे सात्विकता नहीं कहा जा सकता है। इसे जड़ता कहते हैं। दूसरी ओर और एक तरह का प्राणी होता है जिसे आप चोट पहुँचाएँ तो वह काट लेगा। मसलन मधुमक्खी, बर्रा और चींटी। लेकिन मनुष्य का स्वभाव और ही प्रकार का होता है। वह कहता है, मैं तुम्हारी अधीनता नहीं स्वीकारूँगा, तुम चोट पहुँचाओगे तो बदले मे मैं चोट नहीं पहुँचाऊँगा, बल्कि तुममें जो पशुता है, उसका विनाश करूँगा। तुम अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए मुझ पर जो पाशविक प्रवृत्ति का प्रयोग कर रहे हो, मैं तुम्हारी उस पाशविक प्रवृत्ति को ही चूर-चूर कर डालूँगा।

लेकिन इस तरह की शिक्षा नुटु जैसे लोगों को कौन दे ? तब मयनाडांगा में शिक्षा देने का सुयोग ही कहाँ था ? और शिक्षा दे भी तो किसको ? उन लोगों की पढ़ने-लिखने की जो उम्र होती है, उसमें भिक्षावृत्ति भी करे तो अधिक आय की सम्भावना रहती है।

बहुत कष्ट से मैंने नुटु को अलग किया। लेकिन उस वक्त दिगम्बर प्रायः अचेतावस्था में पहुँच गया था। एक तो बूढ़ा और नशाखोर, उस पर कभी भरपेट खाना खाने का मौका नहीं मिला था। मैं एक लोटा पानी ले आया और उसे दिगम्बर के मुँह में डाला। पानी पीकर दिगम्बर ने कई बार हिचकियाँ लीं। फिर आहिस्ता से उठ बैठा :

लेकिन उस वक्त भी वह तैश में था। कुछ देर तक वह गाली-गलौज बकता रहा, "साला, हरामजादा, बेईमान कहीं का•••"

मैंने नुटु को संयत किया। देखा, वह पुनः आक्रमण करने के लिए प्रस्तुत है। मैं उसी क्षण नुटु को खींचकर बाहर ले आया।

"छिः-छिः," मैंने कहा, "बूढ़े बाप को मारना क्या शोभा देता है ! वह तुम्हारा बाप है न !"

नुटु का तब गुस्से से बुरा हाल था।

'बाप-बेटे के झगड़े में तुम नाक क्यों घुसेडते हो जी ? मैं अपने उस बाप का कमाया खाता-पहनता हूँ जो वह मुझे गाली-गलौज देगा ? आज तुम पकड़ न लेते तो आज मैं उस बेटे को ठिकाने लगा देता।"

मैंने कहा, "क्यों बेवजह टण्टा बढ़ा रहे हो ? मैं कह रहा हूँ न, कि तुम्हे दस हजार रुपये दिला दूँगा। जिन्दगी में तुम्हें खाने-पहनने की कोई चिन्ता नहीं रह जायेगी।"

"मैं तुम्हारा पैसा क्यों लूँ ?" उसने कहा।

"वह मेरा पैसा नहीं है, बल्कि मेरे बाप का पैसा है। अखबार में नहीं देखा ?"

"सर !"

शंकर के आकस्मिक प्रवेश से ज्योतिर्मय सेन चौंक पड़े।

"चाय ले आया हूँ। यह चाय पीकर देखें, बीस रुपये पाउण्ड की है।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "इतनी कीमती चाय का इन्तजाम क्यों किया ? हम लोगों ने बारह-चौदह साल जेल में काटे हैं। तब हजम करने की ताकत थी लेकिन खाना नहीं मिलता था। अब यह बढ़िया-बढ़िया खाना जीभ को रुचता नहीं है।"

और मैंने चाय की प्याली से घूँट लिया। मुँह से हालांकि मैंने विनम्रता प्रकट की लेकिन चाय पीने में अच्छी लगी। बड़ा ही अच्छा स्वाद था।

सिर्फ चाय ही नहीं थी, बल्कि वह कहीं से बढ़िया विस्कुट भी ले आया था।

"यह सब लाने की क्या जरूरत थी ?" मैंने कहा।

शंकर ने मेरी बात काटकर कहा, "आप क्या कह रहे हैं ज्योतिदा। आप मयनाडांगा आये हैं, मयनाडांगा के लिए यह सौभाग्य की बात है। एक बार जबकि यहाँ आपके चरणों की धूल गिर चुकी है, हमारे लिए अब कोई दुख नहीं रह गया···"

मैंने कहा, "अच्छा शंकर, तुम्हारे यहाँ इतनी उत्तेजना क्यों फैली हुई है ? यहाँ भी क्या वे दाखिल हो गये हैं ? वे कम्युनिस्ट लोग ?"

शंकर ने कहा, "हाँ ज्योतिदा, उन्हीं लोगों ने किसानों और मजदूरों को भड़काया है। अन्यथा यहाँ उतने अखबार भी नहीं आते हैं, और न किसानों के पास रेडियो या ट्रांजिस्टर ही हैं। उन लोगों ने ही आकर इतने तरह के आन्दोलन छेड़ दिये हैं। जब तक वे अनपढ़ थे तब तक सब-कुछ ठीक-ठाक था···"

"अब वे लोग शिक्षित हो गये हैं ?" मैंने पूछा।

शंकर ने कहा, "बस यहाँ एक स्कूल है, इतना-भर ही। पढ़ता कौन है ?"

"क्यों, कोई पढ़ता क्यों नहीं है ?"

"पढ़ेगा-लिखेगा तो खायेगा कैसे ? पढने-लिखने का जो वक्त है, उसमें मजदूरी करने से दो पैसे मिलते हैं। पढ़कर उन लोगों को क्या फायदा होगा ? पढ़ने से उनका नुकसान ही है।"

"लेकिन अब छोटे-छोटे बच्चों को काम करने नहीं दिया जाता है, वे लोग तो लिख-पढ सकते हैं ?"

"यहाँ छोटे-छोटे बच्चे भी काम करते हैं। सस्ते भी मिल जाते हैं इसलिए कारोबार करनेवाले उन्हें ही काम देते हैं। वैसे लोग ही अब बढ़कर बड़े हो चुके हैं और उनकी समझ में यह बात आ गयी है कि उनसे कम पैसे में मजदूरी कराकर महाजन लोग पैसेवाले हो गये हैं।"

"यह सब समझने की उनमें अकल आ गयी है ?"

"यह सब समझने की अकल नहीं आयी है, लेकिन वामपन्थियों ने उन्हें यह सब समझा-बुझा दिया है। उन्हीं लोगों के चलते मयनाडांगा में इतनी अशान्ति फैली है ज्योतिदा। आज जो यहाँ इतनी हलचल मची हुई है, वह वामपन्थियों की वजह से ही है। वरना यहाँ कांग्रेस कहते ही लोग भक्ति से माथा नवाते थे।"

"तुम लोग उन्हें अच्छी तरह क्यों नहीं समझाते हो ? तुम लोग उन्हें क्यों नहीं समझाते कि चीन और रूस में वोट नामक कोई चीज नहीं है। कांग्रेस ने ही उन्हें वोट देने का अधिकार दिया है।"

ज्योतिर्मय सेन जैसे और अधिक उत्तेजित हो उठे।

"यह तुम्हीं लोगों की गलती है शंकर," उन्होंने कहा, "उन लोगों की

कोई गलती नहीं है। तुम लोगों को समझाना चाहिए कि आजादी पाने के बाद कांग्रेस ने देश के लिए कौन-कौन-सा अच्छा काम किया है। उन्हें क्यों नही समझाते कि पहले करोड़ों रुपये खर्च कर रेल के इंजिन बाहर से मँगाये जाते थे, अब लगभग हर चीज हम लोगों के देश में ही तैयार होती है। और इंजिन ही क्या, बिजली के पखे, सिलाई की मशीन, बल्ब, हीटर—सब-कुछ हमारे कारखानों मे तैयार होते हैं। इसके कारण देश के कितने ही आदमियो को नौकरी मिलती है। अब हम लोग दूसरे देशों पर निर्भर नहीं हैं। यह सब कांग्रेस ने ही किया है। पहले पानी का अभाव था, अब कांग्रेस ने नलकूप लगवा दिये हैं। दामोदर घाटी बाँध बनवाकर लोगों को बाढ़ से राहत दी है।"

शंकर ने कहा, "वे लोग गँवार हैं। दिमाग मे गोबर ही गोबर है।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "नही, गोबर उन लोगो के दिमाग मे नही है, बल्कि तुम लोगों के दिमाग में है। तुम लोग कांग्रेस के सदस्य हो लेकिन तुम लोग उन्हें भली-भाँति समझा नही पाते हो। तुम लोग जनता के बीच ठीक से काम नही कर पाते हो। तुम लोगो की उम्र के जब हम लोग थे, हमने जनता के बीच कितना काम किया है, मालूम है? गाँव-गाँव की सैर करके हम किसानों के साथ पानीदार बासी भात खाते थे। अनेको बार हमे भूखों रह जाना पड़ा है। हम लोग उन्ही के तबके के आदमी बनकर उनसे मिलते-जुलते थे। वे लोग हमें अपनी जमात के आदमी समझते थे। जब-जब जेल जाना पडा है, पुलिस के हाथों से हमने बेहद जुल्म बरदाश्त किये हैं। और तुम लोग···"

ज्योतिर्मय सेन कुछ देर तक शंकर की ओर अपलक ताकते रहे। जैसे चारों ओर वामपन्थियो ने जो तहलका मचा रखा है, उसके लिए एकमात्र शंकर ही जिम्मेदार है।

"हाँ, जिम्मेदार तुम्ही लोग हो," उन्होंने कहा, "तुम लोग केवल नेताओं की खुशामद और खातिर करना जानते हो। उन्हे बीच रुपये पौण्ड की चाय, बड़ी-बड़ी गोड़रा मछली और बढिया शुद्ध घी खिलाने मे व्यस्त रहते हो। क्यों? हमारी सेवा करने से देश की जनता की क्या भलाई होती है? उन लोगो की सेवा में तुम लोग कितना वक्त लगाते हो? तुम लोग मन्त्री बनने के लिए ही कांग्रेस मे आये हो! केवल रुपया कमाने के लिए ही आये हो!"

शंकर माथा झुकाये खड़ा रहा।

"मैं, ज्योतिदा", कुछ देर के बाद उसने कहा, "बचपन से ही कांग्रेस में हूँ।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "मैं तुम्हारी बातें नही कर रहा हूँ, बल्कि सबके बारे मे कह रहा हूँ। कोई संस्था क्या यों ही बरबाद हो जाती है? उसके पीछे बहुत सारे कारण होते है। आज जितने भी शराब की दुकान और मछली के बाँधो के मालिक हैं, वे सब-के-सब हमारे दल मे घुस पड़े हैं, और हम लोग

भी उन्हीं लोगों को मनोनीत कर रहे हैं···"

दीवार की घड़ी एक वार वज उठी—टन् ! ज्योतिर्मय सेन ने देखा, साढ़े-तीन वज चुके हैं। सम्मेलन शुरू होने में अब आधे घण्टे की ही देर है।

उन्होंने फिर से कहना शुरू किया, "तुम अन्यथा मत लेना शंकर। बहुत दुख के कारण ही आज तुमसे यह सब वात कह रहा हूँ। मैंने सोचा था कि यहाँ आकर चुपचाप विश्राम करूँगा। और···और एक इच्छा थी···"

"क्या इच्छा थी ज्योतिदा ?"

ज्योतिर्मय सेन उस वात को दवा गये। कहना चाहते थे, पर कहा नहीं। नही, रहे, जो वात मन के अन्दर है वह मन के अन्दर ही रहे। वे लोग नहीं समझेंगे। उनकी समझ मे कुछ भी नहीं आयेगा। जो आदमी राजनीति मे रहता है उसे सभी गलत ही समझते हैं। मुझमें भी माया-ममता, दया-करुणा रह सकती है, इसकी कोई कल्पना तक नही करेगा। सभी जानते हैं कि आम लोगों से पुजकर मैं आदमी की श्रेणी में नहीं रह गया हूँ। मेरा जैसे कोई व्यक्तिगत जीवन नही है। मैंने विवाह नही किया, सम्पत्ति नहीं वनायी। फिर भी मैं आदमी नही रह गया हूँ। कारण यह है कि मैं शक्ति के शिखर पर विराजमान हूँ। शक्ति के शिखर पर आसीन होने के कारण एक ओर जैसी निरर्थक भक्ति मिलती है, दूसरी ओर वैसी ही अकारण ईर्ष्या। मुझे दोनों ही चीजें प्राप्त हुई हैं। जो नहीं प्राप्त हो सका वह है प्यार। हालांकि प्यार पाने के लिए मेरा मन अभी छटपटा रहा है। मेरी कुरसी इतनी ऊँची हो गयी है कि वहाँ प्यार की पहुँच नहीं हो सकती है। कारण यह है कि ख्याति, अर्थ, प्रतिष्ठा और प्राप्ति मनुष्य को सिर्फ पराया ही वनाती है और ठेल-ठालकर दूर भगा देती है। उसे आदमी के निकट नही लाती है। निकट खींचकर जो लाते हैं वे है प्रीति, प्रेम और सौहार्द। ये चीजें मुझे कब प्राप्त होंगी !

नुटु, आज जब तुमसे भेंट होगी मैं तुम्हें सारी वातें वताऊँगा। तुमने ही पहले-पहल मुझे प्यार किया था। बिना किसी चीज की आशा किये तुमने मुझे प्यार किया था, प्यार करनेवाले प्रथम और अन्तिम व्यक्ति तुम्ही हो। मैं भूला नही हूँ नुटु, कि तुमने मेरी खातिर अपने वैकुण्ठ को कसाई के हाथों वेच दिया था। यह वात जब तक मैं जीवित रहूँगा, नहीं भूलूँगा। यकीन करो नुटु, प्राण रहते मैं नही भूलूँगा।

पहले नुटु डर गया था। उतनी चौड़ी सड़क के किनारे तीनमंजिला मकान देखकर नुटु सहम गया।

"यही तुम्हारा मकान है ?" उसने पूछा।

मैंने कहा, "हाँ ।"

नुटु ने कहा, "तुम लोग इतने बड़े आदमी हो। मयनाडाँगा के बाबुओं से भी बड़े आदमी। तुमने मुझे तो कुछ बताया नहीं था ?"

नुटु गाँव का लड़का था। बढ़िया कपड़े-लत्ते भी नहीं पहने था। हम दोनों ट्रेन से सुबह के वक्त स्यालदा स्टेशन पहुँचे थे। जीवन में नुटु ने कभी कलकत्ता शहर नहीं देखा था। फिर हम लोग पैदल चलते-चलते घर के सामने पहुँचे थे।

मैंने फटे अखबार के टुकड़े को उसके हाथ में थमाकर कहा, "इसे ले जाकर मेरे बाबूजी को दिखाओ। कहना कि आपके लडके को मैं ले आया हूँ। मुझे दस हजार रुपया दीजिए।"

"फिर ? फिर तुम्हारे बाबूजी अगर पूछें कि ज्योति कहाँ है तो मैं क्या करूँ ?"

"फिर मैं वहाँ जाकर उपस्थित हो जाऊँगा। अभी मैं यहीं ठहरता हूँ।"

इतने पर भी नुटु साहस नहीं बटोर सका। फिर वह आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़ने लगा।

"दरवाजे पर पहरा लगा हुआ है", उसने कहा, "दरवान कुछ नहीं कहेगा ?"

मैंने कहा, "मैं जो हूँ। अगर रोकेगा तो मैं कह दूंगा। जाओ।"

मेरी बात से हिम्मत बाँधकर नुटु ने लँगड़ाते-लंगड़ाते सड़क पार की और फाटक के सामने पहुँचा।

मिस्टर सेन साधारण बैरिस्टर नहीं थे। अपनी असाधारणता को अपने मुवक्किलों की अपेक्षा वह स्वयं अधिक जानते थे। जो लोग अपने बड़प्पन के प्रति सजग रहते हैं, उनमें एक प्रकार का सहजात अहंकार रहता है। उसको अहंकार भी कहा जाता है और आत्मविश्वास भी। उनके जो प्रेमी होते हैं, इस भाव की प्रशंसा करते हैं, वे आत्मविश्वास के प्रेमी होते है। लेकिन जो व्यक्ति किसी विषय में सफल होता है, उसके शत्रु भी हुआ करते हैं। शत्रुओं का वही दल उस चीज को अहंकार कहकर उस पर दोष मढ़ता है। यह दृष्टिकोण का अन्तर है। अपने-अपने तर्क की पुष्टि के लिए यह युक्ति पेश करने जैसा है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

मेरे पिताजी के साथ भी यही बात लागू हो सकती है।

और यही कारण है कि वह हर क्षण सतर्क रहा करते थे। ऐसे लोगों को हमेशा एक तरह का डर रहता है। मेरी प्रतिष्ठा, मेरा गौरव सब धूल में मिल जायेगा। इसी कोटि का भय था। भय या सचेतनता उन्हें दूसरे-दूसरे लोगों से

दूर रखे रहते हैं। यही वजह है कि बाहर के आदमी उन्हें गलत समझ बैठते हैं। वे कहते है, मेरी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा।

न केवल बाबूजी के मुवक्किल बल्कि हरिसाधन बाबू भी इसी वजह से मेरे बाबूजी से बातचीत नही करते थे। बाबूजी भी व्यस्त रहने की बहानेबाजी किया करते थे। और इसे बहानेबाजी ही क्यों कहूँ? बाबूजी के पास कामों की कोई कमी तो थी नही।

मेरे बाबूजी उस जमाने के साहब थे। साहब कहने का अर्थ है पूरे साहब। बाबूजी 'स्टेट्समैन' छोड़कर दूसरा समाचार-पत्र नही पढ़ते थे। मैंने घर के अन्दर 'स्टेट्समैन' छोड़कर दूसरे समाचार-पत्र को आते नहीं देखा था।

स्वदेशीपन देखते ही बाबूजी क्रुद्ध हो जाते थे। कोई अगर चन्दा माँगने आता तो उसे बुरी तरह झिड़ककर निकाल देते थे।

"खादी पहनने से तुम्हें क्या फायदा होता है?" वह कहते थे, "देश को आजाद करना है, आजादी हासिल होने से तुम्हें क्या फायदा होगा?"

देश-सेवक कहते, "आप यह क्या कह रहे है? आप देश की आजादी नही चाहते हैं?"

बाबूजी कहते, "नही। ऐसे ही बेहतर हालत में हूँ।"

"जलियाँवाला बाग में ऐसा काण्ड हुआ और आप फिर भी ऐसी बात कह रहे हैं?"

बाबूजी कहते, "स्वाधीन देशो में पुलिस क्या गोली नही चलाती है? कानून तोड़ने पर गोली चलायी जाये तो इसमें कौन-सा अन्याय है? तुम लोग अंग्रेजों पर गोली चलाओगे और वे लोग चुपचाप बैठे रहेंगे? कोई भी सभ्य देश यह बरदाश्त कर सकता है? कोई आदमी यह बरदाश्त कर सकता है?"

बुढ़ापे में बाबूजी को रायबहादुर का खिताब मिला था। ब्रिटिश सरकार की सेवा करने के फलस्वरूप बाबूजी को उससे उचित पुरस्कार मिला था। लेकिन पाने से ही क्या होता है। बाबूजी को बड़ी से बड़ी सजा उनके पुत्र ने दी थी और वह पुत्र मैं था। कभी देश-सेवकों को अपमानित करके बाबूजी ने जो पाप किया था, पुत्र होने के नाते मैंने उनके पापों का प्रायश्चित्त किया था। अच्छा किया या बुरा, मुझे मालूम नही। यह भी मालूम नही कि बाबूजी ने गलत काम किया था या मैंने। बाबूजी जिस जमाने के आदमी थे, जिस परिवेश और वातावरण मे पले थे, उन्ही मे ताल-मेल रखकर वह बड़े हुए थे।

तब मैं छोटा था। बाबूजी ही मेरे लिए सहारा और बाधा दोनों थे। जिसको आदमी सहारा समझे वही अगर बाधा बन जाये तो आदमी के जीवन मे निश्चिन्तता कहाँ रह सकती है? मानविक सम्बन्ध की इस जटिलता पर बहुत-से मनीषियों ने अनेकों ग्रन्थ लिखे हैं। न केवल रक्त के सम्बन्ध पर बल्कि

सामाजिक सम्बन्धों पर भी उन्होंने जो खोज की है, उसका कोई अन्त नहीं। जन्मगत उत्तराधिकार और सामाजिक कर्तव्य—इन दोनों के संघर्ष का क्षेत्र मनुष्य का मन ही है। हर आदमी को जिन्दगी-भर यह लडाई लड़नी पडती है। हो सकता है आदमी की यही नियति हो। इस संघर्ष से बचने के लिए कोई शराब पीकर नशाखोर हो जाता है और कोई संन्यास धारण कर लेता है। इस संघर्ष की यातना को कम करने के लिए बहुत-से आदमी बहुत सारे उपायों का सहारा लेते हैं। इसे ही कामशक्ति का विस्थापन (Libido-displacement) कहते है। यानी कोई विज्ञान, कोई साहित्य और कोई धर्म-कर्म मे डूब जाता है। यह भी एक तरह का पलायन ही है।

बाबूजी के लिए वह पलायन-वृत्ति उनकी जीविका थी। बात ऐसी नहीं थी कि वह बैरिस्टरी को प्यार करते थे। लेकिन वह बैरिस्टरी नही करते तो और क्या करते ?

और रुपया-पैसा ?

रुपया-पैसा तो बहाना मात्र था। उसी बहानेबाजी के भुलावे मे आकर आदमी असम्भव की ओर दौड़ लगाता है, मृत्यु की ओर दौड लगाता है और मन-ही-मन सोचता है कि जीवन की ओर दौड लगा रहा हूँ। जीवन के छद्म-वेश मे मृत्यु ही आदमी को हाथ के इशारे से बुलाती है।

और ताकत ? ताकत भी मृत्यु ही है। ताकत बार-बार आदमी को मृत्यु की दिशा में ठेल दिया करती है। ताकत आदमी से मात्र इतना ही कहती है, 'मेरी तरफ आओ, मैं तुमको शान्ति दूँगी''

शान्ति कहाँ है। शान्ति देनेवाले मालिक को अगर एक बार देख पाता तो उससे पूछता, "तुम्हारे कितने नाम है ? लोग तुम्हे कितने नामों से पुकारते हैं। कोई करुणानिधान कहता है, कोई पतित-पावन और कोई कल्पतरु। लेकिन बाबूजी की किसी इच्छा की तुमने क्या पूर्ति की थी ? या मेरी ही किस आशा को तुमने सफल किया ?"

बाबूजी कहते, "अभी आप जाइए। अभी मिलने का वक्त मेरे पास नही है।"

बाबूजी के पास वक्त नहीं रहता था। या बाबूजी वक्त नही निकाल पाते थे, यही विचारणीय विषय था। जिसके पास वक्त नही रहता है, उसी के पीछे भीड़ उमड़ी रहती है। उस चीज को बाबूजी समझते थे इसीलिए वक्त को संकुचित बनाकर वह उसकी क़ीमत बढाते थे। बाबूजी के वक्त का मोल अशर्फियों से कूता जाता था। सत्रह अशर्फियों से सत्ताईस अशर्फी और सत्ताईस अशर्फियो से चौवन अशर्फी। देश के लोगों के हाथ में जितने ही कम पैसे आते थे, मामले-मुकदमों की उतनी ही भीड लग जाती थी और बाबूजी की अशर्फी की दर उतनी ही बढ़ने लगती थी। न केवल अशर्फी की दर बढती जाती थी

बल्कि सम्मान और पद-मर्यादा में भी उतनी ही वृद्धि होती जाती थी। और पद-मर्यादा जितनी बढ़ती जाती थी, वक्त का भी उन्हें उतना ही अभाव होता जाता था।

फिर भी बाबूजी ने नुट्टु को जो थोड़ा-सा वक्त दिया वह नुट्टु के तौर-तरीके के कारण ही। उतने दरवान, उतने ठाठ-बाट सबको पार करके नुट्टु अन्ततः जो मेरे बाबूजी के पास पहुंच पाया, उसमे मेरी बातों का ही प्रभाव काम कर रहा था।

मैंने उससे कह दिया था, "तुम किसी भी हालत में डरना मत, सीधे बाबूजी के कमरे के अन्दर पहुंच जाना।"

नुट्टु ने ठीक वही काम किया। किसी की बात पर ध्यान दिये बगैर बाबूजी के पैरों पर जाकर गिर पड़ा।

"कौन ? कौन हो तुम ?"

अच्छी तरह अजनबी को देखने के बाद उन्हें लगा कि इसे 'तुम' के बजाय 'तू' कहना चाहिए था।

"हुजूर, आपके लड़के ज्योतिर्मय सेन की खबर लेकर मैं आया हूँ। इस अखबार में आपने विज्ञापन छपवाया था न !"

"देखूं, वह कहाँ है ?"

"वह बाहर सड़क पर खड़ा है।"

और कोई बातचीत नहीं हुई। मिस्टर सेन चिल्ला-चिल्लाकर सभी को पुकारने लगे। रघु, कैलास—हर कोई वहाँ पहुंच गया।

मिस्टर सेन ड्रेसिंग गाउन पहने हुए ही सड़क पर निकल आये। दरवान खड़ा था, वह भी अवाक् रह गया। वह सोच रहा था कि ड्यूटी में चूक हो जाने के कारण उसे ही डाँट-फटकार सुननी पड़ेगी।

मैं तब दूसरे किनारे के प्लेटफार्म पर खड़ा था।

बाबूजी मेरी ओर दौड़कर आये।

"कहाँ था ? इतने दिनों तक तू कहाँ था ?" उन्होंने पूछा।

नुट्टु की ओर इंगित करके कहा, "इन्हीं लोगों के घर पर।"

अब उन्होने नुट्टु को गौर से देखा।

"वह कौन है ?" उन्होने पूछा।

"यह नुट्टु है।" मैंने कहा।

'नुट्टु ? इससे तेरी जान-पहचान कैसे हुई ? इसका घर कहाँ है ?"

"मयनाडांगा में।"

"मयनाडांगा में ? मयनाडांगा कहाँ है ?"

"वर्दवान मे।" मैंने कहा।

"वर्दवान में ? वहाँ किसलिए गया था ?"

"यों ही।"

"यों ही का मतलब ? वहां किसने तुमसे जाने को कहा था ?"

"किसी ने नही कहा था। मैं यों ही चला गया था।"

बाबूजी और कुछ नहीं बोले। मेरा हाथ पकड़कर उन्होंने सड़क पार की और घर के अहाते में घुसे। नुट्टु को साहस ही नही हुआ कि अन्दर आये। वह बाहर ही खड़ा रहा।

मैंने कहा, "वह भी मेरे साथ आयेगा।"

"वह कौन ?"

"नुट्टु।"

"नो, नेवर, किसी भी हालत में नही। वह एक लफंगा है। तुम उसके साथ हिल-मिल नहीं सकते हो।"

बाबूजी ने कैलास से कहा, "जा, उस छोकरे को जाने को कह दे।"

मैंने जिद ठान ली। "नही, वह मेरे साथ ही आयेगा।"

मेरी जिद देखकर बाबूजी पहले अचकचा उठे। जैसे वह अपने लड़के को भी एक क्षण के लिए पहचान नहीं रहे है। जिस बच्चे को जनमते देखा है, जिसकी भलाई के बारे में बहुत-कुछ सोचा है उसी लडके से सम्भवतः इस तरह का व्यवहार पाकर हतप्रभ हो गये। जैसे वह स्वयं से ही पराजित हो गये हैं और स्वयं को भी जैसे एक क्षण के लिए पहचान नहीं पा रहे हैं।

याद है, उस दिन बाबूजी के मन मे मैंने बहुत बड़ी चोट पहुँचाई थी। एक तो रायबहादुर, स्टेट्समैन के पाठक और उस पर अंग्रेजों की ईमानदारी और चरित्र-बल पर अगाध भक्ति। उन्ही का लडका गाँव के एक लड़के के प्रति आकर्पण रखे ? और लड़का भी वैसा कि मैले-कुचैले कपड़ों मे लिपटा एक लँगड़ा आदमी। यह अवश्य ही बुरे लक्षण का सूचक है। यह तो बरबादी की सूचना है।

लेकिन मिस्टर सेन ने जब यह देखा कि उनके पुत्र में भी व्यक्तिगत मत नामक कोई चीज हो सकती है तो उन्हें खुश होना चाहिए था। लडका भी एक दिन बड़ा हो सकता है, यह बात शायद वह कुछ देर के लिए भुला बैठे थे। यह भूलना कोई विचित्र बात नही है। युधिष्ठिर को नरक का दर्शन करना पड़ा था, यह बात हर किसी को याद है लेकिन लोग उनकी सच्चाई, क्षमा, धैर्य, विवेक, वैराग्य, त्याग और तितिक्षा को भुला बैठे हैं। मनुष्य व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण दूसरे मनुष्य का वह पहलू, जिसमें अच्छाई रहती है, भूल ही जाता है।

"ठीक है, आये, मगर वह क्या चाहता है ?"

"आपने जो दस हजार रुपये का इनाम घोषित किया था, वह इसे देना

पड़ेगा।"

"क्यों ?"

"वही मेरी खबर आप तक पहुँचा आया था।"

अबकी सम्भवतः बाबूजी अपने कानून के दाँव-पेंच में स्वयं ही उलझ गये थे। लेकिन आदमी की अदालत में कानून के दाँव-पेंच, उसकी धाराएँ और संशोधन रहने के बावजूद संसार की भी एक अलग अदालत है। उस अदालत का कहना है—मेरा कानून ही कानून है। न उसमें कोई धारा है और न उसका संशोधन ही हो सकता है। उसके लिए उसके पास एक ही व्याख्या है। उस व्याख्या के अन्तर्गत अगर तुम अपराधी हो तो तुम्हें दण्ड भोगना पड़ेगा। चाहे परोक्ष रूप में हो अथवा प्रत्यक्ष रूप में, लेकिन फलाफल तुम्हें भोगना ही पड़ेगा। केवल समय की प्रतीक्षा है। तब बाबूजी के लिए भी उस समय का आगमन नहीं हुआ था। अन्यथा जो फाँसी के मुजरिम को कानून के दाँव-पेंच से साफ बचा लेते थे, वे ही कानून के दाँव-पेंच के शिकंजे में कैसे आ गये!

दरअसल वह वही 'मैं' था।

रामकृष्णदेव ने कहा है, " 'चोर-चोर' खेल में बुढ़िया को पकड़ना पड़ता है। खेल की शुरुआत में ही कोई बुढ़िया को छू देता है तो वह खुश नहीं होता है। ईश्वर की इच्छा है कि खेल कुछ देर तक चले।"

अध्यात्म रामायण के अयोध्याकाण्ड में लिखा है—नारद ने राम से कहा, "राम, तुम अयोध्या में ही बैठे हो, फिर रावण का वध कैसे होगा? तुमने रावण-वध के लिए ही धरा-धाम में अवतार लिया है।"

राम ने कहा, "नारद, समय होने दो, रावण की सुकीर्ति का विनाश होने दो, तब उसके वध का प्रयास किया जायेगा..."

बाबूजी का वही 'मैं' तब जगा हुआ था। पूर्ण मात्रा में मौजूद था। इसीलिए उस समय भी ऊँच-नीच, गरीब-अमीर का भाव उनके मन से दूर नहीं हुआ था। किसी का एकमात्र लड़का भाग जाये तो भी यह भाव नहीं होता है। यहाँ तक कि एकमात्र सन्तान की मृत्यु हो जाये तो भी किसी-किसी के मन से यह भाव दूर नहीं होता है। कोई-कोई आसानी से अस्मिता को त्याग देता है। लाला बाबू ने 'समय बीत रहा है' सुनते ही अस्मिता को त्याग दिया था। तब उन्होंने कहा था, "मारे राम, जिलाये राम! वही राम विद्या और अविद्या दोनों रूप में वर्तमान है। अविद्या की माया से वह मरता है और विद्या की माया से जिलाता है।"

याद है, बहुत दिन पहले जब मैं खादी आश्रम में रहता था, समय मिलते ही रामकृष्ण परमहंस देव का वचनामृत पढ़ा करता था। जब कारावास पहुँचा उस समय भी दूसरी-दूसरी चीजों के साथ 'रामकृष्ण कथामृत' की भी पाँचों

जिल्दों की मैंने माँग की थी।

मेरे साथ जो लोग कारावास में थे वे मेरा कथामृत पढना देखकर चकित हो गये थे।

एक दिन त्रैलोक्यदा ने कहा, "ज्योति, तुम इन पुस्तकों को क्यों पढ़ा करते हो?"

मैंने कहा, "भाईजी, मुझे पढ़ना अच्छा लगता है।"

त्रैलोक्य ने कहा, "लेकिन तुम ठहरे राजनीति के आदमी। यह पुस्तक पढ़ने से तुम्हे क्या लाभ होगा? इससे बेहतर है कि इतिहास और समाजवाद की पुस्तकें पढ़ा करो। मिल बेंथम को पढो, पढने से अपने भविष्य को बनाने के काम में आयेगा।"

मैंने कहा, "वह भी पढ़ता हूँ।"

त्रैलोक्यदा ने कहा, "इस तरह की पुस्तकें मत पढा करो जी। अन्ततः साधु-संन्यासी बन जाओगे और अंग्रेजों से लड नही पाओगे। तब लगेगा कि यह सब माया है…"

और वह कहकहों में डूब गये थे।

लेकिन मैंने पढ़ना बन्द नही किया। मेरी शुरू से ही यही धारणा बनी हुई थी कि अपनी अस्मिता को पहचानने के लिए सिर्फ इतिहास, अर्थशास्त्र या समाजवाद पढ़ने से काम नही चलेगा बल्कि ईसा मसीह, बुद्धदेव और रामकृष्ण को भी पहचानना पडेगा। आदमी के सामने जो सब समस्याएँ हैं, उनके सामने भी ये समस्याएँ थी।

आज जो सवेरे से मैं यहां बैठा हुआ हूँ, बैठे-बैठे मैंने कौन-सा काम किया है? कुछ भी नही। शकर से बातचीत की है, रथीन सिकदार और केस्टो हालदार से बातचीत की है। एस. डी. ओ. मिस्टर राय से भी बातचीत की है। जिसको जो आदेश देना था, दिया है। दूसरों की बातें भी सुनी हैं। सब-कुछ तो मेरी ही बातें हैं। इसी को आत्म-चिन्तन कहते हैं। स्वयं साक्षात्कार करने के लिए ही आत्म-चिन्तन किया जाता है, स्वयं को अनेकों के बीच आस्वादित करना पड़ता है। स्वयं को जानने के बाद ही 'अनेक' को जाना जा सकता है। उस 'अनेक को अपने अन्दर टटोलने के लिए ही मैंने आत्म-चिन्तन किया है।

"ज्योतिदा…"

शंकर की बात सुनकर मै पुनः चेतना में लौट आया।

"आपने बताया था कि आपकी और कोई इच्छा थी।"

"हाँ, इच्छा थी कि यहां के किसानों से थोड़ी बातचीत करूँ।"

शंकर ने कहा, "नही ज्योतिदा, उन लोगों से बातचीत मत करें। किसान अब पहले जैसे नही हैं, अब वे कुछ और ही तरह के हो गये हैं। हो सकता है

कि बातचीत करते-करते आपको अपमानित कर दें।"

"क्यों, अपमानित क्यों करेंगे ?"

"इसलिए कि आप मन्त्री हैं और न केवल मन्त्री, बल्कि मुख्यमन्त्री।"

"मैं मुख्यमन्त्री हूँ, यही क्या मेरा अपराध है ? मैं अगर मुख्यमन्त्री नहीं रहता तो कोई-न-कोई मुख्यमन्त्री रहता ही। कोई तरक्की करे उसी पर उन्हें गुस्सा है ?"

शंकर ने कहा, "नहीं ज्योतिदा, आप उन लोगों से मत मिलें। आखिर क्या से क्या हो जायेगा..."

फिर उसने कहा, "ठहरिए, मैं वहाँ का हाल-चाल देख आता हूँ ?"

और वह कमरे के बाहर चला गया।

नुट्टु तब फटी-फटी आँखों से चारों ओर देख रहा था। जिस-जिस पर उसकी निगाह पड़ती थी, उसे देखते ही वह विस्मय में डूब रहा था। हम लोग इतने बड़े आदमी हैं, नुट्टु ने इसकी कल्पना तक न की थी। इतने नौकर-चाकर, इतने दरवान, इतनी गाड़ियाँ, रेडियो और चमक-दमक जैसे उसकी आँखों में चकाचौंध पैदा करने लगी थी।

सारी चीजों को गौर से देखते हुए उसने कहा, "तुमने मुझे बताया नहीं था ज्योति, कि तुम लोग इतने बड़े आदमी हो। तुम लोग तो मयनाडांगा के बाबू लोगों से भी बड़े हो जी।"

इक्कीस

नुट्टु की दृष्टि में मयनाडांगा के बाबू लोग ही बड़े आदमी थे। कारण यह था कि उसने शहर नहीं देखा था। नुट्टु को यह मालूम नहीं था कि जितने भी बड़े आदमी हैं, शहर में वास ही करते हैं। वास करते हैं और गाँव के लोगों का शोषण करते हैं। शहर और गाँव—दोनों जगह के लोग टैक्स चुकाते हैं। लेकिन जीवन की सारी सुख-सुविधाएँ शहरवाले जीते हैं। गाँव के लोगों के टैक्स के रुपये से शहर-वासियों को अलकतरा की सड़कें, बिजली की बत्ती, अस्पताल, नल का पानी और बहुत सारी चीजें मिलती हैं। दरअसल मुझे बराबर इस बात का अनुभव हुआ है कि अंग्रेजों ने हम लोगों का जितना शोषण किया है उससे कहीं अधिक हम लोगों ने ही अपने गाँवों के निवासियों का शोषण किया है।

ये बातें उस दिन मैं नुट्टु को समझा नहीं सका था और न इन बातों को

समझने की अकल ही मुझमें थी। और अकल होती भी तो नुटु को न तो समझा पाता और न नुटु ही समझ सकता था। तब हरिसाधन बाबू मुझे जो समझाते थे, मैं वही समझा करता था।

लेकिन हरिसाधन बाबू भी उसी जमाने के आदमी थे। वे उस जमाने की पुस्तकें ही पढ़कर पण्डित हुए थे। हम लोगों ने उस जमाने में बाइबिल, गीता, महाभारत, रामायण और उपनिषद् का पाठ किया था। लेकिन इलियट नहीं पढ़ा था। इलियट के कहने के पूर्व हमें नहीं मालूम था कि हम खोखले व्यक्ति (Hollow men) के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में किर्कगार्द और नीत्शे को हमने नजर-अन्दाज कर दिया था। सोचा था, वे पागल हैं। लेकिन सार्त्र ने जब 'नौसिया' और 'नो एक्जिट' लिखा तब हमें लगा बात तो सही है। इरेसमस या वालतेयर ने अपने युग के परिप्रेक्ष्य में जो लिखा था, हम लोगों के युग के परिप्रेक्ष्य में सार्त्र ने भी वही बात कही है।

लेकिन मुझे तब आश्चर्य लगता है जब मैं देखता हूँ कि छोटे-छोटे बच्चे पहले की तरह ही खेलते हैं, हँसते हैं और गीत गाते हैं। एक युवक और एक युवती लेक के किनारे बैठकर पहले की तरह ही एक-दूसरे के अन्तरंग हो जाते हैं। लड़ाई के समय जब बम-विस्फोट से शहर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, उस समय भी मलबे से हरी घास की फुनगी मस्तक ऊँचा कर सूर्य की ओर ताकती है और ताककर मुसकराती है। तब लगता है कि निराश होने का कोई कारण नहीं है। इसी को सम्भवत: 'Theology of Crisis' कहते हैं।

याद है, खादी-आश्रम में बैठकर जब मैं चरखा चलाया करता था, तब मन-प्राणों से विश्वास करता था कि इसी चरखे के द्वारा मनुष्य को स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। लेकिन 'स्वतन्त्र' बड़ा ही अधूरा शब्द है। स्वतन्त्रता का क्या अर्थ है, यह बात तब हमारी समझ में क्या स्पष्टत: आयी थी ? स्वतन्त्रता किसके लिए ? समूची दुनिया के लोगों के लिए ? स्वतन्त्रता किससे ? लेकिन उन्नीस सौ चौदह ईस्वी के अगस्त महीने में अंग्रेजी की क्या कम दुर्दशा हुई ? उन्नीस सौ उनचालीस ईस्वी के सितम्बर की पहली तारीख को क्या कम दुर्दशा हुई ? हमारे प्रभुओं की स्वतन्त्रता की क्या हालत हुई ?

दुनिया के सभी दार्शनिक और चिन्तक आज भय से काँप रहे हैं। उनका कहना है कि आदमी आज यन्त्र युग के जिस छोर पर पहुँच गया है, उसकी रक्षा का कोई भी उपाय नहीं दिख रहा है। कोई ऐसा नहीं है जो उसे जीवित रखे। हम लोगों के सामने केवल पुरानी दुनिया, अतीत का ऐतिह्य और भविष्य की भयावह उद्विग्नता है। अगर हमें जिन्दा रहना है तो इस विपत्ति के बीच ही हमें आनन्द का अन्वेषण करना पड़ेगा। हमें जरथुस्ट्र की तरह ही कहना

पड़ेगा, "Joy is deeper still than heart's grief"[1] या काम की तरह ही 'सिफिलस' को भी सुखी समझना पड़ेगा। और यह भी सोचना पडेगा कि 'The struggle itself, towards the height is enough to fill a man's heart."[2]

शंकर एकाएक कमरे के अन्दर आया।

"देख आया सर, सब ठीक है।" उसने कहा।

ज्योतिर्मय सेन ने पूछा, "सब ठीक है का मतलब ?"

शंकर ने कहा, "एस. डी. ओ. मिस्टर राय ने सारी तैयारियाँ कर रखी हैं।"

"क्या तैयारियाँ की हैं ? साफ-साफ बताओ।"

शंकर ने कहा, "पुलिस तैयार है। लगभग पाँच सौ पुलिसों को सादा लिबास में रखा गया है। बर्दवान जिले के हर कोने से प्रतिनिधि आ गये हैं। हर कैम्प में जासूसों की सूचना देनेवाले रखे गये हैं। खाने-पीने की व्यवस्था देखकर प्रतिनिधिगण बहुत खुश हैं। क्योंकि आप आये हैं और सम्मेलन का उद्घाटन करेंगे इसलिए वे बहुत ही उत्साह का अनुभव कर रहे हैं। आप इसके पहले कभी यहाँ नहीं आये थे···"

"लेकिन वे लोग···विरोधी दल के लोग कहाँ हैं ?"

शंकर ने कहा, "अभी उन लोगों का कोई पता नहीं है। देखिए, अन्त-अन्त तक क्या होता है !"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "और क्या होगा। गड़बड़ी होगी ही।"

"क्या कह रहे हैं सर," शंकर ने कहा, "जो गड़बड़ी करने आयेगा वह जिन्दा नहीं लौट सकता है।"

"यह क्या ! क्या कह रहे हो तुम !"

शंकर ने कहा, "हाँ सर, वैसी ही व्यवस्था की गयी है—सम्मेलन जिससे शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो, उसी की व्यवस्था की गयी है। आप कुछ न सोचें···"

ज्योतिर्मय सेन मुसकराये। "तुम बच्चे हो शंकर। इसीलिए इस तरह की बात कर रहे हो।"

"क्यों सर ? मैंने क्या गलत कहा है ? हम लोगों के हाथ में पुलिस है। हम लोग फिक्र क्यों करें ?"

---

१. आनन्द अब भी हार्दिक पीड़ा से व्यापक है।

२. संघर्ष जब ऊँचाई पर पहुँच जाता है तो वह आदमी के हृदय को परिपूर्ण बनाने के लिए अपने-आपमें काफी है।

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "अंग्रेजों के हाथ में भी सेना थी, पुलिस थी फिर भी वे इस सोने के देश को छोड़कर क्यो चले गये ?"

शंकर इस प्रश्न का कोई उत्तर नही दे सका।

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "ऐसा होना सम्भव नही है क्योंकि सारी दुनिया की शक्ल बदल चुकी है। उन्नीस सौ चौदह ईस्वी में जिस दिन युद्ध छिड़ा उसी दिन से सब-कुछ बदलने लगा है। वह किस तरह बदला है, इसकी तुम कल्पना तक नही कर सकते हो शंकर !"

उन्होने अपना कथन जारी रखा, "खैर, इन बातों को छोड़ो। अब भी एक घण्टे का समय बाकी है। उसके पहले तुम मुझे और एक प्याली चाय दे जाना।"

"अभी ले आया सर, अभी तुरन्त···"

आदेश-पालन की खुशी में वह दौड़ता हुआ अन्दर चला गया।

यह शंकर अभी तक इस बात पर विश्वास करता है कि अगर वह ठीक से मेरी खुशामद करे तो मैं उसे राजा बना दूंगा। राजा अगर न बना सकूं तो कम-से-कम मन्त्री अवश्य बना दूंगा। लेकिन बेचारे को मालूम नही है कि आज मेरा सिंहासन ही हिल-डुल रहा है। न केवल मेरा ही बल्कि दुनिया में जितने भी आदमी कला, साहित्य, दर्शन और राजनीति के उच्च सिंहासन पर आसीन हैं, उनमें से हरेक का सिंहासन आज दुविधा और सन्देह से हिल-डुल रहा है। आज की इस नयी दुनिया में हर वस्तु का मूल्य परिवर्तित हो गया है, इसकी खबर शंकर जैसे लोगों के कानों में नहीं पहुँची है और इसीलिए वह अब भी मेरा सम्मान किये जा रहा है। यही वजह है कि वह मुझे बीस रुपये पाउण्ड की चाय पिला रहा है, भावी मन्त्रीगण गोड़रा मछली भेंट चढा रहे है और स्टेशन का वेण्डर खास किस्म का रसगुल्ला दिखाकर सर्टिफिकेट वसूलना चाहता है।

बहुत दिन पहले दास्तोवस्की की 'ग्रेट इनक्वीजिस्टर' पुस्तक में पढ़ा था, "All that men seeks on earth is someone to worship, some-one to keep his conscience and some means of uniting all in one unanimous and harmonious ant-heap, for the craving for universal unity is the third and last anguish of men. Mankind as a whole has always striven to organise a universal state."[1]

---

१. आदमी की दुनिया मे यही तलाश है कि वह किसी को पूजना चाहता है, किसी को अपने सद्विचार का आधार बनाना चाहता है एवं कुछ ऐसे उपायो की टोह मे रहता है जिससे कि सभी को सर्व-सम्मत एवं शान्तिपूर्ण विश्वबन्धुत्व के सूत्र मे बाँध सके। सार्वभौम एकता की तड़प आदमी की तीसरी और अन्तिम पीड़ा है। समग्र मानव मे हमेशा से एक सार्वभौमिक राज्य की स्थापना की तड़प रही है।

बातें अच्छी लगी थीं। अतः उस दिन उन्हें रेखांकित कर दिया था। दास्तोवस्की उस जमाने का आदमी था। आज उसकी बातों का प्रभाव समाप्त हो चुका है। इसके अतिरिक्त आज जो लोग सिरमौर हैं, वे क्या पहले के सिरमौरों की तरह अपने धर्म का पालन कर रहे हैं? इस जमाने में ऊँच-नीच का भी अर्थ बदल गया है। लेकिन शब्दकोश में वही पुराना अर्थ मिलता है। मूल्य-परिवर्तन हुआ है लेकिन शब्दकोश नहीं बदला है। नये युग के युवाजन देख कुछ और रहे हैं, पढ़ रहे हैं कुछ और ही।

नुट्टु के लिए हमारा मकान एक नया अनुभव था। नल में कहाँ से पानी आता है, बिना दियासलाई के भी बत्ती किस तरह जल जाती है—ये चीजें उसे अपार विस्मय में लाकर छोड़ देती थीं।

एक दिन उसने कहा, "मुझे बड़ी लाज लगती है भाई।"

"क्यों?" मैंने पूछा।

नुट्टु ने कहा, "मेरे घर जाकर तुम्हें कितनी ही तकलीफें झेलनी पड़ी हैं।"

"तकलीफ होती तो मैं खुद चला आता।"

एक दिन उसने पूछा, "तुम लोगों के पास इतने नौकर-चाकर हैं। इन लोगों को तो वेतन देना पड़ता होगा?"

"न दें तो ये लोग काम क्यों करें और खायें ही क्या?"

"महीने में कितना वेतन मिलता है?"

"मालूम नहीं," मैंने कहा, "तब भी हाँ, दस, पन्द्रह या बीस रुपये अवश्य मिलते होंगे।"

नुट्टु चौंक पड़ा। "इतना थोड़ा काम और इसके लिए बीस रुपया वेतन? फिर तो साहा बाबू की आढ़त के केदार बाबू से भी ज्यादा मिलता है जी।"

"यह कलकत्ता शहर है न।" मैंने कहा, "गाँव के बनिस्बत शहर में अधिक वेतन मिलेगा ही।"

नुट्टु ने जैसे कुछ सोचा। "मैं अगर शहर के आदमी के घर में जन्म लेता तो अच्छा होता। कहो, ठीक कह रहा हूँ न? तुम्हारी तरह ऐश-आराम से भात खाता और कोई कुछ नहीं कहता।" नुट्टु ने कहा।

वह एक क्षण चुप रहा और फिर बोला, "तुम पैसा नहीं कमाकर लाते हो, इसके लिए तुम्हारा बाप तुम्हें कुछ भी नहीं कहता है?"

"नहीं।" मैंने कहा।

"तुम अगर एक भेड़ा पाल लो तो तुम्हारे बाबूजी तुम्हें कुछ भी नहीं कहेंगे?"

"नहीं।"

"अगर मोर पालो ?"

"नही, तब भी मुझे कोई कुछ नहीं कहेगा।"

नुटु ने गौर से मेरी ओर देखा। जैसे वह मुझसे ईर्ष्या कर रहा है। या उसे आश्चर्य लग रहा है। या कि वह आनन्दित हो रहा है। "मैं तुम्हारे घर पर बैठा-बैठा जो खा रहा हूँ, इसके लिए भी कोई तुम्हें डांट-फटकार नहीं सुनायेगा ?"

"नही, कोई नही डाँटेगा।"

नुटु ने कहा, "मुझे और कितने दिनों तक ठहरने दोगे ?"

"तुम जब तक ठहरना चाहो।"

नुटु ने कहा, "लेकिन मेरे चलते तुम लोगों का बहुत ज्यादा खर्च हो रहा है।"

"मैंने भी तो तुम्हारा बहुत खर्च कराया है। वह तुम क्यों नही कहते हो ?"

नुटु का चेहरा बड़ा ही दयनीय दिखने लगा। "चल हट, क्या बक रहे हो," उसने कहा, "कितने मोटे चावल का भात रहता था। और वह भी क्या तुम्हें पेट-भर वहाँ खिला पाता था ? इस तरह मांस-मछली-अण्डे खिला पाता था ? तुम्हारी तरह घी खिला सका था ? सन्देश, रसगुल्ला, चाय—कुछ भी दे पाया था ?"

नुटु का चेहरा और भी दयनीय लगने लगा।

मैंने कहा, "तुमने जो मुझे दिया है, वह मैं तुम्हे कहाँ दे पा रहा हूँ ?"

"मैंने क्या दिया है ?"

"तुमने मुझे उतना बडा मैदान, बगीचा और धान के खेत दिये थे। उतनी खुली हुई हवा, मीठा रास्ता, बँसवारी और पक्षी। वह सब क्या मैं तुम्हें दे पा रहा हूँ ? वे चीजे रुपयों से खरीदी नही जा सकती हैं···"

नुटु फटी-फटी आँखों से मेरी ओर ताकता रहा। उसकी समझ में एक बात भी नहीं आयी।

नुटु को मालूम नहीं था कि जो चीजें पैसे से खरीदी जा सकती हैं, उनकी अपेक्षा उन चीजों का मूल्य कही अधिक है जो बिना पैसे के उपलब्ध हैं। अगर उन चीजों को पैसे से खरीदा जा सकता तो जो धनी-मानी हैं वे मांस, मछली, अण्डे, चाँदी-सोना और हीरे की तरह धरती की सारी धूप, सारी हवा, सारा प्रकाश, सम्पूर्ण आकाश और समस्त पक्षियों के गीतों को खरीदकर सेफ डिपाजिट के वोल्ट में बन्द करके रख देते। भाग्य कहिए कि अभी तक ये चीजें ऐसी नही हैं कि खरीदी जा सकें।

खबर मिलते ही हरिसाधन बाबू पढ़ाने आये। उन्होंने सारी बातें मेरे मुँह से सुनी। "तुम बच्चे हो, इसीलिए समझ नहीं सके। जब तक दाँत रहते हैं तब तक कोई उसके महत्त्व को नहीं समझता। इसमें तुम्हारी गलती नहीं है। पिता का सहारा क्या चीज है, इसे तब समझोगे जब बड़े होगे।"

हरिसाधन बाबू को कहने का जो अधिकार था, उन्होंने कहा और मुझे जो सुनना चाहिए था, मैंने भी सुना।

फिर नुट्टु को देखकर उन्होंने नाक-भौंह सिकोड़ी।

"यह कौन है?" उन्होंने पूछा।

मैंने कहा, "यही तो नुट्टु है—मेरा दोस्त, जिसके बारे में आपको कहा था।" हरिसाधन बाबू ने नुट्टु को आपाद-मस्तक देखा—उसका चाल-चलन, हाव-भाव, लँगड़ा पाँव।

फिर उन्होंने नुट्टु से कहा, "तुम अभी दूसरे कमरे में जाओ। ज्योति को पढ़ना है।"

नुट्टु ने सहमकर मेरी ओर ताका। मेरी अनुमति लेकर वह चुपचाप बगल के कमरे में चला गया। हरिसाधन बाबू नुट्टु के लँगड़ाते पैर की ओर एकटक देखते रहे। जब तक वह दिखायी पड़ा तब तक उसकी ओर देखते रहे और फिर उनके चेहरे पर जैसे घृणा की लकीरें उभर आयीं।

उसके बाद मेरी ओर मुड़कर कहा, "इस छोकरे को तुम अपने घर पर क्यों ले आये?"

उनकी बात सुनने में मुझे अच्छी नहीं लगी। मैंने कहा, "यों ही..."

हरिसाधन बाबू फिर भी चुप नहीं रहे। "यों ही का मतलब क्या हुआ?"

"उसे अपने घर पर ले आना मुझे अच्छा लगा।" मैंने कहा।

"लेकिन वह तो एक लफंगा है—अनपढ़, भद्दा और लफंगा। जात का सम्भवतः किसान है..."

मैंने उनकी बात का संशोधन करते हुए कहा, "नहीं सर, किसान नहीं, बल्कि उससे भी निचले दर्जे का है। मजदूर..."

"फिर? मैं तो उसकी शक्ल देखकर ही समझ गया। उससे अब मेल-जोल मत बढ़ाओ। उसे अभी तुरन्त घर से निकल जाने को कहो। कहीं ऐसा न हो कि आराम मिलने की वजह से जाना ही नहीं चाहे। भगाने से भी नहीं भागेगा।"

"नहीं सर," मैंने कहा, "बात ऐसी नहीं है। वह शुरू से ही जाने को तैयार है। इतना आराम उसे अच्छा नहीं लगता है और इसीलिए मैंने उसे

रोक रखा है।"

"क्यों ? रोक क्यों रखा है ? यह मुसीबत टल जाये तो बेहतर। हटाओ, उसे यहाँ से हटाओ। मिस्टर सेन ने कुछ भी नही कहा ?"

"हाँ, कहा है।"

"क्या कहा है ?"

"वही जो आपने कहा। बाबूजी ने भी कहा है—अनपढ, बदशक्ल और लफंगा।"

"मिस्टर सेन ने तो ठीक ही कहा है। कोई गैरवाजिब बात नहीं कही है। वह कहाँ सोता है ?"

"मेरे साथ ही।" मैंने कहा।

"एक ही बिस्तर पर ?"

"हाँ।"

"खाना-पीना कहाँ करता है ? एक ही साथ खाते हो क्या ?"

"हम लोग एक ही मेज पर खाने बैठते है।"

हरिसाधन बाबू ने कहा, "बहुत बुरी बात है, बहुत ही बुरी ! तुम्हें उसे इतना सर पर नही चढ़ाना चाहिए था। तुमने एक बुरी मिसाल पेश की है। इसके बाद अगर उसे जमीन पर नही बिठाकर खिलाओगे तो वह आपत्ति करेगा, विद्रोह करेगा। तब सारी चीजों का बराबर हिस्सा माँगेगा।"

"माँगने दें।"

"क्या कह रहे हो तुम ! वह तुम्हारी चीजों का हिस्सा लेगा। इतने दिनों तक तुम्हें लिखाया-पढ़ाया और तुम्हारी अक्ल का यह नमूना है ? वह और तुम ! एक मजदूर के लड़के से एक बैरिस्टर के लड़के की तुलना कर रहे हो ! आर यू मैड—तुम पागल हो गये हो ?"

आज इतने दिनों के बाद जब उन बातों की याद आ रही है तो हँसने का मन कर रहा है। आधुनिक काल के जिस विष-वृक्ष को आज हम देख रहे हैं उसका पौधा सम्भवतः उसी युग में रोपा गया था। अन्यथा बाबूजी की बात छोड़ ही दें, लेकिन मेरे मास्टर साहब तो हम लोगों की तरह धनी-मानी नहीं थे। फिर उनमें गरीबो के प्रति विद्वेष-भावना क्यों थी ? दरअसल मैने देखा है कि धनी-मानी व्यक्ति गरीबों को बरदाश्त नही कर पाते हैं, साथ-ही-साथ गरीब भी गरीब को बरदाश्त नहीं कर पाते। यानी विकसित देशो से अविकसित देशों का जैसा सम्बन्ध रहता है। जो देश अविकसित है उन्हें हमेशा संघर्ष करना पड़ेगा। वे जिससे विकसित नही हो जायें इसके लिए सहायता करनेवाले देश उन्हें हमेशा दबाकर रखेंगे। उन्हे दो मोर्चों पर लड़ना पड़ेगा : एक मोर्चा है सम्पन्न देश-समूह और दूसरा मोर्चा अविकसित देश-समूह। नुटु जैसे

लोग हमेशा के लिए अविकसित ही रह जायेंगे। बाबूजी वगैरह तो उनके शत्रु हैं ही, हरिसाधन बाबू जैसे लोग भी उनके शत्रु हैं। सचमुच नुट्टू जैसे लोगों के लिए यह कम यातना की बात नहीं है।

उस दिन बाबूजी के कमरे में मैं बिना कहे-सुने अकस्मात् पहुंच गया। बाबूजी मुझे देखकर अचकचाये। इस तरह मैंने कभी उनके चेम्बर में प्रवेश नहीं किया था। मैंने बिना किसी भूमिका के उनसे पूछा, "आप नुट्टू को रुपया कब देंगे?"

"किस चीज का रुपया? नुट्टू कौन है?"

बाबूजी का बाहरी मुखौटा तब भी नहीं उतरा था। सभी बड़े आदमियों के पास एक-एक मुखौटा रहता है। उस मुखौटे को कोई उतारना नहीं चाहता है। और न उतारने का कारण यह है कि उतारते ही उसकी गिनती साधारण लोगों की कोटि में होने लगेगी। जो आदमी साधारण रहता है, वही असाधारण व्यक्ति बनने के लिए मुखौटा लगाये रहता है। लेकिन मैं पुत्र होकर अपने पिता को न पहचान सकूं तो फिर उनका पुत्र हुआ ही क्यों?

मैंने कहा, "आपने लिखा था कि जो मेरा पता लगा देगा उसे आप दस हजार रुपये देंगे।"

बाबूजी को ऊब का अहसास हुआ। अपनी फाइल को देखते हुए वह व्यस्तता का भान करने लगे।

"वह तो खेतिहर का बेटा है," उन्होंने कहा, "दस हजार रुपया लेकर वह क्या करेगा? उसने कभी एक हजार रुपया भी अपनी आंखों से देखा है?"

मैंने कहा, "लेकिन जिसने अपनी आंखों से एक हजार रुपया नहीं देखा उसे आप रुपया नहीं देंगे, यह तो आपने नहीं कहा था।"

यह बात बाबूजी को अदालत के वकील की बात जैसी मालूम पड़ी। उन्होंने कहा, "मैं अगर रुपया न दूं तो वह क्या कर सकता है? मान लो मैं रुपया नहीं देता हूं..."

"लेकिन आपको उसे रुपया देना ही पड़ेगा। आपको मैं वादा-खिलाफी नहीं करने दूंगा।"

"क्यों? मैं अगर उसे रुपया नहीं देता हूं तो तुम्हें सर-दर्द क्यों? तुम उसके कौन होते हो?"

उसी आयु में मेरी अस्मिता सम्भवतः बहुत जाग्रत हो चुकी थी। अन्यथा इतने बड़े दबंग बैरिस्टर के मुंह पर मैं इस तरह की बात क्यों कर पाता? हो सकता है कि इसी वजह से एक दिन मैं ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह कर सका था। उसी आयु में मेरी समझ मे यह बात आ गयी थी कि बाबूजी ब्रिटिश शक्ति के प्रतिनिधि हैं और उसके द्वारा उन्हें रायबहादुर की उपाधि दी गयी है।

उनकी धारणा थी कि अंग्रेज प्रभुओं ने उनकी प्रतिभा पर मुग्ध होकर उन्हे उपाधि से विभूषित किया है। दरअसल बाबूजी को यह मालूम नही था कि उपाधि तो उपाधि, जो कुछ भी भौतिक वस्तुएँ हैं वे यथास्थान तब तक नही पहुँच पाती हैं जब तक आदमी का अहम् हर वस्तु को अपना प्राप्य समझकर उसे ग्रसित करता रहता है।

अचानक मैने कहा, "आप अगर उसे रुपया नहीं देंगे तो मैं दुबारा घर से बाहर चला जाऊँगा।"

और मैं बाबूजी के कमरे से बाहर निकल आया।

मैं ज्यों ही बाहर निकला नुटु लँगड़ाता हुआ मेरे पास आया।

उसने कहा, "क्यों भाई, मेरी खातिर तुम अपने बाबूजी से क्यों झगड़ पड़े? इससे तो बेहतर यही है कि मैं चला जाता हूँ।"

मैंने कहा, "मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगा भाई। मैं भी इस घर में अब नही रहूँगा।"

नुटु ने कहा, "तुम क्यों जाओगे? यह घर, यह मकान, ऐसा आराम छोड़कर चले जाओगे? तुम्हें कौन-सा दुख है?

मैंने कहा, "जहाँ तुम्हारा मान-सम्मान नही, वहाँ मेरे लिए भी ठौर नही है।"

बाईस

"सर!"

ज्योतिर्मय सेन चौंक पड़े। "क्या?"

"चाय बनने में देर हो गयी। आप कुछ अन्यथा न लें।"

"क्या ही आश्चर्य है। मै अन्यथा क्यों लेने लगा!"

शंकर ने कहा, "सब साले चोर हैं। दुनिया मे कोई भला नही है। आपके लिए एक डिब्बा बिस्कुट लाया था। सो भी विलायती बिस्कुट। मैं कलकत्ते के न्यू मार्केट से खरीदकर ले आया था। अवैध तरीके से विदेश से मँगाया हुआ बिस्कुट था। देखा, सालों ने सब खाकर खत्म कर डाला है।"

"लेकिन मैंने तो बिस्कुट नही माँगा था शंकर। मैंने तो सिर्फ चाय की माँग की थी।"

शकर ने कहा, "सिर्फ चाय कहीं दी जाती है भला! लेकिन देखिए तो सही, साले कितने बदमाश हैं कि आपके लिए लाया गया बिस्कुट खाकर खत्म कर दिया। इतने चोरो के गिरोह में रहने से कही काम चल सकता है? मैं

अभी आया।"

और वह आंधी की तरह बाहर चला गया।

शंकर मेरे लिए चाय का इन्तजाम करने के लिए बाहर चला गया। उसमें यह धारणा घर कर गयी है कि वह मेरे लिए जितनी मेहनत करेगा मैं भी उस पर उतना ही प्रसन्न हूंगा। प्यार नामक चीज बेशक अच्छी होती है। श्रद्धा भी अच्छी चीज होती है। इसे दिखाना या प्रकट करना और भी अच्छी चीज है। 'मैं तुम्हें प्यार करता हूं' यह बात मुंह से कहने के बजाय प्यार के प्रमाण में स्वार्थ का त्याग करना और भी अधिक प्रभावोत्पादक होता है। नुटु जो मुझे प्यार करता था, इस बात को उसने अपने मुंह से कभी नहीं कहा। अपने प्यार का प्रमाण उसने स्वार्थ को त्यागकर दिखा दिया था। वैकुण्ठ को वह अत्यधिक प्यार करता था, यह बात हर किसी को मालूम थी। लेकिन जब जरूरत पड़ी तो उसने अपने प्यार की वस्तु को त्यागने में एक क्षण की भी देर न की।

लेकिन मैं शंकर से नुटु की तुलना कर ही क्यों रहा हूं?

आज मैं क्योंकि मुख्यमन्त्री हूं इसीलिए शंकर में इतनी भक्ति उमड़ आयी है। और जब मैं कुछ भी नहीं था तब नुटु ने अपने किस स्वार्थ की सिद्धि के लिए मुझे प्यार किया था?

कारावास में रहकर ज्योतिर्मय सेन ने बहुत सारी पुस्तकें पढ़ डाली थीं। वैष्णव कविता का एक स्थल-विशेष उन्हें बड़ा ही अच्छा लगा था:

आत्मेन्द्रिय प्रीतिइच्छा, कहलाती है काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीतिइच्छा कहलाती प्रेम का नाम॥

कृष्ण-प्रेम ही असली प्रेम है। बाकी प्रेम आत्मरति है।

लेकिन यह कृष्ण ही कौन है?

अर्जुन ने कृष्ण से यही बात एक बार पूछी थी, "तुम कौन हो?"

कृष्ण ने कहा था, "मैं समस्त भूतों में आदि, अन्त और मध्य हूं। आदित्य में मैं विष्णु के रूप में हूं, ज्योतिष्क में सूर्य के रूप में, नक्षत्रों में चन्द्रमा के रूप में, देवताओं में इन्द्र के रूप में, रुद्र में शंकर के रूप में, और वायु में मरीचि के रूप में हूं। मेरे आदि तत्त्वों का ज्ञान देवताओं को भी नहीं है क्योंकि मैं देवताओं का भी आदि कारण हूं..."

यह सब तात्त्विक बातें उस दिन ज्योतिर्मय सेन की समझ में नहीं आयी थीं। हर आदमी क्या हर चीज समझ पाता है? फिर भी अपने मन की खुशी के लिए उन्होंने मन-ही-मन एक अर्थ लगा लिया था कि भारतवर्ष के ऋषियों ने इस ब्रह्माण्ड को और एक नाम दे रखा है और वह नाम है कृष्ण। कृष्ण को यदि पौराणिक व्यक्ति या प्रतीक के रूप में लेने में कोई हानि नहीं है। चाहे

जिस रूप मे ले । वह व्यक्ति-व्यक्ति की अभिरुचि पर निर्भर करता है ।

लेकिन हम लोग सामाजिक प्राणी हैं । हम लोग वह सब समझ नहीं पायेंगे । हम लोगों में आकांक्षा, वासना, ईर्ष्या, क्रोध, दुख, यातना सब-कुछ है । हम लोगों का कारोबार समाज को केन्द्र मानकर चलता है—उस समाज को जिस समाज में हम लोग सृष्टि के प्रारम्भ से संघर्ष करते चले आ रहे हैं । हममें त्याग के प्रति कोई स्पृहा नही है लेकिन भोग के प्रति पूर्ण आसक्ति है । और जब तक यह मौजूद है और जब तक हम इसे जीत नहीं पायेंगे तब तक राजनीति और समाज-नीति के बीच ही हमें सारी समस्याओ के समाधान की तलाश करनी है । जब तक हम जीवित रहेंगे तब तक जीवन की ग्लानि से स्वतन्त्र होने के लिए हर तरह का प्रयत्न करते रहेंगे ।

उस दिन पढ़ाते-पढ़ाते हरिसाधन बाबू ने एकाएक पूछा, "वह छोकरा चला गया ?"

"कौन ? आप किसके बारे में पूछ रहे हैं ?"

"वही ! क्या तो नाम था उस छोकरे का ?"

उन्हें नाम याद नहीं आया । या यों कह सकते हैं कि नाम याद रखना उन्हें अपमानजनक प्रतीत हुआ ।

एक दिन उन्होने कहा, "तुम अभी समझ नही रहे हो ज्योति ! तुम्हारे सर पर वटवृक्ष की छांह है इसलिए तुम निश्चिन्तता और आराम के साथ हो । कितने लड़कों के पास नौकर, दरवान, ड्राइवर और रसोइये हैं ? इतना कुछ रहने पर भी तुम्हारा मन नही भरता है !"

मैंने कहा, "मेरे अकेले का मन भरने से कैसे चलेगा मास्टर साहब !"

हरिसाधन बाबू ने कहा, "लेकिन तुम कितनों का दुख दूर कर पाओगे ?"

मैंने कहा, "संख्या उन्हीं लोगों की अधिक है मास्टर साहब । वे लोग कब तक हमारी गाड़ी, मकान और नौकर-चाकर बरदाश्त करेंगे ? जिस दिन उन लोगो की आँखें खुल जायेंगी उसी दिन आग लगाकर सब-कुछ राख कर देंगे और तभी उन्हें चैन मिलेगा ।"

"तुम अकेले कोशिश करके यह नहीं कर सकते हो," हरिसाधन बाबू ने कहा, "तुम्हारे बाबूजी भी कोशिश करें तो नही कर पायेंगे । इसके लिए तो सरकार है ही ।"

"वह तो विदेशी सरकार है । अंग्रेज तो हमारे अपने नहीं बल्कि पराये हैं ।

"जब मुल्क आजाद होगा तो उस दिन की बात आनेवाले समय पर ही छोड़ दो । अंग्रेजों ने कच्ची गोलियां नहीं खेली हैं । उन लोगों ने इतने दिनों

से यहाँ इतना पैसा लगाया है, उस पैसे को वे बिना वसूल किये छोड़ेंगे ?"

यह एक क्षण तक चुप रहे फिर बोलना शुरू किया, "ग्रौर इसके अलावा ग्रंग्रेजों में खराबी ही क्या है ? वे लोग क्या बुरे हैं ? कितने भले हैं, मालूम है ? बड़े-बड़े कितने ही विद्वानों ने इस देश के बारे में इतिहास लिखा है। हमारे देश के किसी ग्रादमी ने लिखा है ? ग्रंग्रेजों पर लोगों को क्यों इतना गुस्सा है, यह बात मेरी समझ में नहीं ग्राती । यह जो तुम्हारे बाबूजी···"

हरिसाधन बाबू ने निःश्वास लिया ।

फिर उन्होंने कहना शुरू किया, "यह जो तुम्हारे पिताजी हैं, उन्हें रायबहादुर का खिताब मिला है । तुम्हारे बाबूजी में गुण हैं ग्रौर ग्रंग्रेजों ने उस गुण की कद्र की ग्रौर उन्हें रायबहादुर का खिताब दिया । इस देश के ग्रादमी रहते तो देते ? देशी ग्रादमी ग्रपने ग्रात्मीय स्वजनों को देखेंगे या पराये को ?

उस दिन एक ग्रजीब ही घटना घट गयी ।

मैं ग्रौर नुटु तीसरे पहर घर के ग्रांगन में खेल रहे थे । बाबूजी से कहकर नुटु के लिए मैंने नयी कमीज ग्रौर पैण्ट बनवा दिये थे । मेरी कमीज जैसी थी, ठीक उसी तरह की कमीज । एकाएक घर के प्रांगण में एक गाड़ी ग्रायी जिसमें एक महिला बैठी हुई थी ।

मैं हैरान हुग्रा । वह देखने में बड़ी खूबसूरत थी । उसके ठाट-बाट भी देखने लायक थे ।

गाड़ी के ग्राते ही हमारा खेल बन्द हो गया । हमारा ड्राइवर सुखदेव ग्रौर नौकर रघु घबराकर उस ग्रोर दौड़ पड़े ग्रौर वहाँ जाकर ग्रदब से कुछ बातचीत करने लगे । उन लोगों के व्यवहार में ग्रत्यधिक श्रद्धा ग्रौर भय का पुट था ।

उस महिला ने हमारी ग्रोर इंगित करके कुछ पूछताछ की ।

रघु ग्रौर सुखदेव ने भी मुड़कर हमारी ग्रोर देखा ग्रौर उनसे कुछ कहा ।

ग्रौर फिर गाड़ी जिस तरह ग्रायी थी उसी तरह बाहर निकलकर चली गयी । गाड़ी जब चली गयी तो मैंने रघु से पूछा, "वह कौन थीं रघु ?"

रघु को उत्तर देने में दुविधा का ग्रनुभव हुग्रा ।

मैंने दुबारा पूछा, "वह मेरी ग्रोर इशारा करके क्या पूछ रही थी ?"

रघु ने कहा, "वह पूछ रही थी कि मुन्ना कब वापस ग्राया ।"

"वह कौन है ? बाबूजी की मुवक्किल हैं क्या ?"

रघु ने कहा, "नहीं ।"

"फिर कौन हैं ?"

रघु ने उस बात का उत्तर नहीं दिया ग्रौर दूसरी ही बात छेड़ दी । मैं

लेकिन छोड़नेवाला जीव नही था। मेरे किशोर मन में एक तरह का सन्देह जगा। वह अगर मुवक्किल होतीं तो मेरे बारे मे क्यों पूछती ! उस महिला को इसके पहले कभी मैंने नही देखा था। फिर भी मुझे लगा कि मेरे प्रति उनका कौतूहल अस्वाभाविक है।

नुटु इन बातों में अधिक कौतूहल प्रकट नहीं करता था। वह इस मकान में मेरे साथ रहकर जो हर चीज को समान रूप से उपभोग कर रहा था, इसके कारण वह संकुचित बना रहता था। मेरी खाट के कीमती बिस्तर पर लेटने के बाद वह शान्ति से सो नही पाता था। वह दिन-दिन निर्जीव होता जा रहा था जैसे मछली को पानी से बाहर लाकर सूखी जमीन पर रख दिया गया हो।

मैंने एक दिन पूछा, "तुम्हें क्या यहाँ अच्छा नही लगता है ?"

संजीवचन्द्र ने 'पालामौ' पुस्तक में लिखा है, 'वन्य प्राणी वन में सुन्दर लगते हैं और शिशु माता की गोद मे'। नुटु जैसे लोग शहर में बेमानी लगते हैं। सभ्य और भव्य साज-सज्जा और उजले धुले कपडों से नुटु जैसे लोग तालमेल नही बिठा पाते हैं। मैं उसे जितना ही सहज बनने को कहता वह उतना ही संकुचित होता जा रहा था।

एक दिन उसने कहा, "मैं कब मयनाडाँगा लौटकर जाऊँगा भाई ?"

मैंने पूछा, "क्यों, यहाँ तुम्हें अच्छा नही लग रहा है ?"

नुटु ने कहा, "मगर मै यहाँ और कितने दिनों तक रहूँ ?"

मैंने कहा, "हमेशा के लिए। जब तक मैं इस घर में रहूँगा तब तक।"

"वे लोग अगर कुछ कहें ?"

"कौन क्या कहेगा ?"

"तुम्हारे घर के नौकर-चाकर सभी मुझसे पूछते रहते हैं।"

"क्या पूछते हैं ?"

"यही कि मैं यहाँ से कब जाऊँगा।"

मुझे बड़ा ही गुस्सा हो आया। "तुमसे किसने यह बात कही है, बताओ," मैंने कहा, 'मैं फौरन उसे बुलाकर डाँटूँगा। मैं उसकी नौकरी ले लूँगा। किसमें इतनी हिम्मत है कि तुमसे यह कहे ! बताओ, किसने तुमसे कहा है। उसका नाम बताओ।"

नुटु बेहद शर्म से गड़ गया। एक तो वह इस घर में अवांछित तत्त्व है और उस पर नौकरों की शिकायत की है। यह उसे अच्छा न लगा। शिक्षा-दीक्षा न रहने से क्या होता है, आत्म-सम्मान का बोध अनेकों में सम्भवतः जन्मजात रहता है। यही आत्म-सम्मान का बोध आदमी को आदमी बनाता है। उसने किसी भी हालत में किसी आदमी का नाम नही लिया। बाबूजी के जितने कर्मचारी थे—नौकर-चाकर, नौकरानी, ड्राइवर, दरबान, रसोइया—सबको मैंने

अपने कमरे के अन्दर बुलाया।

उन सबो को सम्बोधित करके मैंने कहा, "देखो, नुटु मेरा दोस्त है। जो कोई इसके प्रति असम्मान का भाव दिखायेगा, उसे मैं घर से निकाल दूंगा। बाबूजी से कहकर उसकी नौकरी ले लूंगा। उसमें और मुझमें कोई फर्क नही है। इस पर नजर पड़ते ही आज से तुम लोग इसे सलाम करोगे।"

नुटु की आँखों में आँसू आ गये। "नही ज्योति, नहीं," उसने कहा, "तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, मैं उन लोगों से सलामी नही ले पाऊँगा। मैं भैया, गरीब आदमी का लड़का हूँ—उन लोगों से भी गरीब आदमी का लड़का। मुझे बेहद शर्म महसूस होगी।"

मैंने कहा, "तुम चुप रहो।"

बचपन से ही मुझमे एक प्रकार की जिद आ गयी थी। मुझे केवल यही लगता था कि गरीब व्यक्तियों को ओछी निगाह से देखने से एक दिन हम भी उनकी निगाहों में गिर जायेंगे।

एक दिन मास्टर साहब से भी मैंने यही बात कही थी।

हरिसाधन बाबू ने कहा था, "मैं गरीबों को ओछी निगाह से देखता हूँ, यह बात तुमसे किसने कही ? मैने तुम्हे रवीन्द्रनाथ की कविता नही पढ़ाई है : 'हे दुर्भागा देश किया जिसका तुमने अपमान / अपमानों में उनके होना होगा तुम्हें समान'।"

मैंने कहा था, "फिर आप नुटु को क्यों बरदाश्त नही कर पाते हैं ? उसने कौन-सी गलती की है ? वह गरीब का लड़का है, यही न ! वह लँगड़ा है इसीलिए न !"

हरिसाधन बाबू मेरी बात सुनकर शुरू मे सकते में आ गये। उनसे कुछ उत्तर देते न बना। फिर उन्होंने स्वयं को सँभालकर कहा था, "मैंने तो तुमसे यह बात नही कही थी। मैंने तो यही कहा था कि एक गरीब को घर पर लाने से ही तुम गरीबों की कितनी भलाई कर पाओगे ? इसके लिए सरकार है, निर्धन-भण्डार है, सरकार के द्वारा बनाया गया अस्पताल है। वहाँ इसे भर्ती करा दो। मालूम है, इस कलकत्ता शहर में चालीस हजार आदमी फुटपाथ पर सोकर रात गुजारते हैं और पन्द्रह हजार आदमी भीख पर गुजारा करते हैं।"

"फिर उन लोगों की क्या हालत होगी ?"

तुम अकेले कितने लोगों की दुर्दशा दूर कर पाओगे ? यह काम तुम्हारे अकेले के बूते का नहीं है। इसीलिए तो सरकार टैक्स वसूलती है—इनकम-टैक्स की शुरुआत इसी काम के लिए हुई है।"

मैंने कहा, "सरकार अपने कर्तव्य का पालन कर रही है लेकिन मैं अगर अपना कर्तव्य न करूँ तो कौन करेगा ?"

हरिसाधन बाबू को क्रोध हो आया। उन्होंने कहा, "जो मालूम नही है उस पर तर्क मत करो। तुम बच्चे हो, बच्चे की तरह ही रहो। अभी अपनी पढाई पर ही ध्यान दो।"

हरिसाधन बाबू अन्त मे मुझ पर बहुत ही झल्ला उठते थे। वजह या बेवजह तीखी बातें बोलने लगते थे। "दानव-वंश में ऐसा प्रह्लाद जनमेगा, यह मालूम नही था!"

बुरे लड़कों से जिससे न मिलूँ, इसके लिए बाबूजी ने क्या कम कोशिश की थी? यहाँ तक कि मुझे स्कूल भी इसीलिए न भेजते थे कि कही मै स्कूल के लड़कों की कुसंगति में पड़कर खराब रास्ते पर न चला जाऊँ। लेकिन रोग का यह लक्षण कहाँ से आ गया, यह बात बाबूजी को भी मालूम नही थी। मास्टर साहब को भी इसका कुछ पता नहीं था।

उस दिन हरिसाधन बाबू पिताजी के पास पहुँचे। "आपसे एक बात कहने आया था···"

"कहिए।"

"मैं ज्योति के बारे मे कहने आया हूँ। जानते है, आजकल ज्योति बड़ा अशिष्ट हो गया है···"

काम करते-करते बाबूजी ने कहा, "यही वजह है कि आपको रखा गया है।"

हरिसाधन बाबू ने कहा, "आपको कहकर रखना ही ठीक होगा। कही से एक किसान के बेटे को उठाकर ले आया है और वह इसे खराब रास्ते पर ले जा रहा है। मेरी बात तक नही सुनता है।"

"आपकी बात जिससे सुने, इसीलिए आपको रखा गया है।"

"आप तक बात पहुँचा देना मैंने उचित समझा, इसीलिए कह रहा हूँ। पहले वह ऐसा नही था। तब मैं जो कहता था, वही करता था। आप उस लड़के को यहाँ से निकाल दें। फिर सब ठीक हो जायेगा।"

मिस्टर सेन ने एक क्षण के लिए कुछ सोचा, फिर कहा, "आप उसे भगा नही सकते हैं?"

"आप अनुमति दें तो जरूर भगा सकता हूँ।"

"ठीक है, भगा दें, मुझे कोई आपत्ति नही है।"

हरिसाधन बाबू को अब साहस हुआ। "ठीक है, आपसे अनुमति मिल गयी। अब मेरे लिए डरने की कोई बात नहीं है।"

तब मैं समझता नही था लेकिन अब समझ रहा हूँ। वह युग सम्भवतः यह सब समझने का था भी नहीं। मनुष्यों की भलाई के बारे मे मनुष्य ने जितना सोचा है, उतना और किसी भी चीज पर नही सोचा है। उस युग मे हरिसाधन बाबू जैसे लोग यह बात नहीं समझ पाते थे कि किसी व्यक्ति के पड़ोस में अगर

अशान्ति रहेगी तो एक न एक दिन उस व्यक्ति की शान्ति में भी वाधा पड़ेगी। जिसे हम भूख, दरिद्रता, निरक्षरता, शोषण और वेकारी कहते हैं—ये चीजें जब तक इस दुनिया में मौजूद हैं तब तक दुनिया में शान्ति आ ही नहीं सकती है। इसीलिए डेनिलो डोलची ने कहा है—"Under privilege is a source of conflict."[1]

मानव इतिहास की इस अशान्ति के उत्स की तलाश में आदमी धीरे-धीरे सामाजिक व्यवस्था को बदलने का प्रयत्न कर रहा है—यहाँ तक कि चुपचाप शब्दकोश में परिवर्तन ला रहा है। देखते-देखते अंग्रेजी शब्दकोश के कितने ही शब्द बदल गये। पहले जिसे 'कमाण्ड' कहा जाता था उसे अब 'का-डिनेशन' कहते है। पहले शब्द था 'पावर' अब उसे 'रेसपान्सविलिटी' कहा जाता है। इस तरह 'ओवे' शब्द 'कानसेण्ट', 'मेरिट', 'कैपेबिल्टी', 'पनिशमेण्ट', 'ट्रिटमेण्ट' और 'राइट्स', 'एफेक्टिव कैपेसिटी' हो गया है। 'एक्सप्लाइटेशन' शब्द अब 'फुलफिटमेण्ट' हो गया है। पहले जिसे 'अण्डरडेवड' कहा जाता था उसे अब 'डेवलपिंग' कहा जाता है। बंगालियों के बहुत-से घरों में अब महरी को महरी कहना प्रचलित नहीं है वल्कि उसे 'लड़की' कहा जाता है और नौकर के बदले 'लोग' का व्यवहार होने लगा है।

यह आखिर हुआ क्यों ?

बहुत छले जाने के बाद, अजस्र रक्तपात करने के बाद, इतिहास की अनेकानेक उन्नति-अवनति के बीच समाज में समन्वय की स्थापना की जाती है। फिर भी कहीं-न-कहीं कोई गलती रह ही जाती है। और उसी गलती को सुधारने के लिए किसी दिन ईसा मसीह जैसे लोगों की हत्या की जाती है और सुकरात जैसे लोगों को जहर दिया जाता है।

और समस्याएँ तो रात-दिन एक के बाद दूसरी खड़ी हो ही जाती हैं। मेरे पहले लार्ड कार्ल माइकेल जब बंगाल का गवर्नर था, तब ऐसी समस्याएँ नहीं थी। पहले से अगर मालूम हो जाये कि कौन-सी समस्या कब उठ खड़ी होगी तो उसके निदान की व्यवस्था भी पहले से ही की जा सकती है।

उस दिन मुझे एकान्त में पाकर नुटु ने फुसफुसाकर मुझसे पूछा, "क्यों, तुम्हारे मास्टर साहब तुमसे क्या कह रहे थे ?

उस प्रसंग को दबा देने के खयाल से मैंने कहा, "कुछ नहीं।"

"शायद मेरे बारे में कुछ कह रहे थे।"

मैंने कहा, "हाँ, लेकिन कोई जरूरत नहीं है कि तुम यह सब सुनो। मैं जब तक तुम्हारे साथ हूँ तुम्हारे लिए डरने की कोई बात नहीं है। तुम कोई फिक्र मत करना..."

---

१. अर्थविशेषाधिकार झगड़े का मूल कारण होता है।

उस रात मेरी आँखों में नीद आयी ही नहीं। मै आँख मूंदे चुपचाप पडा रहा। मुझे अपने बाबूजी पर गुस्सा आ रहा था। अपने घर में ही मुझे कोई अधिकार नहीं। यह मैं क्योंकर बरदाश्त करूँ ?

हमने जो बगावत की थी, उसकी याद आज भी आती है। केवल मैंने ही विद्रोह नही किया था बल्कि नुटु भी मयनाडाँगा में अपने बाप के अत्याचारों के खिलाफ रात-दिन विद्रोह किया करता था। शायद उन दिनों हर लड़के की यही हालत थी। हम लोग जब अपने-अपने पिता के अत्याचारों से ऊबकर स्वतन्त्रता की तलाश कर रहे थे, गाधीजी ने भी स्कूल-कॉलेज, कचहरी-अदालत छोड़कर बाहर आने का आदेश दिया। और घर से निकलकर गाधीजी की पुकार मानने का अर्थ ही था जेल के सीखचों में बन्द होना।

जेल भी तब हम लोगो के लिए स्वर्ग के समान था। उन दिनों कितनो ने देश को आजाद करने के खयाल से स्कूल-कॉलेज छोड़े थे, मालूम नही, लेकिन हम लोगों में से बहुतों को माँ-बाप के अत्याचार से मुक्ति मिली थी। तब घर हम लोगों के लिए नरक के बराबर था। घर में रहने का अर्थ ही था डाँट-डपट सहना, बहुत सारी जिम्मेदारियाँ ढोना और परीक्षा मे पास होने का झमेला। उनके बनिस्बत जेल कही अच्छा था। वहाँ न तो परीक्षा मे पास होने की जिम्मेदारी थी और न कोई ऐसी समस्या ही कि कल क्या खाना मिलेगा!

बाबूजी के प्रति घृणा न रहने का कोई कारण नहीं था। मेरे लिए यह जैसे एक आविष्कार था।

रघु को उस दिन पुकारा और पूछा, "उस दिन गाड़ी से कौन आयी थी?"

रघु समझ गया लेकिन उसने न समझने का बहाना किया।

मैंने कहा, "कहो, तुम्हें कहना ही पड़ेगा।"

रघु ने एक बार चारों ओर निगाह दौड़ायी और जब वह निश्चिन्त हो गया तो उसने कहा, "तुम्हारी माँ···"

"मेरी माँ ? मेरी माँ तो मर चुकी हैं।"

रघु अब बात दबाकर रख नही सका। वह हँस दिया। "तुम्हारी नयी अम्मा थी।"

फिर भी बात मेरी समझ में नही आयी। "बाबूजी ने फिर से कब शादी की ?" मैंने पूछा।

रघु ने कहा, "शादी नही की, यों ही···"

मैंने रघु से इससे ज्यादा कुछ नहीं पूछा। रघु जब वहाँ से हटा तो उसकी

जान में जान आयी। घर के प्रति मुझमें जो आकर्षण बाकी था वह भी खत्म हो गया।

उसी दिन से मेरा तृतीय नेत्र जैसे खुल गया। मैंने दीन-दुनिया को समझना सीख लिया। स्वयं को भी पहचानने लगा। उसी दिन मैंने निर्णय किया कि किसी महान् कार्य के लिए स्वयं को विसर्जित कर दूँगा।

उस दिन लेटे-लेटे मैं यही सब बातें सोच रहा था। यह गृहस्थी जैसे बाबूजी के लिए नहीं है, उसी तरह मेरे लिए भी नहीं है। जैसे बाबूजी की एक अलग गृहस्थी है, उसी तरह मेरे लिए भी एक बाहरी दुनिया है। क्या ही आश्चर्य है! श्रीमद्भागवत के एकादश अध्याय में अर्जुन ने भगवान् से कहा है :

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत् त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम॥

—यानी तुमने मेरे प्रति अनुग्रह करके जिस नितान्त गोपनीय तत्त्व का वर्णन किया, उससे मेरा मोह दूर हो गया।

उस दिन तीसरे पहर आँगन में गाड़ी में बैठी हुई उस महिला पर दृष्टि न पड़ती तो मेरा मोह क्या दूर होता? मैं किसी दिन शराब की दुकान पर धरना धरता? उस दिन मैं जेल गया था अतः मेरे गुणगान का कोई अन्त नहीं है। लोग कहते हैं, मैंने बहुत स्वार्थ-त्याग किया है। अपने धनी-मानी पिता की एक-मात्र सन्तान होने के बावजूद मैं कांग्रेस के प्रति प्रतिबद्ध रहा। इसका पुरस्कार भी देश ने मुझे दिया है। लेकिन दरअसल मैं कौन हूँ? मैंने स्वार्थ-त्याग किया है या स्वार्थ-सिद्धि? इनमें से मैंने कौन-सा काम किया है?

चौबीस

अचानक मुझे लगा कि नुटु मेरी बगल से उठकर चुपचाप बैठ गया। मेरी ओर उसने गौर से देखा और मुझे गहरी नींद में खोया हुआ समझा। फिर वह चुपचाप बिछावन से नीचे उतरा और कमरे के दरवाजे के पास जाकर छिटकिनी इस तरह खोली कि कोई आवाज न हो।

उसका काम देखकर मैं हैरत में आ गया। यह क्या, वह कहाँ जा रहा है? वह चोर की तरह बाहर क्यों जा रहा है?

नुटु बाहर के बरामदे से होता हुआ जीने से उतर पड़ा और फाटक की ओर जाने लगा।

मैं दबे पाँवों उसके पीछे-पीछे जा रहा था।

वह आगे-आगे जा रहा था और मैं पीछे-पीछे।

वह सदर फाटक पर पहुँचा।

देखा, सदर फाटक के दरबान ने नुटु को देखते ही चुपचाप फाटक खोल दिया। मैं और भी अधिक आश्चर्य मे डूबने-उतरने लगा।

और फिर नुटु सडक पर आकर आँखों से ओझल हो गया।

मैं अब अपने को रोक नहीं सका। मैं दौड़ता हुआ सड़क पर आया और जोर-जोर से पुकारने लगा, "नुटु, नुटु···"

मेरी आवाज सुनते ही नुटु ने दौड़ना शुरू किया। लेकिन लँगड़े पाँवों से वह दौड़ ही कितनी दूर सकता था? मुझसे रुकना मुश्किल था।

मैने उसके पास पहुँचकर ज्यों ही उसे पकड़ा कि वह अपराधी की तरह रोने लगा।

"तुम कहाँ जा रहे हो?"

नुटु ने कुछ जवाब नही दिया।

"तुम जा क्यों रहे थे, बताओ?" मैंने कहा।

नुटु ने कहा, "मुझे छोड़ दो ज्योति भाई, मैं चला जाना···"

"क्यों, तुम्हें क्या हुआ? यहाँ तुम्हें कौन-सी तकलीफ हो रही है? मुझे बिना बताये तुम क्यों जा रहे हो?"

नुटु रोने लगा। इसके पहले मैंने नुटु को कभी रोते नहीं देखा था। उसने रोते-रोते कहा, "मास्टर साहब ने मुझे डराया-धमकाया है···"

"डराया-धमकाया है?"

"हाँ, कहा है कि यहाँ से अगर मैं नही जाऊँगा तो वह मुझे मार डालेंगे। मुझे पुलिस के हवाले कर देंगे।"

"तुम मास्टर साहव की बात पर क्यों जा रहे थे? मास्टर साहव इस घर के कौन होते हैं?"

नुटु का चेहरा उस आधी रात में बहुत उतरा हुआ-सा लगा। उसने अपनी जेब से दस रुपये का एक नोट बाहर निकालकर मुझे दिखाया।

"यह नोट कहाँ से आया? किसका है? तुम्हे किसने दिया?"

नुटु ने कहा, "तुम्हारे मास्टर साहव ने।"

पच्चीस

मैं नुटु को पकड़कर घर ले आया। लँगड़े पाँवों खड़ा वह थर-थर काँप रहा था। जैसे वह मुझसे डर गया था। मैं तो मैं था लेकिन जिस 'मैं' ने उसे अपना बना लिया था उस 'मैं' पर से भी जैसे उसका विश्वास उठ गया था।

ऐसा ही होता है।

मैंने सोचकर देखा है, उस दिन नुटु की कोई गलती न थी। हम लोग भी क्या सदैव अपने पर विश्वास करते हैं? विश्वास का भी एक स्तर होता है। पूरा विश्वास, आधा विश्वास और चौथाई विश्वास। स्वयं पर अगर पूरा विश्वास कर पाते तो हम स्वतन्त्र हो जाते। पूरे विश्वास की बात छोड़ ही दें, चौथाई का चौथाई विश्वास भी हम हर वक्त रख पाते हैं? मैं क्या कह सकता हूँ कि मेरे 'मैं' पर मुझे चवन्नी-भर विश्वास है? जो यह कहता है वह दरअसल अहंकार प्रदर्शित करता है। इस अहंकार और विश्वास मे जमीन-आसमान का फासला है। अहंकार कभी-कभी विश्वास का छद्मवेश धारण कर हमें ठगता है। इसलिए हमें बड़ा ही सतर्क रहना पड़ता है कि मिथ्या विश्वास कहीं हमें बुरे रास्ते पर न पहुँचा दे।

नुटु की ठीक वैसी ही हालत थी।

नुटु ने कहा, "मुझे छोड़ दो भाई। मैं अब तुम लोगों के घर मे नही रहूँगा···"

मैंने पूछा, "क्यों नही रहोगे? मैं जब तक हूँ तब तक तुम्हारे लिए डर की क्या बात है? तुम मुझ पर भी विश्वास नही करते हो? मुझे भी तुम पराया समझते हो? इतने दिनों से हिल-मिलकर भी तुम मुझे पहचान नही सके?"

नुटु ने कहा, "तुम और मैं एक नही हैं भाई। तुम अलग हो···"

"अलग किस बात में?"

नुटु ने कहा, "मैं गरीब हूँ, मैं लँगड़ा हूँ···"

उसकी आँखों से तब टपटप कर आँसू की बूँदें चू रही थी। मुझे लगा कि मेरी ही एक सत्ता नुटु का रूप धारण कर मेरे सामने खड़ी है और रो रही है। एक 'मैं' में ही अनेक 'मैं' का वास रहता है। अनेक के संयोग से ही तो एक होता है। और उस एक का ही अर्थ है 'मैं'—यानी अहं।

दुर्वासा मुनि ने कण्व मुनि के आश्रम मे आकर कहा था, "अयं अहम् भो···"

एक 'मैं' प्रश्न पूछता है और दूसरा 'मैं' उस प्रश्न का उत्तर देता है। बंकिमचन्द्र के उपन्यास मे सुमति और कुमति जिस तरह एक ही हैं, उसी तरह मैं भी एक है दो नही। कभी-कभी एक ही 'मैं' अनेक 'मैं' हो जाता है। अनेक 'मैं' जुड़कर एक 'मैं' हो जाता है और वही 'मैं' मुझको, तुमको, सभी को भूत, भविष्यत् और वर्तमान में प्रसारित्त करके महाकाल की ओर परिचालित करता है।

मैंने उस दिन और विलम्ब नही किया। सवेरे नीद टूटते ही नुटु को लेकर बाबूजी के चेम्बर में पहुँचा। बाबूजी प्रातःकाल ही सोकर उठने के अभ्यस्त थे। वह हम दोनों को एकसाथ देखकर अवाक् हो गये।

दरअसल वावूजी को मालूम नहीं था कि नुट्टु मेरा 'मैं' ही है।

वावूजी ने पूछा, "तुम्हे क्या चाहिए ?"

मैंने कहा, "आप मुझे रुपया क्यों नहीं दे रहे हैं ?"

वावूजी ने पूछा, "इसे लेकर क्यों आये हो ?"

"यह नुट्टु है।" मैंने कहा।

वावूजी ने कहा, "तुममे क्या बुद्धि नाम की चीज नहीं है ? इतना लिखने-पढ़ने के वावजूद तुममें यही अकल आयी है ? तुमको लिखाने-पढ़ाने का यही नतीजा हुआ ?"

मैंने कहा, "लिख-पढ़कर मैंने यही सीखा है कि कभी झूठ नही बोलना चाहिए।"

"ह्वाट ? तुम क्या कहना चाहते हो कि मैं झूठ बोलता हूँ ? एम आई ए लायर ?"

मैंने कहा, "आपने अपने वचन का पालन नहीं किया। आप वचन का पालन न करें इसका अर्थ है कि आप जवान देकर मुकर रहे है। यह आपको मालूम नही है ?"

वावूजी को सुवह के वक्त ही ज्यादा काम रहता था। सारा दिन कचहरी में काम करने के वाद घर आया करते थे और तभी मुवक्किलों का आना-जाना शुरू होता था। रात के जव दस बज जाते तो लोग अपने-अपने घर लौट जाते थे। फिर वावूजी ब्रिफ-केश में डूब जाया करते थे। कौन धोखा देकर जायदाद हथियाना चाहता है, कौन किसके नाम से जायदाद खरीदकर अपना दखल जमाना चाहता है, कौन भाई-बहन पैतृक सम्पत्ति के लिए आपस में मामला-मुकदमा कर रहें हैं—इन्ही सारी बातों के परामर्शदाता मेरे पिताजी थे जो विशुद्ध कूटनीति, कौशल और चालाकी में पूर्ण निपुण थे।

वावूजी कहा करते थे, "ईमानदारी या वेईमानी नाम की कोई चीज नही है। मैं कानून को मानता हूँ। 'Law is respects of persons.' कानून के सामने न कोई बड़ा होता है और न कोई छोटा, न कोई गरीव और न कोई अमीर। कुछ भी नही।"

वावूजी और एक वात कहा करते थे, "अंग्रेजों ने हिन्दुस्तानियों को तीन चीजें दी हैं और इसके लिए हिन्दुस्तानियों को उनका अहसानमन्द होना चाहिए।"

हरिसाधन वावू पूछते, "वे चीजें क्या-क्या हैं ?"

"नम्वर एक है अंग्रेजी साहित्य—दुनिया में सबसे वेहतरीन साहित्य। नम्वर दो क्रिकेट—लार्ड लोगों का खेल। लेकिन सबसे कीमती चीज क्या है बताइए तो सही ?"

हरिसाधन बाबू ने भी अंग्रेजी साहित्य में फर्स्ट डिवीजन में एम. ए. किया था। ढूंढ़ने पर उन्हें उत्तर नहीं मिलता था।

बाबूजी कहते, "इण्डियन पैनल कोड।"

दुनिया में बाबूजी जिसे सबसे अधिक श्रद्धा की दृष्टि से देखा करते थे, वह न तो उनके पिताजी थे, न स्वर्गगता माँ ही, न रामकृष्ण परमहंस देव और न स्वामी विवेकानन्द और न शिव, ईसा मसीह और तथागत बुद्धदेव ही। वह था हाईकोर्ट का चीफ जस्टिस, जितने भी चीफ जस्टिस हो चुके थे, बाबूजी के पुस्तकालय में उन लोगों की फोटो टँगी थीं। बाबूजी की धारणा थी, हो सकता है, पृथ्वी, चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्र भी एक दिन सूर्य की परिक्रमा करने में गलती कर सकते हैं, सूर्य भी किसी दिन पूर्व दिशा के आकाश में उगने में देर कर सकता है, भूकम्प होने से पल-भर की गलती से पृथ्वी भी ध्वस्त हो सकती है लेकिन हाईकोर्ट का जज कभी गलती नहीं कर सकता है। सम्राट् सीजर की पत्नी की तरह जज समस्त भूल-त्रुटि, पदस्खलन और सन्देह से परे है।

इस तरह की हाईकोर्ट के प्रति भक्ति शायद मेरे विधि-मन्त्री में भी नहीं है। दिल्ली के विधि-मन्त्री भी सम्भवतः उच्च-न्यायालय के प्रति इतनी भक्ति नहीं रखते है। जजों के प्रति भक्ति रखने के कारण ही सम्भवतः बाबूजी रायबहादुर हुए थे। और मजे की बात यह है कि इण्डियन पैनल कोड ने ही उस पिता के पुत्र को दो वर्ष के कारावास की सजा दी।

याद है, जिस दिन मैं जेल के अन्दर गया, उस दिन हजारों आदमी मुझे अभिनन्दित करने के लिए चिल्ला पड़े थे—'वन्दे मातरम्।'

फिर दो वर्षों के बाद जब मैं रिहा हुआ, उस दिन भी हजारों आदमियों ने चिल्ला-चिल्लाकर नारा लगाया था—'वन्दे मातरम्'।

वही वन्दे मातरम् एक दिन 'जयहिन्द' बन गया।

'जयहिन्द' शब्द में कितना जोश भरा था। 'जयहिन्द' कहते ही लोग पागल हो जाते थे। जो जयहिन्द कहता था उसे ही हम कन्धे पर बिठा लेते थे। हर पार्क में सभा होती थी और सभा का अन्त जयहिन्द नारा लगाने के बाद होता था। भाषण का भी अन्त 'जयहिन्द' शब्द के साथ होता था।

लेकिन आदमी सम्भवतः हमेशा से ही बूढ़ों का प्रतिपक्ष रहा है। पुरातन को वह बरदाश्त नहीं कर पाता है। घर में पुराने फर्निचर रहने पर गृह-स्वामी की इज्जत में बट्टा लगता है। बड़े-बड़े आदमी हर साल गाड़ी बदलते रहते हैं। चूंकि पत्नी बदलने का कानून नहीं था इसीलिए इतने दिनों तक इसका स्थायी प्रबन्ध था। लेकिन 'हिन्दू कोड' बिल के पास हो जाने से उसके लिए भी दरवाजा खुल गया है। हम लोग कचहरी में जाकर पत्नी बदलने का आवेदन पत्र देते हैं—हम सिर्फ पत्नी ही नहीं बदलते, पति भी बदलते हैं।

इसीलिए पुराने 'जयहिन्द' को वदलकर हम 'लाल सलाम' ले आये हैं।

मेरे बाबूजी ने वन्दे मातरम् तक को ही देखा था। वह वन्दे मातरम् के गौरव को देख चुके थे। मैंने वन्दे मातरम् और जयहिन्द दोनो को देखा है। अब लाल सलाम भी देख रहा हूँ। अगर और कुछ दिनों तक जिन्दा रहा तो लाल सलाम को भी जाते देखूंगा। तव कौन-सा नया नारा आयेगा, मालूम नहीं। कौन आयेगा ? इसका उत्तर एकमात्र इतिहास ही दे सकता है और किसी दूसरे में देने की सामर्थ्य नही है।

बाबूजी के एक मुंशीजी भी थे। बैरिस्टर के मुंशी। उनका नाम हजारी चौधरी था। हजारी बाबू बीच-बीच में हमारे घर पर भी आया करते थे। शायद उन्हें बहुत ही कम तनख्वाह मिलती थी, क्योंकि उनके कपड़े-लत्ते बिलकुल साधारण रहा करते थे। वह बाबूजी को बहुत भय और भक्ति की दृष्टि से देखा करते थे। दुनिया में कोई-कोई ऐसा आदमी होता है जो अपने अस्तित्व के लिए हमेशा विपत्तिग्रस्त रहा करता है। जूते के मामूली फीते के लिए भी जिनमें बड़ी ममता होती है, जो देह के साधारण फोड़े को भी कैंसर समझकर दहशत में जीते हैं, हजारी बाबू वैसे लोगों में से एक थे।

उस दिन हजारी बाबू अकेले ही हमारे घर पर आये थे। बाबूजी तब नही थे।

मुझे देखकर उन्होने चारों ओर निगाह दौड़ाकर परीक्षा की कि कोई है या नही, फिर मुझे पुकारा।

"सुनो, क्या बात है, बताओ तो सही ?" उन्होने पूछा।

मैंने कहा, "क्यों ?"

हजारी बाबू ने कहा, "साहब आज चेम्बर में बहुत बिगड़ रहे थे। घर में तुम लोगों से कुछ झंझट हुआ है ?"

मैंने उन्हें सारी बातें खोलकर बतायी। सुनकर हजारी बाबू थर-थर कांपने लगे।

"ओह, यह बात है ! हम लोग जितने आदमी चेम्बर में थे, सभी शंकाकुल हो उठे थे। तुम ? यह सब क्यों सोचते हो ? एक काम करो।"

"क्या ?"

हजारी बाबू ने कहा, "तुम बच्चे हो। बाप से कही झगड़ा-झंझट करना चाहिए ? साहब कितने विद्वान् हैं ! कितने अक्लमन्द ! तुम उनसे झगड़ने क्यों गये ? किताब में तुमने पढ़ा नही कि पिता धर्म, पिता स्वर्ग···"

सुना था, हजारी बाबू को मेरे पिताजी तनख्वाह के रूप में जो कुछ देते थे वह उसी से सन्तुष्ट रहते थे। वह कभी बीड़ी-सिगरेट या पान का उपयोग नही करते थे। नियमित रूप से दफ्तर आते थे और काम किया करते थे। जो

लोग मन लगाकर काम करते हैं वे या तो अपनी उन्नति के लिए चेष्टा करते है या मन लगाकर काम करना ही उनका स्वभाव होता है। जैसा कि सत्य बोलना बहुतों का स्वभाव होता है। सत्य बोलने से या आचरण में सच्चाई रखने से मृत्यु के बाद स्वर्ग प्राप्त होता है, वह हर किसी का उद्देश्य नही भी हो सकता है। जैसे बहुत-से लोग स्वभाववश चोरी करते हैं उसी तरह स्वभाववश बहुत-से लोग संन्यास ले लेते है। एक स्वभाव होता है जो बुरा स्वभाव कहलाता है और दूसरा अच्छा स्वभाव। इस अच्छाई और बुराई की समझ अनेको में नहीं होती है और इसीलिए उनके जीवन में झंझटों की शुरुआत होती है। पुस्तक पढ़ना जिस तरह एक नशा है, उसी तरह का नशा है शराब पीना। पुस्तक पढ़ने के नशे की हम प्रशंसा करते हैं लेकिन शराब के नशे को हम घृणा की दृष्टि से देखा करते है। लेकिन दोनों के दोनों नशा ही हैं। हम सभी को उपदेश देते हैं—कभी किसी नशे के चक्कर में न पड़ना। लेकिन दोनों में अन्तर ही क्या है?

हजारी बाबू को मन लगाकर काम करने का नशा था। वह कभी दफ्तर आने में एक भी मिनट की देर नहीं करते थे और न कभी गैरहाजिर ही रहते थे।

हजारी बाबू ने पूछा, "साहब तुम पर झल्लाये हुए क्यों हैं? तुमने क्या किया था?"

मैंने कहा, "बाबूजी ने वादा-खिलाफी की है।"

हजारी बाबू ने मुझसे सब-कुछ सुना।

"दस रुपये?" उन्होने कहा।

मैंने कहा, "बाबूजी दस हजार के बदले मेरे मास्टर साहब की मारफत नुटु को दस रुपये देकर उसे भगा देना चाहते थे। बाबूजी ने यह अन्याय किया और मैंने इस अन्याय का विरोध।"

हजारी बाबू ने कुछेक क्षणों तक मन-ही-मन कुछ सोचा। शायद वह सोचने लगे कि यह बात कानून की किस धारा के अन्तर्गत आती है।

"तुम इसे धोखाधडी का मामला कहना चाहते हो", उन्होंने कहा, "यह पेनल कोड की किस धारा के अन्तर्गत आता है, कह नही सकता। किताब देखने के बाद मैं तुम्हें बता सकता हूँ।"

मैंने कहा, "कानून क्या कहता है, इसके लिए बाबूजी माथापच्ची करते रहें। मैं कानून नही मानता। कानून तो झूठ···"

हजारी बाबू ने अपने सामने जैसे काला नाग देख लिया हो या उनकी आँखों के सामने अगर आसमान भी टूटकर गिर पड़ता तो उन्हें इतना आश्चर्य नही होता।

"छिः-छिः !" उन्होने कहा, "सेन साहब के लड़के होकर तुमने ऐसी बातें कही !"

इसके बाद उन्होने मुझसे कोई बातचीत नही की। मुझसे बातचीत करना भी उन्हें पाप जैसा लगा। जो लड़का कानून को झूठा कह सकता है, उसके भविष्य की दुर्दशा के बारे मे सोचकर सम्भवतः वह उस दिन चौंक पड़े थे। हजारी बाबू के लिए कानून ही वेद, उपनिषद, गीता, बाइबिल, कुरान सब-कुछ था।

वास्तव में इसके बाद हजारी बाबू ने मुझसे बातचीत करना बन्द कर दिया। फिर मैं हज़ारी बाबू की आँखों में मनुष्य नामधारी प्राणी रहा ही नही।

एक दिन मेरे विधिमन्त्री ने मुझसे कहा था, "आप कानून को इतनी नफरत की निगाह से क्यों देखते हैं सर ?"

विधिमन्त्री को यह पता ही नही है कि कानून की तरह बेकानूनी चीज हिन्दुस्तान में कोई दूसरी चीज नहीं है। स्वयं कानून बनानेवाला होने के बावजूद मैं यह बात कह रहा हूँ, क्योकि मैंने ही एक दिन इस कानून को भंग किया था। इसी कानून को तोड़कर जेल की सजा काटी है। और इसे नियति का परिहास ही कहूँगा कि जिस कानून को भंग करने के कारण मैंने कारावास की यातना को वरण किया, उसी कानून को तोड़ने के कारण मैं दूसरों को जेल मे ठूँसता हूँ। कानून भंग करने के कारण ही मैं मुख्यमन्त्री बना हूँ और मुख्यमन्त्री बनने के लिए ही दूसरे-दूसरे लोग कानून भंग कर रहे है। जिसे एक दिन मैंने बेकानूनी कहा था, आज उसी को ही मैं कानून कह रहा हूँ। मैने जब कानून तोड़ा था, लोगों ने मेरा जयकार किया था, मुझे फूलों की माला पहनायी थी। अभी मैं कानून का पालन कर रहा हूँ इसलिए लोग मुझे फूलों की माला पहनाते हैं। उस युग में मिस्टर जी. टी. सेण्डरलैण्ड ने एक किताब लिखी थी। उसका नाम है 'The Lawless Law' यानी 'बेकानूनी कानून'। ब्रिटिश सरकार के स्वार्थ में उस पुस्तक के कारण धक्का लगता था। इसीलिए उसे जब्त कर लिया। उस विषय से सम्बन्धित पुस्तक कोई अगर लिखे तो मैं भी उसे जब्त कर लूँगा।

इसी को नियम कहते हैं। इसी तरह दुनिया का इतिहास आगे बढ़ता जा रहा है।

नुटु के कारण मेरी जिस शिक्षा की शुरुआत हुई थी वही शिक्षा मेरे साथ जीवन-भर चलती रही है।

नुटु बार-बार कहता, "दुत, तुम मेरे बारे में इतना क्यों सोचा करते हो ? मैं गरीब का बेटा हूँ, मेरा अभाव कभी भी दूर नही होगा। तुम चाहे लाख

कोशिश करो, लेकिन दूर नहीं कर पाओगे।"

मैंने उससे कहा, "तुम देखते जाओ मैं क्या-क्या करता हूँ।"

उस दिन सचमुच मैंने कानून का उल्लंघन किया था। उस घटना की जानकारी न तो मेरे वर्तमान विधिमन्त्री को है और न मेरे दल के अध्यक्ष को ही।

अचानक घर-भर में शोर-गुल मच गया। भोर के वक्त ही हल्ला-गुल्ला मच गया—चोरी हो गयी है। घर में चोरी हुई थी। कैलास, रघु, केशव, निखिल—सभी सन्त्रस्त थे। मिस्टर सेन ने हर किसी को बुलाया। हरिसाधन बाबू और दिनों की तरह ही सवेरे पहुँच गये थे। वह भी दंग रह गये।

"क्या हुआ है कैलास ?"

"क्या-क्या चोर ले गया ?"

कैलास ने कहा, "साहब के रुपये-पैसे, सोने की घड़ी, हीरे का बटन, कीमती कैमरा···"

"यह क्या ? कैसे चोरी हुई ? दरबान कहाँ था ?"

इस बीच मिस्टर सेन थाने को आगाह कर चुके थे। वहाँ से पुलिस और दरोगा आये। वे लोग घर के रास्ते के सामने भीड़ लगाकर खड़े हो गये। उस समय सभी का कलेजा धड़क रहा था। साहब के निजी कमरे के लोहे के सन्दूक को खोलकर चोरी की गयी थी। चोर के कलेजे की हिम्मत तो कम नहीं थी।

छब्बीस

वह एक अजीब किस्म का चोर था। चोरी की कोई भी निशानी नहीं रख छोड़ी थी। दूसरी-दूसरी बहुत सारी कीमती चीजें थीं लेकिन उन चीजों को छुआ तक नहीं था। फिर चोरों में भी पसन्द-नापसन्द की बात रहती है!

भिखमंगों की तरह चोरों में भी पसन्द-नापसन्द है।

एक बार एक भिखमंगे ने ज्योतिर्मय सेन को एक एकन्नी वापस कर दी थी।

सड़क पर जाते-जाते ऐसे कितने ही भिखमंगे भीख माँगते रहते हैं। ज्योति सेन ने एक भिखमंगे को एक आना पैसा दिया था। देकर वह लौट आये थे। लेकिन दो-चार दिन बाद जब वह उसी रास्ते से जा रहे थे तो किसी ने पीछे से पुकारा, "बाबूजी, ओ बाबूजी···"

ज्योतिर्मय सेन ने देखा, वह वही भिखमंगा था।

"क्या ?" उन्होंने कहा।

और वह उसके पास आये। मन मे सोचा कि भिखमंगा भीख मांगने के अतिरिक्त उनसे क्या चाहेगा!

भिखमंगे ने कहा, "उस दिन आपने मुझे एक खोटी एकन्नी दी थी।"

यह कैसे हुआ। ज्योतिर्मय सेन विस्मय-विभोर हो गये। कब उन्होंने उस भिखमंगे को भीख दी थी यह बातें उन्हें याद ही नही थी। और उस पर भी खोटी एकन्नी।

"मैंने तुम्हें भीख दी थी क्या ?" उन्होंने पूछा।

"जी हाँ, मरकार, आपने एक एकन्नी दी थी। मैंने भी विश्वास करके उसे ले लिया था। बाद मे बात समझ में आयी।"

और उसने अपनी झोली से एक एकन्नी निकालकर दिखलायी। "यह है।" उसने कहा।

ज्योतिर्मय सेन को बडा ही अचरज लगा।

"इसे मैंने ही दिया था, यह तुमने कैसे जाना ?" उन्होने पूछा।

"कोई एकन्नी नही देता है मालिक। हर आदमी पैसा ही देता है। लेकिन एकन्नी सिर्फ आपने ही दी थी। इसीलिए आपका चेहरा पहचानकर रखा था।"

ज्योतिर्मय सेन ने जेब से एक दुअन्नी निकाली और कहा, "लो, उस दिन का और आज का मिलाकर यह दुअन्नी दे रहा हूँ।"

भिखमंगा बेहद खुश हुआ और उसने आशीर्वादों की झड़ी लगा दी।

ज्योतिर्मय सेन के मन में एक खटका बना रहा। उन्होने पूछा, "अच्छा, एक बात तो बताओ, इतने पैसे और अधेने में वह खोटी एकन्नी कैसे पहचान में आयी ? कहीं तुम कुछ खरीदने गये थे ?"

भिखारी ने कहा, "नही बाबूजी, मैंने नही पहचाना था। पहचाना तो मेरे महाजन ने ही था।"

"महाजन ? महाजन का मानी ?"

"वाह जी, हम लोगों के महाजन नही होते क्या ? हम लोगों के पास इतनी पूंजी कहाँ रहती है बाबूजी ? महाजन न रहेगा तो हम लोगों को खिलायेगा ही कौन ? कौन पहनने का कपड़ा देगा ? खाने-पहनने के लिए ही तो हम लोग जिन्दा रहते हैं। इन सारे पैसों में से मेरा अपना एक भी नहीं है, सबका-सब महाजन का है। उसी महाजन को आमदनी का सारा हिसाब देना पड़ेगा। महाजन रात के वक्त सारा हिसाब-किताब लेता है। देखता है कि कितनी आमदनी हुई है। कौन खोटा और कौन चालू सिक्का है, यह भी ध्यान से देखता है।"

भिखमंगों के जिस तरह महाजन होते हैं उसी तरह चोरों के भी महाजन हुआ करते हैं। उन महाजनों के सामने उन्हें कैफियत देनी पड़ती है। महाजन

जब बताता है कि कौन खोटा है और कौन ठीक है तभी उन्हें राहत मिलती है। केवल चोर या भिखारी ही क्यों, जो भक्त या कुपात्र हैं वे भी महाजन का नाम भजे बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ते। चण्डीदास और विद्यापति जैसे व्यक्ति महाजन ही थे। इसीलिए उन लोगों की रचनाओं को 'महाजन-पदावली' कहा जाता है। महाजन येन गतः स पन्था। यह 'महाजन' है क्या चीज ? अलग-अलग व्यक्तियों के लिए वे अलग-अलग रूप रखते हैं। भिखमंगों के लिए वह आदमी महाजन है जो उसे खिलाता-पहनाता है। किरानियों के महाजन अफगान होते हैं। जो विशुद्ध वैष्णव हैं उनके लिए पदों की रचना करने वाले ही महाजन हैं। शब्दकोश में हर तरह का अर्थ लिखा हुआ है : धार्मिक या महान् व्यक्ति, व्यापारी, आढ़तदार, बनिया, ऋणदाता, सूदखोर, वैष्णव पदावली के रचयिता इत्यादि।

बात चोर पर हो रही थी।

उस दिन घर के एक-एक नौकर को बुलाकर पुलिस जिरह कर रही थी। रसोइया, दरबान सभी से पूछ [रही थी। अन्त में कोतवाल ने कैलास को गिरफ्तार कर लिया और फिर उस पर बहुत ही जुल्म किया।

मैं अब अपने को रोक नहीं सका।

"ठहरिए, उसको मारिए मत," मैंने कहा, "उसने चोरी नहीं की है।"

कोतवाल ने मुड़कर देखा और कहा, "इसके मानी ? तुम्हें कैसे पता चला कि उसने चोरी नहीं की है ? दरवाजे को उसी ने बन्द किया था। सिर्फ उसी को मालूम रहता है कि कहाँ किस अलमारी में कौन-सी चीज रहती है। उसने चोरी नहीं की तो फिर किसने की ? किसको इतना मालूम है ?"

"बाहर का आदमी क्या ताला नहीं तोड़ सकता है ?" मैंने कहा।

"ताला कैसे तोड़ेगा ? ताला तोड़ता तो आवाज सबके कानों में पहुँचती।"

मैंने कहा, "मगर ताला तो तोड़ा नहीं है। ताला ज्यों का त्यों पड़ा था।"

कोतवाल ने कहा, "मगर चाबी किसके पास रहती है ?"

"कैलास के पास।"

"फिर कैलास ही इसके लिए जिम्मेदार है।"

मैंने कहा, "उस हालत में किसी ने चाबी निकाल ली होगी जब कैलास नींद में था।"

"कौन निकाल सकता है ?"

मान लीजिए, "मैंने निकाल ली थी।"

कोतवाल की बोलती एकाएक बन्द हो गयी। वह मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि

से देखने लगा।

''तुमने ? तुमने चोरी की है ?" उसने पूछा।

"हाँ, मैंने की है।"

आसपास जितने लोगों की भीड़ लगी थी सबके-सब चौंक पड़े।

"हाँ, मैंने ही चोरी की है। बाबूजी की हीरे की अँगूठी, सोने के बटन, घड़ी, कैमरा वगैरह मैंने ही चुराये हैं। आप कैलास को व्यर्थ ही पकड़ रहे हैं। कोर्ट में जाकर आप उसके नाम से मुकदमा दायर करेंगे तो वहाँ भी मैं यही बातें कहूँगा। इससे बेहतर है कि उसे अभी तुरन्त रिहा कर दें। उसके बदले मुझे गिरफ्तार करें।"

उस वक्त भीड़ के सभी आदमी खामोश और चकित थे। अगर दिन-दोपहर बिना मेघ के बिजली भी गिर पड़ती तो कोई इतना हतप्रभ नहीं होता। कोतवाल मुसीबत में फँस गया। कैलास को रिहा कर उसने बाबूजी के चेम्बर के अन्दर प्रवेश किया।

जब हम बच्चे थे हमारे मुहल्ले में लड़कों के बीच एक तरह का खेल प्रचलित था जिसे हम 'चोर-पुलिस' कहा करते थे। उस खेल की ईजाद किसने की थी, मालूम नहीं। चोर दुनिया में हमेशा से हैं लेकिन पुलिस शब्द का आगमन अंग्रेजों के जमाने में हुआ। उनके पहले 'कोतवाल' शब्द प्रचलित था। लेकिन ऐसा कोई युग नहीं आया है जब चोर था और पुलिस नहीं थी। ऐसा एक प्रागैतिहासिक युग अवश्य ही था जब न तो चोर था और न पुलिस ही। यानी कल्पना में जिसे सत्ययुग कहा जाता है। अगर उस सत्ययुग को ही मान लें तो उस समय व्यक्तिगत सम्पत्ति नामक कोई चीज नहीं थी और न चोरी नाम की ही कोई चीज। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अपनी पुस्तक में लिख गये हैं—"दूसरे की चीज बिना कहे लेने से चोरी कहलाता है।" अपने-पराये का भेद रहने से ही चोरी का प्रश्न पैदा होता है। अपने-पराये का यह भेद कैसे दूर होगा ? शास्त्रकारों का कहना है—'मातृवत् परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्ट्रवत्'। इस बात की उत्पत्ति ही अपने-पराये के भेद से हुई है। हम लोग स्वदेशी युग में गाया करते थे—'स्वदेश-स्वदेश कहते चलते हो, देश न यह है किन्तु तुम्हारा।' स्वदेश और विदेश शब्द ही हमें भेद का बोध कराता है। इस भेद-भाव के बोध के कारण ही इतना विभेद और इतना अलगाव है। मनुष्य के मन से जब भेद-विभेद का बोध दूर हो जाता है, वह महापुरुष कहलाता है। परमहंस देव को यह बोध हुआ था। इसीलिए उन्होंने कहा था, जितने मत है उतने ही पथ है। अंग्रेजी में इसीलिए कहावत है—All roads lead to Rome. और रोम महातीर्थ है। क्योंकि वहीं महान् गुरु पोप वास करते है। वह महामानव का मिलन-स्थल है !

बहुत दिन पहले फ्रांसिसी विद्रोह के समय फ्रोसेद कोंदोरसे नामक एक दार्शनिक हो चुके हैं। वह दार्शनिक भी थे और गणिताचार्य भी। उनका देहावसान घोर अत्याचार के कारण हुआ था। लेकिन इतने दुखों को झेलने के बावजूद वह मानव-मुक्ति की एक बात मरने से पहले कह गये थे। उस बात के लिए वह आज भी स्मरणीय हैं। उनका कहना था—"The time will come when the sun will shine only upon a world of free men who recognise no master except reason; when tyrants and slaves, priest and their stupid or hypocritical tools will no-longer exist except in history on the stage."[1]

लेकिन सचमुच क्या ऐसा दिन आयेगा जब जुल्म करनेवाले और जुल्म सहनेवाले नहीं रह जायेंगे। जब विवेक के अतिरिक्त मनुष्य किसी के सामने सर नहीं झुकायेगा? अगर इसमें सच्चाई न होती तो एक दिन जिन लोगों ने मुसोलिनी को सर का मुकुट बना लिया था वे ही उसे पैरों के तले क्यों रौंदते? मुसोलिनी फासिस्ट था लेकिन जवाहरलाल नेहरू तो वैसे नहीं हैं। करोड़ों आदमी जिस नेहरू का भाषण सुनकर आनन्द और आशा से आत्म-विभोर होकर तालियाँ पीटा करते थे, वे ही लोग उस नेहरू को काला झण्डा क्यों दिखाते हैं? वे ही लोग उन्हें पूंजीपतियों और बिड़ला, गोयनका का दलाल कहकर गाली-गलौज क्यों करते हैं?

जो कांग्रेस कभी 'जिन्दाबाद' थी वह कांग्रेस अब 'मुर्दाबाद' क्यों हो गयी? अवश्य ही नेहरू से उन्हें निराशा हासिल हुई है। कांग्रेस उन लोगों की उम्मीद को पूरा नहीं कर सकी है। अगर यह सही बात है तो जो कम्युनिस्ट पार्टी कांग्रेस को हटाना चाहती है, उस कम्युनिस्ट पार्टी को भी एक दिन कोई-न-कोई पार्टी अवश्य ही हटा देगी; उस पार्टी का नाम चाहे जो कुछ भी हो। दरअसल सही बात यही है कि 'प्रीस्ट' और 'टिरैण्ट' हमेशा रहेंगे। ऐसा दिन कभी नहीं आयेगा जबकि रेलगाड़ी के अन्दर यह साइनबोर्ड नहीं रहेगा—'चोर और उचक्के बगल में ही हैं।' फ्रोसेद कोंदोरसे ने जो कहा है, उसमें सच्चाई नहीं है। वह क्योंकि उनके गहरे दुख और विक्षोभ की वाणी थी इसीलिए इतनी मूल्यवान है।

मेरी ही बात लें।

जिस दिन पिताजी के कानों में यह बात पहुँची कि मैंने ही उनकी कीमती

---

१. एक समय आयेगा जब सूर्य केवल वैसे स्वतन्त्र मनुष्यों की दुनिया में ही चमकेगा जो विवेक के अतिरिक्त अन्य किसी को अपना प्रभु नहीं मानेंगे, जब अत्याचारी और दास, पुरोहित और उसके पाखण्डी अनुचर इतिहास या रंगमंच के अतिरिक्त कहीं नहीं रह जायेंगे।

हरिसाधन बाबू ने जवाब में एक कीमती बात कही थी। "देखो ज्योति, मैंने तुम्हारे बारे मे बहुत-कुछ सोचा-विचारा है। असली बात है सफलता। सफल होने से सारा दोष मिट जाता है। मेरी ही बात लो। मैं उस जमाने का एम. ए. हूँ—अंग्रेजी में फर्स्ट क्लास फर्स्ट। उससे मेरा क्या लाभ हुआ ? कभी क्या निश्चिन्तता से गृहस्थी की गाड़ी चल सकी है ? रुपये के अभाव में अपनी बहुत पुरानी बीमारी पाइल्स तक का ऑपरेशन नहीं करा सका। हालांकि···"

'हालांकि' कहने के बाद वह कुछ कहना चाहते थे लेकिन कह नही सके। यानी वह मेरे बारे में कहना चाहते थे। मुझमें शिक्षा की योग्यता कुछ नही है, केवल कारावास का प्रमाण लेकर और गरम-गरम भाषण देकर मैं देश का सिरमौर बनकर बैठ गया हूँ।

यद्यपि उन्होंने खुलासा कुछ नही कहा, फिर भी मैंने उस बात को छेड़ा था, "मेरे मुख्यमन्त्री होने को ही आप सफलता कहते हैं मास्टर साहब ? इसी से क्या मुझे मोक्ष मिल गया है ?"

"क्या कह रहे हो ज्योति ! मैंने तो तुम्हें छुटपन से ही देखा है। मैंने तुम्हारे छुटपन से ही तुममे ईमानदारी, योग्यता और निष्ठा देखी है। याद है न, उस गरीब लँगड़े किसान के लडके के लिए तुमने क्या नही किया था। उसे अस्पताल ले जाकर उसके लँगड़े पैर का ऑपरेशन कराकर तुमने उसे ठीक करा दिया था। याद है तुम्हे ?"

मैं क्या कहता, चुप हो गया।

लेकिन हरिसाधन बाबू चुप नही हुए। उन्होंने अपना कथन जारी रखा, "तुम्हें चाहे याद हो या नहीं हो, लेकिन मुझे आज भी याद है। तुमने उसके लिए जो महान् काम किया था वह काम कितने आदमी कर सकते हैं ? उस गरीब लडके को तुम अपने बिस्तर पर सोने देते थे और अपनी मेज पर बिठाकर वही खाना खिलाते थे जो तुम खाते थे। यह क्या कम महानता की बात है ! तुम चाहे जो कहो, लेकिन इसका मूल्य तुम्हें प्राप्त हो चुका है और तुम्हें यह स्वीकार करना पड़ेगा।"

मैं क्या कहता। मन-ही-मन हँसने लगा।

"और मैं तुम्हारी दृढ़ता और सूक्ष्म बुद्धि की प्रशंसा करता हूँ। मैंने अपने लड़के से भी यही बात कही थी—इसी पुलिन को। यह मेरा छोटा लड़का है। इन लोगों से मैं यही बात कहता हूँ। कहा करता हूँ कि ज्योति का जीवन इस युग के लडको के लिए एक आदर्श होना चाहिए···"

हरिसाधन बाबू अपनी रौ में कहते गये। लेकिन मेरे कानों में एक भी शब्द नहीं पहुँचा। मैं तब फ्रोसेद कोदोरसे की ही बातें सोच रहा था—वही 'प्रीस्ट' और 'टायरेंट्स' की बातें, वही पाखण्डी तत्त्वों की बातें।

मुझे लगा कि मेरे सामने ही जैसे कोदोरसे द्वारा चर्चित पाखण्डियों में से एक मौजूद है और बैठा-बैठा मेरी खुशामद कर रहा है ।

शंकर एकाएक कमरे के अन्दर आया ।

ज्योतिर्मय सेन ने पूछा, "कुछ कहना है ?"

शंकर एक क्षण तक दुविधा में पड़ा रहा, जैसे वह कुछ कहना चाहता है । जब समझता हूँ कि कोई कुछ कहना चाहता है लेकिन कुछ कह नहीं रहा है, तब समझ लेता हूँ कि वह कुछ आवेदन करना चाहता है ।

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "कहो, क्या कहना है ?"

शंकर ने कहा, "रथीन सिकदार फिर आया है ।"

"फिर ? फिर क्यों आया ? मैंने तो उसे बता ही दिया कि उसे मनोनीत नहीं किया जायेगा । असली मालिक तो जिला कांग्रेस कमेटी है । अगर वह मनोनीत नहीं करती है तो मैं क्या करूँ ? इसके अलावा जिस व्यक्ति को सरकारी रिलीफ फण्ड के रुपये चुराने के कारण छह महीने तक जेल की सजा भुगतनी पड़ी है उसे मनोनीत करने से पार्टी कहीं टिक सकती है ?"

शंकर ने कहा, "वह मुडागाछा के मण्डल कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष हैं । इसीलिए उनका कहना है कि एक बार उन्हें मनोनीत कर लें । कम-से-कम उन्हें मण्डल कांग्रेस का अध्यक्ष बना दें । वह रुपया नहीं चाहते हैं, यह बात तो आपको बता ही चुका हूँ । वह फिर से देश की सेवा करना चाहते हैं ।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "देखो शंकर, मुझे मालूम है कि जितने भी मछली के बाँधों के मालिक हैं और जिन लोगों को शराब की भट्ठी का लाइसेंस मिला है, वे सबके-सब आज रुपयों के जोर से देश-सेवक बन गये हैं । और यह न केवल मुझको बल्कि हर आदमी को मालूम है । क्योंकि सभी जानते हैं इसीलिए आज बाहर नारे पर नारे लगा रहे हैं । यही वजह है कि आज वे धमकियाँ दे रहे हैं । आज वे अगर विरोध में नारे न लगाते तो मैं समझता कि देश में आदमी है ही नहीं । फिर इतनी-इतनी पार्टियाँ हैं, उन्हें छोड़कर वे लोग इसी पार्टी में ही क्यों आना चाहते हैं ? इस पार्टी के हाथ में ताकत है, इसीलिए न ! फिर जब किसी दिन हमारी पार्टी के हाथों से ताकत चली जायेगी तब जिस किसी पार्टी के हाथों में ताकत जायेगी, वे लोग उसी पार्टी में सम्मिलित हो जायेंगे ।"

शंकर मौन धारण किये रहा ।

"मैंने यह सब बातें उनसे कही हैं ।" उसने कहा ।

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "सुबह ही मैंने उसे सारी बातें समझा दी थी ।

उसे मालूम नहीं है कि हम लोगों के दिमाग में भी थोड़ी अक्ल है।"

शंकर ने कहा, "नहीं, वह वैसा कुछ नहीं चाहते हैं। चाहते हैं सिर्फ फिर से मण्डल कांग्रेस का अध्यक्ष होना।"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "फिर तुम यही चाहते हो न, कि अंग्रेजो के जमाने में जो था वही रहे? ऐसा अगर हो तो क्या अगले चुनाव में हम लोग जीत सकेंगे? एक तो ऐसे ही लोग हमें बिड़ला-गोयनका के दलाल कहते हैं। इस पर अगर बाँधों और शराब की भट्ठियों के मालिक इसमें घुस पड़े तो हम लोगों के लिए रसातल में जाने के सिवा क्या रह जायेगा?"

"फिर उन्हें जाने को कह दूं?"

ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "हाँ, जाने को कह दो। यह सब कहना है तो रथीन सिकदार कलकत्ता आये। वहाँ पार्टी का दफ्तर है। लेकिन पहले से सूचना भेजने के बाद ही आना पड़ेगा।"

शंकर बाहर जाने लगा।

ज्योतिर्मय सेन ने उसे फिर से पुकारा, "सुनो।"

शंकर लौट आया। ज्योतिर्मय सेन ने कहा, "रथीन सिकदार जी से और एक बात कह देना। मुझे गोड़रा मछली खिलाकर और मेरी खुशामद करके वह अगर अपना मतलब निकालना चाहते हैं तो यह उनकी गलत धारणा है। और अगर वह चाहे तो अभी तुरन्त मैं गले के अन्दर उंगली डालकर सारी गोड़रा मछलियों को उलटी करके निकाल दे सकता हूँ। वह आकर अपनी मछलियों को इकट्ठा करके ले जा सकते हैं।"

शंकर को इसके बाद और कोई उत्तर नहीं सूझा।

शंकर चला गया। कुछ देर के बाद वह फिर से लौटकर आया। "कह दिया है।" उसने कहा।

"उन्होंने क्या कहा?"

शंकर ने कहा, "कहेंगे क्या। भय दिखाकर और धमकियाँ देकर चले गये। कहा, "आपके चुनाव के समय उन्होंने साढ़े आठ हजार रुपया चन्दा वसूल करके दिया था वह जैसे मुख्यमन्त्री को याद रहना चाहिए। एक माघ से ही जाड़ा नहीं कटता है। मुड़ागाछा के जितने सदस्य हैं वे सबके-सब एकसाथ कांग्रेस छोड़ देंगे।"

छोड़ दें। वे लोग कांग्रेस को छोड़कर चले जायें। उन्हें मालूम नहीं है कि कांग्रेस से देश बड़ा है। कांग्रेस रहे या न रहे, देश बरकरार रहना चाहिए। इन लोगों को कैसे समझाऊँ कि कांग्रेस अगर चली जाती है तो मेरे लिए भी कम भय की बात नहीं है। मैं तो इस बुढ़ापे में उन लोगों की तरह कांग्रेस छोड़कर कम्युनिस्ट पार्टी में सम्मिलित नहीं हो सकता हूँ। और अगर सम्मिलित होने भी जाऊँ तो वे लोग मुझे स्वीकार ही क्यों करेंगे?

शंकर फिर भी वहीं खड़ा था। मैंने कहा, "देखो शंकर, मैंने तुमसे पहले भी कहा था और अब भी कह रहा हूँ कि हम लोगों के देश में देश-सेवकों की भरमार हो गयी है। उनकी संख्या कमाने की जरूरत है। एक बार मैंने पण्डित नेहरू से कहा था कि देश-सेवकों को देखते ही पुलिस को गोली चलाने का हुक्म दें, तभी शायद देश का मंगल होगा, उसके पहले कुछ होने नहीं जा रहा है। दरअसल आज देश-सेवक ही देश के सबसे बड़े दुश्मन···"

वास्तव में ज्योतिर्मय सेन सोचने लगे कि आज लोगों के लिए देश-सेवा के अतिरिक्त जैसे दूसरा काम रह ही नहीं गया है। कला है, साहित्य है, मूर्ति-कला है, संगीत है। जीवन में कितने ही क्षेत्र हैं। और चाहे कुछ रहे न रहे, लेकिन सर के ऊपर आकाश तो है, पैरों के तले जमीन तो है, साँस लेने को हवा तो है। सहजता से जीवन नहीं जिया जा सकता है क्या? सहजता से जीवन जीना आदमी भूल गया है क्या? राजनीति करना क्या जरूरी है? या राजनीति से आसान रास्ता कोई दूसरा नहीं है, इसीलिए हर कोई राजनीति करना चाहता है? डाक्टरी पास करने के लिए मेहनत से लिखना-पढ़ना पड़ता है, इंजीनियरिंग पास करने के लिए भी परिश्रम करना पड़ता है। संगीत में निपुणता हासिल करने के लिए आजीवन साधना करनी पड़ती है, साहित्यिक होने के लिए भी साहित्य का अध्ययन करना पड़ता है। लेकिन तीनों लोकों में जहाँ बिना परिश्रम, अनुशीलन और साधन किये मोटी तनख्वाह की कोई नौकरी मिलती है तो वह राजनीति ही है। जो खून-खराबा करके जेल का थोड़ा अनुभव प्राप्त कर ले और रास्ते के मोड़ या पार्क में थोड़ा बहुत भाषण दे सके वही भविष्य में कभी-न-कभी मन्त्री हो सकता है। प्रमथ चौधरी ने शायद इसीलिए कहा है—"राजनीति एक ऐसा राज है जिसकी कोई नीति नहीं हुआ करती है। प्रमथ चौधरी का कोई अपराध नहीं है। मेरे मन्त्रालय में ऐसे भी मन्त्री हैं जो शुद्ध-शुद्ध एक नोटिस तक नहीं लिख सकते हैं।

एक दिन झल्लाकर मैंने कहा था, "आप चाहे अंग्रेजी न लिख सकें लेकिन बंगाली होकर भी आप बँगला नहीं लिख पाते है। इससे हमारे सचिव हँसा करते है।"

मेरे मन्त्रीजी ने हँसकर कहा था, "मुझे लिखने की आदत नहीं है सर।"

मैंने कहा था, "माना, लिखने-पढ़ने का अभ्यास नहीं है, लेकिन आपने स्कूल-कालेज में पढ़ा तो है?"

मन्त्री महोदय ने उत्तर दिया था, "स्कूल में पढ़ने का मौका ही कब मिला? छुटपन से ही गांधी के आह्वानों पर मैदानों में भाषण देता आया हूँ और जेल की सजा भुगतता रहा हूँ।"

"जेल जाकर भी आप पढ़-लिख सकते थे। आज वही पढ़ाई काम देती।"

उसके जवाब में मन्त्री महोदय ने कहा था, "जेल जाने पर पढ़ने का वक्त ही कहाँ मिला ? वहाँ जाकर भी गांधीजी के आह्वान पर बात-बात मे अनशन करना पड़ता था ।"

याद है, उसकी बात सुनकर मैंने एक लम्बी सांस ली थी। हो सकता है कि उन्ही लोगों के चलते आज इतनी अशान्ति मची हुई है। उन्ही लोगो के चलते इतनी अराजकता फैली हुई है। लेकिन कोई चारा नही है। मुझे अपनी पार्टी को जिन्दा रखना ही पड़ेगा और पार्टी को जिन्दा रखने के लिए रुपयों की जरूरत है। उन रुपयों के लिए ही बाँधों के मालिक रथीन सिकदार और शराब की भट्ठी के मालिक केस्टो हालदार को मनोनयन-पत्र देना पड़ेगा। वे मनोनीत होकर चुनाव में जीतेंगे और एम. एल. ए. बनेंगे। एम. एल. ए. बनने के बाद मन्त्री। पारे को खाकर कब तक दबाकर रखा जा सकता है। वह छेद बनाकर एक-न-एक दिन निकल ही आयेगा। यह भी वैसा ही है।

मन मे इसीलिए सोच रहा था कि राइटर्स बिल्डिंग लौटने के बाद इन बातों को सोचने-समझने की फुरसत नही रहती है। सोचना उचित भी नहीं है। रामकृष्ण देव कहा करते थे, "जिस पर भूत सवार होता है उसे पता ही नही चलता है कि उस पर भूत सवार हुआ है। या किले मे जाने के समय यह समझ में नही आता है कि ढालू रास्ते से नीचे की ओर जा रहा हूँ। जब किले के अन्दर गाड़ी पहुँचती है तब समझ में आता है कि कितना नीचे पहुँच चुका हूँ।" हम लोगों के साथ भी शायद यही बात हो रही है। हम लोग बीस सालों से ढालू रास्ते से केवल नीचे ही उतरते जा रहे हैं, लेकिन यह बात हमारी समझ मे नहीं आ रही है। आज जब हम रसातल मे पहुँच गये हैं तब समझ रहे हैं कि हम कितने नीचे उतर आये हैं।

नुटु को भी जब अस्पताल ले गया तो वह समझ नहीं सका कि मैं उसे कहाँ ले आया हूँ।

नुटु ने पूछा, "यह कहाँ ले आये हो ?"

"अस्पताल।" मैंने कहा।

अस्पताल नाम सुनते ही वह डर गया। वह जानता था कि जब आदमी बीमार पड़ता है, उसे अस्पताल लाया जाता है।

"किसके लिए आ रहे हो ? अस्पताल में कौन है ?" उसने पूछा।

मैंने कहा, "कोई नही।"

कलकत्ते के अस्पताल और गाँव के गंज के अस्पताल में काफी अन्तर रहता है। यहाँ भवन आलीशान रहते हैं लेकिन उनका रूप बड़ा ही भयावह प्रतीत होता है। असह्य भीड़-भाड़ रहती है, उसका ठाठ-बाट भी बहुत लम्बा-चौड़ा

होता है, लेकिन नुटु को मालूम नहीं था कि कलकत्ते के ये बड़े-बड़े अस्पताल गाँवों में रहनेवालों के ऐड़ी-चोटी की मेहनत के पैसे से बने हैं। वहाँ के रहने-वाले टैक्स देते हैं और उनके टैक्स के पैसों से शहर में अस्पताल बनाये जाते हैं, नल से पानी गिरता है और सड़कों पर बिजली की बत्तियाँ जलती हैं। और सिर्फ नुटु की ही बात क्यों तब मुझे भी क्या, यह सब बातें मालूम थीं।

जब हम एक दफ्तर के अन्दर जाने लगे तो नुटु ठिठककर खड़ा हो गया।

मैंने कहा, "चलो, अन्दर चलें।"

नुटु ने कहा, "मुझे भगा देंगे।"

मैंने कहा, "तुम्हारे लिए डरने की कोई बात नहीं है। तुम मेरे साथ चले आओ। डॉक्टर तुम्हारे पैर की जाँच करेगा।"

"मेरे पैर की जाँच ?"

"हाँ," मैंने कहा, "डॉक्टर जब तक तुम्हारे लँगड़े पाँव को देख नहीं लेता है तब तक उसे कैसे ठीक करेगा। उस पैर में ऑपरेशन करके उसे ठीक करना पड़ेगा।"

"चाकू से पैर काटेगा क्या ?"

मैंने कहा, "हाँ, काटना तो पड़ेगा ही। लेकिन जरा भी दर्द महसूस नहीं होगा। दवा से सब ठीक-ठाक कर देगा।"

सत्ताईस

इस युग में सिनेमा की जो हालत है, उस युग में राजनीति की वही हालत थी। दरअसल ये दोनों चीजें एक ही हैं।

राजनीति करते हुए मैंने देखा है कि ऐसे बहुत-से लोग थे जो जीवन-भर डरते-डरते ही जीते रहे। मैं जब दमदम जेल में था, हम लोगों के दल में एक युवक था। वह रात-दिन सिर्फ रोता ही रहता था।

जहाँ तक याद है, उसका नाम सदाशिव था। शराब की दुकान के सामने धरना धरने के कारण पुलिस के बेनेट से अधमरा हो गया था। 'अधमरा' कहना ठीक नहीं होगा। उसका एक हाथ टूट गया था और उसका सर भी फट गया था। फिर जब उसे अस्पताल से छोड़ा गया तो हम लोगों के साथ रखा गया।

मैंने एक दिन पूछा, "तुम इस क्षेत्र में क्यों आये सदाशिव ?"

सदाशिव जोश में आकर महल्ले के लड़कों के साथ मजलिस बनाकर शराब की दुकान के सामने धरना धरने गया था। कुछ लोगों में राजनीति

करने की एक सस्ते किस्म की उत्तेजना रहा करती है। जिन लोगों को कहीं अधिकार के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता था, लिखने-पढ़ने में अच्छा न रहने के कारण जिन लोगों का स्कूल में भी कोई सम्मान नहीं रह जाता था, उस किस्म के बहुत-से लड़के सस्ते में शहीद होने की इच्छा लिये राजनीति करने आते थे। वे न तो मन्त्री बनना चाहते थे और न किसी पुरस्कार की ही अपेक्षा करते थे, वे सिर्फ़ सगे-सम्बन्धी और महल्ले की निगाह में विशिष्ट होने की चेष्टा करते थे। सदाशिव उसी कोटि का लड़का था।

सदाशिव कहता, "कोई भी आदमी मुझे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता था ज्योतिदा। मेरी बात कोई नही सुनता था।"

हो सकता है कि इसी अभिप्राय से उस युग के सदाशिव जैसे व्यक्ति सस्ते मे किस्ती मात करने के लिए राजनीति में आया करते थे। जो लिखने-पढ़ने में अव्वल नही था लेकिन जो प्रमाणित करना चाहता था कि वह अकर्मण्य नहीं है, ऐसे लोगो के लिए उस जमाने में राजनीति एक उपयुक्त क्षेत्र था। इस युग में सिनेमा उसी तरह का क्षेत्र है।

मैं उसे सान्त्वना दिया करता था। "तुम्हारे जैसे लड़के के लिए इस क्षेत्र में आना ठीक नहीं हुआ सदाशिव," मैं कहता, "जेल से छुटकारा पाने के बाद तुम राजनीति से बिल्कुल अलग हो जाना।"

सदाशिव मेरी बात सुनता था लेकिन वह अपनी कोई राय जाहिर नहीं कर पाता था। "लेकिन इस क्षेत्र को छोड़कर मैं किस क्षेत्र में जाऊँ ज्योतिदा? मेरे लिए तो हर क्षेत्र का दरवाजा बन्द हो गया है।"

"क्यों, बन्द क्यों हो गया? तुम मन लगाकर लिखाई-पढ़ाई करो।"

सदाशिव कहता, "मुझे लिखने-पढ़ने की इच्छा नही होती है ज्योतिदा।"

सदाशिव से पूछने पर मुझे पता चल गया था कि वह मध्यवित्त परिवार का लड़का है। उसके पिता एक सरकारी दफ्तर में नौकरी करते थे। आमदनी कम थी और वे लोग कई भाई-बहन थे। सदाशिव के जेल जाने से उसके पिता की नौकरी जाने की सम्भावना थी फिर भी देश की सेवा करने गया था। उससे उसके मन में कही एक प्रकार की आस्था ने जन्म लिया था। चाहे उसके माँ-बाप और भाई-बहन की बर्बादी ही क्यों न हो जाये लेकिन वह तो जी गया है। किसी एक तथाकथित महान् कार्य के लिए उसने आत्म-त्याग किया है।

मैं जेल में बैठा-बैठा सदाशिव के बारे मे सोचा करता था। अपने जीवन से सदाशिव के जीवन की तुलना किया करता था। हम दोनों ने घर से विद्रोह किया था। बाबूजी ने मुझे त्याज्य पुत्र घोषित कर दिया था—इसलिए कि मैंने उनकी बात नही मानी थी। और सदाशिव ने अपने बाप को इसलिए त्याग दिया था कि वह अपने को असाधारण प्रमाणित करना चाहता था। दरअसल

हम दोनों में क्या कोई खास अन्तर था ?

लेकिन यह अन्तर बाद में स्पष्ट हुआ। बहुत दिनों के बाद।

अब इतने दिनों के बाद उन लोगों के बारे में जब सोचता हूँ तो मैं यह सोचकर बड़ी कठिनाई में पड़ जाता हूँ कि जीवन की सार्थकता ही क्या सब-कुछ है, बाकी कुछ भी नहीं ? सफलता ही सब-कुछ है ?

दरअसल, चाहे राजनीति में आओ चाहे सिनेमा में, सफलता से ही हम तुम्हारा मूल्यांकन करेंगे। राजनीति करने में अगर तुम्हें विफलता हासिल होती है तो तुम किसी भी काम के नहीं हो। सिनेमा के बारे में भी यही बात लागू होती है। मैंने यह देखा है कि जिस सभा की अध्यक्षता मैं करता हूँ वहाँ जितनी भीड़ रहती है उसके बनिस्बत वहाँ अधिक भीड़ रहती है जहाँ कोई सिनेमा का अभिनेता सभापतित्व करता है। लेकिन समाचार-पत्रों में मेरे भाषण के लिए जितना स्थान सुरक्षित रहता है, उसके सौवें हिस्से का एक हिस्सा भी अभिनेता के भाषण के लिए सुरक्षित नहीं रहता है।

हो सकता है कि यह आँख की लाज के कारण किया जाता हो। लेकिन जो सत्य है उसे कभी भी दबाकर नहीं रखा जा सकता है। एक-न-एक दिन वह प्रकट हो ही जाता है। दरअसल मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि सब-कुछ भला होता है बशर्ते कि तुम उसमें अव्वल दर्जा पा सको। वह चाहे राजनीति का क्षेत्र हो, चाहे सिनेमा का। अगर ऐसा नहीं हो सके तो नाचकर अव्वल दर्जा लाने की कोशिश करो। पहाड़ पर चढ़कर अव्वल दर्जा लाओ। जैसाकि तेनसिंह ने किया। जिस किसी विषय में किसी भी क्रम से एक बार अव्वल दर्जा ले आओ। फिर हाथ-पैर मोड़कर बैठ जाओ। फिर किसकी मजाल है कि तुम्हारी रोजी-रोटी छीन ले। असली चीज है अव्वल आना। मुँह से अवश्य ही मैं देश-कल्याण की बातें किया करता हूँ। हो सकता है कि मन-ही-मन किसी दिन यह सोचा भी हो। दरअसल मैं भी अव्वल आने के लिए निकला था। लेकिन अब ? और किसी दूसरे को भले ही मालूम न हो लेकिन मैं जानता हूँ कि मैं क्या चाहता हूँ। मैं क्या अपनी इस गद्दी पर ही जमकर बैठा रहना नहीं चाहता ?

बहुत दिनों के बाद उस सदाशिव को फिर से देखा तो मुझे लगा कि मैं अपने असली 'मैं' को ही देख रहा हूँ।

किसी एक देहाती गाँव में मैं सभा में गया हुआ था। सभा का अर्थ ही है आत्म-प्रचार। जिस तरह सभापति का प्रचार होता है उसी तरह सभा के आयोजकों का भी। बीच में श्रोता-वर्ग रहता है। उसके लिए कहीं कोई लाभ नहीं है। श्रोता-वर्ग की कोई जाति नहीं होती है—ठीक उसी तरह जिस तरह शेक्सपियर के जूलियस सीजर के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में है। वे कैसियस के दल में भी हैं और ब्रूटस के दल में भी। उन लोगों की हालत बैडमिण्टन

खेल के कार्क की तरह बहुत-कुछ रहती है। जब जिधर देखा तब, जैसे घेराव करनेवाला दल।

उस दिन सभा में मैंने ऐसा भाषण दिया कि तालियाँ बजाते-बजाते श्रोताओं के हाथ दुखने लगे। जय-जयकार के गर्व से जब मै कुरसी पर बैठा तो खुशियों के मारे मेरा माथा गरम हो गया। सभा के मंच से उतरकर जब मैं गाड़ी में बैठने जा रहा था, एकाएक एक पागल मेरे सामने आया और अजीब ढंग से चिल्लाने लगा।

मैं भय से सिहर उठा।

सभा के आयोजक ने यथासमय आकर उस पागल को पकड़ लिया। वह पकड़ न लेता तो पता नहीं क्या होता। उसको पकड़ने के बाद बेतरह पीटने लगा।

स्वयं को सँभालकर मैंने पूछा, "वह कौन है?"

उस आदमी ने बताया, "यह पागल है। हमी लोगों के गाँव में इसका घर है।"

"पागल कहने का तात्पर्य क्या है? मैंने तो उसका कुछ बिगाड़ा नहीं था, फिर वह मेरी ओर क्यों झपटा?"

"उसमें यही एक बुरी लत है। खादी और गांधी टोपी देखते ही पहननेवाले की ओर वह झपट पड़ता है।"

"लेकिन ऐसा हुआ क्यों?"

"क्यों हुआ, मालूम नही। हालांकि किसी समय उसने स्वदेशी आन्दोलन में भाग लिया था। वह अंग्रेजों का जमाना था। पुलिस ने मारते-मारते उसका सर फोड़ डाला था। एक हाथ भी तोड़ दिया था। ऐसा निर्भीक कार्यकर्ता हमारे गाँव में कोई नही था। वह कई सालों तक जेल के सींखचों के अन्दर बन्द रहा है। उसके चलते उसके पिता की सरकारी नौकरी चली गयी थी। लेकिन एकाएक पता नहीं क्या हुआ कि उसका दिमाग खराब हो गया।"

"एकाएक दिमाग क्यों गड़बड़ा गया?"

उस आदमी ने कहा, "यह मुझे मालूम नहीं है ज्योतिदा। नयी-नयी जब कांग्रेस सरकार बनी तो हम लोगों ने उसे कांग्रेस दफ्तर में आकर काम करने को कहा। हम लोगों ने उससे कहा कि चूंकि तुम पुराने कांग्रेसी हो इसलिए आकर हम लोगों की मदद करो। लेकिन वह किसी भी हालत में आने को तैयार नहीं हुआ। तभी से वह असंगत बातें करने लगा और जिसके पास गांधी टोपी और खादी कपड़ा देखता उसी पर झपटकर मारने के लिए दौड़ने लगता। डॉक्टर ने देखकर बताया कि उसका दिमाग खराब हो गया है।"

मुझे कैसा-कैसा तो सन्देह होने लगा। मैंने पूछा, "उसके घर में कौन-कौन

है ?"

"सभी हैं। लेकिन उसके भाई उसे घर में घुसने नही देते हैं।"

"क्यों ?"

"पागल को कौन बरदाश्त करेगा। उसका दिमाग खराब जो है। इसीलिए वह राह मे दर-दर मारा फिरता है। कोई दया ग्राने पर ग्रगर उसे खाना देता है तो खा लेता है वरना भूखा ही रहता है।"

मैंने पूछा, "उसका नाम क्या है ?"

"सदाशिव।"

मेरे सर पर मानो किसी ने हथौड़ा मारा हो। मैं उसके वाद वहाँ खडा नहीं रह सका। जल्दी-जल्दी गाडी के ग्रन्दर जाकर बैठ गया ग्रौर ड्राइवर से कहा, "चलो, जल्दी चले चलो।"

मुझे लगा कि सदाशिव ग्रौर मुझमे शायद उतना-भर ही ग्रन्तर है। मैं मुख्यमन्त्री हूँ ग्रौर वह पागल है। मैं ग्रव्वल ग्राया हूँ ग्रौर सदाशिव सबसे पिछड़ गया है। ग्रन्यथा मैं भी त्याज्य पुत्र हूँ ग्रौर सदाशिव भी वही है। एक-साथ ही एक ही बैरेक मे दोनों जने जेल के ग्रन्दर रहे हैं। हम दोनो ने ही खादी पहनकर ग्रंग्रेजों के कानून को भंग किया है। दोनों ने पुलिस की लाठी बरदाश्त की है। लेकिन १६४७ में ज्यों ही देश ग्राजाद हुग्रा, मैं मुख्यमन्त्री बन गया ग्रौर सदाशिव पागल हो गया।

ग्रपने जीवन में इस तरह की घटनाएँ मैंने ग्रौर भी देखी है। ग्रंग्रेजी में एक शब्द है 'वैल्यू'। वैल्यू शब्द का ग्रर्थ है 'मूल्य' या मान। लेकिन 'मूल्य' कहने से हूबहू ग्रर्थ नही निकलता है। कहा जा सकता है कि प्लेटो के समय से ही 'मूल्यबोध' का ग्रारम्भ हुग्रा है। इस मूल्यमान पर फ्रांसिस बैकेन ने चर्चा की है। काम्ते ने भी चर्चा की है। दरग्रसल इस मूल्यबोध की चेतना की बात पैदा ही क्यों हुई ? ग्रौर पैदा हुई भी तो इतना शोर-गुल क्यों मचा ? वह इसलिए कि सभी चाहने लगे कि ग्रादमी सुखी हो। जीवन जीने का जिससे कोई विरोध न रहे। लेकिन हमारी दृष्टि किस पर जाती है ? दुनिया की सृष्टि के साथ-साथ दुख की भी उत्पत्ति हुई है। इसी दुख को दूर करने के लिए समस्त ऋषि, मुनि, भावुक ग्रौर दार्शनिक उपायों के ग्रन्वेषण मे लग गये। प्लेटो ने कुछ सोचा, बैकेन ने कुछ ग्रौर, काम्ते ने कुछ ग्रौर ही। तथागत बुद्धदेव, शंकराचार्य, उपनिषद्कार, श्रीमद्भागवतकार इत्यादि ने ग्रलग-ग्रलग ढग से सोचा ग्रौर चिन्तन की धारा दो भागों मे विभक्त हो गयी। एक धारा विज्ञान की ग्रोर मुड़ गयी ग्रौर दूसरी धारा ग्रध्यात्मवाद की ग्रोर मुड़ गयी। यही कठिनाई पैदा हुई। ग्राश्चर्य है कि जीवन को जैसे दो भागों मे बाँट दिया गया। मानो, जीवन ग्रखण्ड नहीं है। ऐसे मौके पर राधाकुमुद मुखर्जी ने एक बात कही है। उनकी

वात वड़ी ही मूल्यवान है। उनका कहना है :

"Man is a unity, but the knowledge of man and his behaviour is now dispersed between two separate compartments of research with their own conceptual mirrors and logical equipment and no doors and windows for communication with each other—one assigned to the sciences and their various applications, and the other to ethics, aesthetics, philosophy, metaphysics and religion."[1]

प्लेटो से प्रारम्भ कर मध्यकाल तक एकीकरण चल रहा था। जिस दिन से विशेषज्ञता की वात चली उसी दिन से पृथक्करण शुरू हुआ। राधाकुमुद मुखर्जी ने ही पहले-पहल कहा कि ज्ञान के क्षेत्र में इस प्रकार का विभाजन ठीक नहीं है। जीवन जिस तरह एक है उसी तरह उसका समाधान भी एक ही तरह से करना होगा। चाहे जीवन की समस्याएँ हजारों की तादाद में क्यों न रहें।

यह सब जेल में ही बैठकर मैंने सीखा था। मेरी लिखाई-पढ़ाई का वहीं आरम्भ हुआ और अन्त भी वहीं हुआ। मैं राजनीति में व्यर्थ ही आया। अन्यथा वावूजी से अलगाव की स्थिति पैदा नहीं होती। उतने रुपये की सम्पत्ति हाथ से नहीं जाती।

कैदखाने में मुझे 'रामकृष्ण कथामृत' पढ़ते देखकर त्रैलोक्यदा ने समाजशास्त्र की पुस्तकें पढ़ने को दी थीं। त्रैलोक्यदा का कहना था—"हर तरह की किताब पढ़नी चाहिए, तभी आदमी वन सकोगे। विशेषज्ञता शब्द पर कभी विश्वास मत करो। वह धोखेवाजी है।"

त्रैलोक्यदा ने इसके अतिरिक्त यह वात भी कही थी, "जो लोग कहते हैं कि विज्ञान अच्छा और अध्यात्मवाद वुरा है, वे ही अवैज्ञानिक हैं।"

त्रैलोक्यदा वहुत-कुछ कहा करते थे। मैं भी उनसे अपनी वात किया करता था। मैं कहता, "जानते है त्रैलोक्यदा, छुटपन में मैं एक वार घर से भाग गया था। भागने पर ही मुझे यह वात समझ में आयी कि घर कितनी घृणित जगह होती है।"

"सो कैसे ?"

त्रैलोक्यदा मेरी कहानी को मन लगाकर सुना करते थे और हँसते थे। वहीं

---

१. आदमी एक इकाई है लेकिन उसके ज्ञान और आचरण अब अनुसन्धान के दो अलग-अलग हिस्सों में बंट गये हैं, दोनों की धारणाओं में अपने-अपने आईने हैं, तर्कों के अपने-अपने अस्त्र। एक से दूसरे के आदान-प्रदान का माध्यम खो गया है। उनमें से एक विज्ञान और उसके विभिन्न प्रयोगों का हवाला देता है और दूसरा आचारशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र, दर्शन-शास्त्र, तत्व-मीमांसा और धर्म का उल्लेख करता है।

बाबूजी की बात रहती थी, नुटु की बात और प्राइवेट ट्यूटर हरिसाधन बाबू की बात। फिर उन्हें बताता था कि किस तरह बाबूजी का पैसा चुराकर मैंने नुटु को अस्पताल में भर्ती कराया था।

"उसका पैर ठीक हो गया था ?"

"आसानी से ठीक नहीं हुआ था त्रैलोक्यदा ! आउटडोर क्लर्क को बीस रुपया घूस देना पड़ा था वरना बेड नहीं मिलता।"

वह आदमी रिश्वत लेने की कला जानता था। उसने कहा, "एक महीने के बाद पता लगा जाना।"

मैं तो दंग रह गया। "क्यों, एक महीने के बाद क्यों ?" मैंने पूछा।

"यही नियम है।"

मुझे गुस्सा हो आया। "नियम कहाँ लिखा हुआ है ?" मैंने पूछा।

वह आदमी इसी पद पर बहुत दिनों से काम कर रहा था। उसने कहा, "इसकी कैफियत मैं तुम्हें क्यों दूँ छोकरे ? अभी बात करने का वक्त नहीं है। चले जाओ।"

और वह मेरे पीछे के आदमी से बतियाने लगा। लेकिन मैं भी छोड़ने वाला जीव नहीं था। पहले तो उसने छोकरा कहकर मुझे अपमानित किया फिर एक महीने के बाद आने को कहा। यह दोनो ही उसके अपराध थे। इस तरह की बेग्रदबी सहने की मुझे कुशिक्षा नही मिली थी। जबकि मैं अपने लखपति बाप की ही परवाह नही करता था तो वह तो एक मामूली किरानी था।

"नही हटूँगा," मैंने कहा, "पहले आप मेरी बात का जवाब दें।"

"तुम क्या कहना चाहते हो ?"

और उस व्यक्ति ने मुझे एक बार सर से पैर तक देखा। फिर बिना कुछ बोले पहले की तरह ही मेरे पीछे जो आदमी था, उससे बतियाने लगा। मेरे पीछे नुटु चुपचाप खड़ा था। वह उस समय भय, लज्जा और संकोच से कांप रहा था।

"ज्योति, चलो, मैं अपना पैर ठीक नहीं कराना चाहता हूँ। चलो, चलें।" उसने इतनी देर के बाद कहा।

मैंने कहा, "तुम चुप रहो। तुम्हें कुछ नहीं बोलना है। मैं जो ठीक समझूँगा, करूँगा।"

आदमी की भलाई के लिए ही आदमी ने अस्पताल बनवा दिया है फिर भी आदमी ही आदमी को अस्पताल में घुसने नहीं देता। इससे बढ़कर अत्याचार और क्या हो सकता है। लेकिन तब मुझे मालूम नहीं था कि आदमी का सबसे बड़ा शत्रु आदमी ही होता है। मेरे बाबूजी जिस तरह मेरे सबसे बड़े शत्रु है उसी तरह आउटडोर का वह किरानी नुटु का शत्रु था। फिर डॉक्टरी एक ऐसी विद्या है कि जो उसे जानता है उसके पास हमें जाना ही पड़ता है। मैं अगर

चाहूँ तो मैं वकील से दूर रह सकता हूँ। मैं अगर सहज जीवन जीना चाहूँ तो इंजीनियर के पास गये बिना भी मेरा काम चल सकता है। और अगर मैं पैसा नहीं कमाना चाहूँ तो एकाउण्टेण्ट के पास भी मुझे फटकना नहीं पड़ेगा। लेकिन डॉक्टरों से दूर रहना कठिन है। क्योंकि जब तक देह है तब तक बीमारी है। और, डॉक्टरी एक ऐसी विद्या है जिसे पास करना जरा कठिन है। लेकिन किसी तरह अगर पास कर लो तो फिर कोई चिन्ता नहीं। आराम से बैठकर प्रैक्टिस करते रहो और रुपया बरसता रहेगा। रोगी बच जाता है तो डॉक्टर का नाम फैलता है और रोगी मर जाये तो डॉक्टर की कोई जिम्मेदारी नहीं। डॉक्टरी की तरह ऐशोआराम की जिन्दगी दुनिया में और कोई दूसरी नहीं होती है। दुनिया में जिस तरह बेवकूफों का अभाव नहीं है, उसी तरह रोगियों का भी अभाव नहीं है। रोगी डॉक्टर की डिग्री देखकर ही आता है, न कि उसकी विद्या को देखकर। जान बी० वेटसन के एक लेख में पढ़ा था, "Medicine men have always flourished. A good medicine man has the best of everything and, best of all, he does'nt have to wark."[1]

किसी ने पीठ पर पीछे से हाथ रखा तो मैं चौंक पड़ा। देखा, अस्पताल का एक चपरासी मुझसे कुछ कहना चाहता है।

"जरा यहाँ आइए।" उसने कहा।

और वह मुझे एक कोने में ले गया। "क्यों मामला बढा रहे है," उसने कहा, "आपको जो काम हो मुझसे कहिए, मैं इन्तजाम कर दूँगा।"

मैंने कहा, "उसने मेरे रोगी को भर्ती क्यों नहीं किया?"

चपरासी ने आँख नचाकर एक प्रकार का इंगित किया और कहा, "पचास रुपये देकर झंझट खत्म कर लें।"

मैंने कहा, "वह किसलिए रिश्वत चाहता है?"

चपरासी ने कहा, "आप उसे रिश्वत क्यों कहते हैं? कम तनख्वाह कमानेवाला आदमी है। बाल-बच्चों को लेकर गृहस्थी चलानी पड़ती है। उतनी कम तनख्वाह में खर्च चल सकता है?"

अन्त में पचास के बदले बीस रुपये में बात तय हुई। चपरासी के हाथ में बीस रुपये थमाये और तुरन्त ही दाखिला हो गया।

याद है, बहुत दिन पहले जब मैं स्वास्थ्य मन्त्री था, तब और एक बार उसी अस्पताल को देखने के लिए गया था। वहाँ जाने पर पुरानी स्मृति जाग पड़ी

---

१. चिकित्सक हमेशा भाग्यवान रहा है। एक अच्छे चिकित्सक के पास हर तरह की अच्छी से अच्छी चीजें रहती हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उसे कोई काम नहीं करना पड़ता है।

थी। उस दिन का वह आदमी तब भी नौकरी पर था। तब उसकी उम्र और ज्यादा हो गयी थी। शायद तरक्की भी हुई थी। मेरे साथ-साथ घूमकर वह सब कुछ दिखाने लगा। उसका व्यवहार बड़ा ही मीठा और सज्जनतापूर्ण था। उसके पहले के व्यवहार से उस दिन के व्यवहार में कोई समानता न थी।

और समानता रहे तो कैसे ? मैं तब स्वास्थ्य मन्त्री जो था।

लेकिन बाबूजी से मेरे विरोध का सूत्रपात उसी दिन से हुआ। सिर्फ मेरा ही क्यों ? दुनिया में जिस दिन प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ, उसी दिन से इस विरोध का सूत्रपात हुआ। उसी समय से विघटन के युग की शुरुआत हुई। उतना बड़ा जो ब्रिटिश साम्राज्य था उसके विघटन की शुरुआत उसी समय से हुई। अन्यथा जिस बैरिस्टर की भक्ति और अधीनता की स्वीकृति पर निर्भर कर उसे राय-बहादुर की उपाधि दी गई थी, उसी का लड़का ब्रिटिश सरकार का सबसे बड़ा शत्रु होकर क्यों पैदा होता ?

बाबूजी की स्थिति तब शोचनीय थी। एक दिन उन्होंने हरिसाधन बाबू को बुलाया और उन्हें कार्य-मुक्त कर दिया। उन्होने कहा, "आपके हाथों लड़के को छोड़कर मै निश्चिन्त हो गया था लेकिन सबसे बड़ी विश्वासघातकता आपने ही मेरे साथ की···"

हरिसाधन बाबू ने विनम्रता के साथ कहा, "आप चाहे जो कहें राय साहब, लेकिन मुझ पर अन्याय मत करें।"

"अन्याय ? आपने मुझ पर कितना अन्याय किया है, यह आपको पता है ? मैंने अपने लड़के को स्कूल यह सोचकर नहीं भेजा कि कही वह बदमाश लड़कों की संगति मे पड़कर बर्बाद न हो जाये। मैंने सोचा था कि आप उसकी पूरी जिम्मेदारी लेंगे। उसके बदले आप हर महीने मोटी तनख्वाह लेते गये।"

हरिसाधन बाबू से बाबूजी का सम्बन्ध वही समाप्त हो गया। लेकिन बाबूजी से वही से मेरे एक नये सम्बन्ध की शुरुआत हुई। बाबूजी के लाखों-लाख रुपये तभी से मेरे लिए विषाद का कारण बन गये। तब मेरे लिए कोई काम नही रह गया। जितने दिनों तक नुटु अस्पताल मे रहा, उसे देखने के लिए मैं रोज जाता था। मेरे आने के रास्ते मे वह आँख बिछाये रहता था। तीसरे पहर चार से छह बजे तक मिलने का समय था। मैं उसी वक्त उसके पास जाया करता था।

नुटु मुझे देखते ही बेहद खुश होता था। "तुम इतनी देर करके क्यों आये ?" वह कहता, "चार तो कब के बज चुके है।"

मैं उसके लिए बाजार से फल और डाब खरीदकर ले जाता था। उन चीजों की ओर वह आँख उठाकर भी नही देखता था। "वहाँ अब मुझे तनिक भी अच्छा

नही लगता है भाई," वह कहता, "मुझे मयनाडांगा भेज दो।"
मैं कहता, "पहले तुम्हारा पैर अच्छा हो जाये तब मयनाडांगा जाना।"
मैं उससे इसी तरह की बातें किया करता था। एक दिन उसने कहा, "तुम जो मेरे पास आया करते हो इससे तुम्हारे बाबूजी तुम पर बिगड़ते नही हैं?"
मैंने कहा, "नही।"
लेकिन मैं असली बात उससे छिपा लेता था। हरिसाधन बाबू को पिताजी ने जो छुड़ा दिया था, यह बात भी मैं उसे नही बताता था। यह भी नहीं बताता था कि मुझे बाबूजी गाड़ी तक व्यवहार में नही लाने देते हैं, केवल किसी तरह खाने और पहनने का सामान देते हैं। बाकी सारा अधिकार छीन लिया है। हो सकता है कि बाबूजी ने सोचा हो कि सब-कुछ से वंचित कर वह मुझसे अपनी अधीनता स्वीकार करा लेंगे। नतीजा यह हुआ कि मैं पूर्णतया अलगाव की स्थिति में आ गया।
परिवार से जितना कटता गया उतना ही साधारण लोगों के निकट आता गया। गृहस्थी किसे कहते है, समाज किसे कहते हैं, जीवन किसे कहते हैं—मैं इन्ही बातों पर सोचने लगा।
उस दिन रात देखा, बाबूजी की गाड़ी अन्दर आयी—ठीक उसी तरह आयी जिस तरह और दिन आया करती थी। लेकिन उस दिन जैसे देर करके अन्दर आयी। गाड़ी आकर पोर्टिको के सामने रुकी। मैं सामने के दुमंजिले पर खड़ा था। देखा, बाबूजी अकेले नही हैं बल्कि उनके साथ दूसरा एक व्यक्ति उतर रहा है। वह एक महिला थी। वह दृश्य देखकर मैं चौंक पड़ा। इसके पहले उस महिला को और एक बार देख चुका था।
लेकिन वह दृश्य एक क्षण के लिए ही था। एक क्षण में ही दोनों जने कमरे के अन्दर चले गये। मुझे लगा जैसे मेरी अन्तरात्मा के रक्त का संचालन रुक गया हो।
और साथ ही साथ समूचे घर में शोरगुल मच गया। बाबूजी जब घर आते थे तो अवश्य ही शोरगुल मच जाता था। लेकिन उस दिन जैसे खासतौर से शोरगुल मच गया। रघु, कैलास, दुखमोचन वगैरह जैसे और भी सन्त्रस्त हो उठे।
सामने से रघु जा रहा था। मैंने उसे पुकारा।
"वह कौन है जी?" मैंने पूछा।
रघु को तब उत्तर देने का वक्त नही था। जैसे वह वहाँ से चला जाये तो बच जाये। उसने कहा, "नयी अम्मा..."
मुझे जो सन्देह हुआ था वह सच साबित हुआ। मैंने कहा, "नयी अम्मा आज एकाएक क्यों आयी?"
रघु जैसे बहुत ही घबराया हुआ था। उसने कहा, "नयी अम्मा आज रात इसी घर में ठहरेंगी।"

"रात में यहीं ठहरेंगी ? एकाएक क्यों रहेंगी ? कभी तो रहा नहीं करती थीं ?"

रघु को तब बोलने की फुरसत ही कहाँ थी। "क्यों रहेंगी, यह मालूम नहीं।" इतना कहकर रघु अपना काम करने चला गया।

अट्ठाईस

जेल में ही बैठकर हम बातचीत कर रहे थे । इतना सुनने के बाद त्रैलोक्यदा ने कहा, "फिर क्या हुआ ?"

फिर देखा कि उस दिन मेरी नयी अम्मा खूब तड़के ही सोकर जगीं। घर-भर में हड़बड़ी मच गयी । पहले घर में इस तरह का शोर-शराबा नहीं रहा करता था, आहिस्ता-आहिस्ता भोर होती थी और आहिस्ता-आहिस्ता शाम। आहिस्ता-आहिस्ता भोर होना ही मुझे हमेशा अच्छा लगता था क्योंकि मेरी धारणा थी कि जल्दी-जल्दी सुबह या शाम होने से आदमी मशीन बन जाता है। जिस युग में टेकनोलॉजी नहीं थी उस युग में आदमी देर से सोकर उठा करते थे। उनकी जीवन-यात्रा सूर्य से बँधी रहती थी। लेकिन टेकनोलॉजी के इस युग में सूर्य उगने के बहुत पहले ही सूर्य उग जाता है और शाम होने के बहुत बाद शाम हुआ करती है।

महाकवि कालिदास ने मेघ को दूत बनाकर प्रिया के पास विरही की व्यथा का सन्देश भेजा था। अपने महाकाव्य का नाम उन्होंने मेघदूत रखा था। मेघ बहुत धीरे-धीरे खिसकता है, यह सोचकर यदि वह जेट विमान को दूत बनाते तो उसका नाम 'जेटदूत' रखते। लेकिन जेट चाहे जितनी तेजी से क्यों न दौड़े, महाकाव्य की बात तो दूर वह काव्य भी नहीं होता। बहुतों की धारणा है कि जो व्यक्ति शीघ्रतापूर्वक काम कर सके वही कर्मठ है। लेकिन यह भी सही है कि जो जल्दी-जल्दी काम करता है वह कभी ठीक से काम नहीं कर पाता है। घोड़े पर चढ़कर लड़ाई के मैदान में जाया जा सकता है लेकिन घड़ी की मरम्मत करनी हो तो इत्मीनान से बैठकर आहिस्ता-आहिस्ता काम करने से ही घड़ी की सुई नियम से चल सकती है। एक बार एक लेखक महोदय शरत्चन्द्र के पास एक उपन्यास लेकर पहुँचे और उनसे कहा, "मैं बहुत शीघ्रता से लिख सकता हूँ। इस तीन सौ पृष्ठों के उपन्यास को मैंने सात दिनों में लिखकर समाप्त कर दिया है।"

लेखक महोदय ने सोचा था कि शरत्चन्द्र उनकी बात सुनकर बहुत ही तारीफ करेंगे। लेकिन उत्तर में शरत्चन्द्र ने कहा, "शीघ्रतापूर्वक लिखना तो

किरानियों का काम है। लेखकों के लिए यह दोष ही है…"

खैर, दूसरे दिन देखा कि रघु के वदन पर एकाएक कुरता आ गया है। वदन पर कुरता डालकर वह चाय की ट्रे लिये ग्रन्दरमहल जा रहा था।

न केवल रघु के वदन पर ही कुरता था वल्कि कैलास के वदन पर भी था। जो-जो ग्रन्दरमहल के काम मे तैनात थे, उन सवों के वदन पर कुरते थे। हरेक के वदन पर एक जैसा ही कुरता। इसी को युनिफार्म कहा जाता है।

मैंने रघु को बुलाया और कहा, "यहाँ सुनो…"

रघु *की आने की इच्छा नहीं थी*, फिर भी वह आया। "क्या?" उसने पूछा।

मैंने कहा, "तुम लोगों के वदन पर नये कुरते क्यों देख रहा हूँ।"

रघु ने कहा, "यह नयी अम्मा का हुक्म है।"

"हुक्म के मानी?"

रघु के हाथ मे चाय की ट्रे थी। देर होने से जैसे धरती कहीं उलट न जाये। उसने कहा, "अव कोई खाली वदन नहीं रह सकता है। सभी को कुरता पहनना होगा।"

मैंने कहा, "नयी अम्मा अव इसी घर में रहा करेंगी?"

रघु ने कहा, "हाँ।"

अव तक वाहर ही वाहर घटना घट रही थी। अव वह घर के अन्दर घटा करेगी। सुनकर मेरा मन खराव हो गया। मैंने अपनी माँ को देखा नही था। माँ देखने मे कैसी थीं, मुझे मालूम नही था। लेकिन माँ के सम्वन्ध मे कल्पना की हुई स्मृति थी। मुझे लगता कि माँ अगर जिन्दा रहती तो यह चीज ठीक इस तरह की नही रहती। माँ के सम्वन्ध में मेरी कल्पना इतनी वास्तविक थी कि उनका न रहना मेरे लिए उनके रहने से अधिक सच्चाई रखता था। माँ नही थी इसीलिए मुझे लगता कि वह अदृश्य होकर सव-कुछ देख रही हैं। माँ के द्वारा की गयी कसीदाकारी, उनके द्वारा उपयोग मे लायी गयी पेटी, अल-मारी—सव-कुछ उनके अदृश्य अस्तित्व के साक्षी थे। माँ क्योंकि नही थीं इसीलिए माँ का अस्तित्व मेरे निमित्त पानी की तरह सरल था। वह रहती तो हो सकता था कि यह सारा मिथ्या सावित हो जाता। माँ रहती तो हो सकता था कि मैं उस तरह मयनाडाँगा भागकर नही जाता।

जितने दिनों तक मैं घर में रहा, लगा कि मैं जेल के अन्दर हूँ। अपने कमरे मे ही वैठा-वैठा तमाम घर की वदलती हुई शक्लों को देखा करता था। इसके पहले इस घर मे मैं ही सव-कुछ था। इसके वाद मैं कैदी हो गया। नुटु तव पैर का ऑपरेशन कराकर चला गया था। उसका पैर ठीक हो गया था। तव वह सीधा होकर चल-फिर सकता था। उससे मुझे कोई शिकायत नही

थी। शिकायत थी तो वावूजी ही से।

उस दिन मैं वावूजी के कमरे के अन्दर गया।

"फिर तुम्हें क्या चाहिए ?"

मैंने कहा, "नुटु के पैर का ऑपरेशन हो गया है। वह अब घर जायेगा। उसको पैसा मिल जाना चाहिए।"

"ह्वाट ?"

वावूजी तमतमा गये लेकिन मैंने अपने चेहरे पर किसी तरह का विकार नही आने दिया।

"वही दस हजार रुपये !" मैंने कहा।

वावूजी ने कहा, "मेरी कीमती चीजों की तुमने चोरी की फिर भी दस हजार रुपये ? मेरा कैमरा, हीरे की अँगूठी, रुपया-पैसा—यह सब कहाँ गया।"

"सब वेच डाला है।" मैंने कहा।

"फिर दस हजार देना तो हो ही गया। बल्कि कुछ अधिक ही।"

मैंने कहा, "उन चीजों को बेचने पर मुझे सिर्फ सात हजार रुपये ही मिले। और तीन हजार बकाया निकलता है।"

एकाएक वावूजी जैसे झल्ला उठे। "निकलो, यहाँ से निकल जाओ।" उन्होने कहा।

मैंने कहा, "नुटु का जो उचित बकाया है वह माँगने आया हूँ। निकलकर क्यों चला जाऊँ ?"

वावूजी ने कहा, "पुरस्कार की मैंने जो घोपणा की थी, वह मेरी गलती थी। अभी यह वात हुई होती तो अखबारो मे विज्ञापन नहीं निकलवाता।"

"मैं नुटु को अपना मुंह कैसे दिखाऊँ ?"

वावूजी ने कहा, "तुम्हें अपना मुंह किसी को नही दिखाना है। मैं भी तुम्हारे मुँह का इमेज देखना नहीं चाहता हूँ।"

मेरे मुंह से भी अचानक निकल गया, "मैं भी आपका मुंह नही देखना चाहता हूँ।"

यह कहकर मैं चला आ रहा था। अचानक किसी महिला के गले की आवाज कानो में आयी, "जाना मत, सुनो।"

मैं मुड़कर खड़ा हुआ। देखा, मेरी नयी अम्मा थी। नयी अम्मा कमरे के पर्दे को हटाकर खड़ी थी।

मुझे लौटते देखकर उन्होंने कहा, "छिः-छिः ! वावूजी से इस तरह कहीं बाते की जाती है।"

मैं क्या उत्तर दूं, समझ मे नही आया। नयी अम्मा की ओर मैं अपलक ताकता रहा। वावूजी के द्वारा दी गयी साड़ी, गहने, लिपस्टिक और रूज मेरी

आँखों में गड़कर चुभने लगे।

नयी अम्मा पुनः कहने लगीं, "तुम तो शिक्षित लड़के हो। पिता से कैसे बातचीत करनी चाहिए, यह तुम्हें मालूम नहीं ? इतने दिनों से तुम्हें यही शिक्षा मिली है ?"

अब बावूजी के मुँह से इतनी देर के बाद बात निकली, "तुम चुप रहो आरती ! वह किसी दिन भी शिक्षित नहीं होगा। वह प्रोत्साहन देने लायक नहीं है। उसे मैं घर से निकाल दूँगा।"

"तुम चुप रहो तो।"

नयी अम्मा ने बावूजी को फटकारने की भंगी से कहा, "मेरी बात के बीच तुम नाहक ही बोलते हो।"

और उन्होंने मेरी ओर देखा। फिर मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कमरे के अन्दर ले गयी। मानो, मैं उनका बहुत ही अपना होऊँ।

मैंने पूछा, "आप मुझे कहाँ ले जा रही हैं ?"

देखा, बावजी के सोने के कमरे की शक्ल बिल्कुल बदल गयी है। पर्दा, चादर, पलंग, फर्निचर सब-कुछ नया था। जिस कमरे में माँ सोती थीं उस कमरे से माँ का चिह्न मिटा दिया गया था।

"यहाँ बैठो।"

"नहीं, मैं नहीं बैठूँगा।"

लगा, मुझे जैसे रिश्वत दी जा रही है। माँ के स्थान पर जो उपस्थित हुई है, उसे कहीं नये स्थान में स्वयं को प्रतिष्ठित करने में कोई बाधा न हो, इसी के लिए वह नकली स्नेह है। दरअसल वही तो रिश्वत है। नाम से हम रिश्वत को ही रिश्वत कहते हैं लेकिन उसका नाम केवल एक ही नहीं है, श्रीकृष्ण के सैंकड़ों नाम की तरह उसके नाम भी संख्यातीत हैं। मेरी सरकार रिश्वतखोर के नाम से बदनाम है। लेकिन रिश्वत कभी-कभी बख्शीश के दाम से भी चलती है। कहीं-कहीं उसका नाम पान-पत्ती है और कहीं सलामी। दरअसल वे सबकी-सब रिश्वतें ही हैं। मैंने देखा है, आदमी जहाँ कमजोर पड़ता है वहीं वह रिश्वत देने का पक्षधर होता है। चालाकी से जल्दी-से-जल्दी काम कराने का आसान से आसान रास्ता है रिश्वत।

मैंने अपने सचिव से एक बार कहा था, "इतना काम आप कर सकते हैं मगर प्रान्त से रिश्वतखोरी को नहीं दूर कर पाते ?"

मेरे सचिव का कहना था, "रिश्वत अगर बन्द कर सकें तो भी उसे कभी बन्द मत करें सर !"

मैंने हैरान होकर पूछा था, "क्यों ? कोर्ट-कचहरी में रिश्वतखोरी का जुल्म रहने के कारण आदमी का जीना दूभर हो गया है। इसकी कोई रोकथाम क्या

नहीं हो सकती है ? रिश्वतखोरी बन्द नहीं हो रही है, इसीलिए सभी सरकार के मत्थे दोष मढ़ते है ।"

मेरे सचिव ने कहा था, "रिश्वत का लेन-देन बन्द होने से सर्वनाश हो जायेगा सर···"

"सो कैसे ?"

"चाहे जिस पार्टी की सरकार क्यों न रहे, रिश्वतखोरी बन्द करना किसी के बूते की बात नही है । अभी अगर दशरथ-नन्दन श्रीराम भी लौटकर आ जायें तो रिश्वत की प्रथा रोक नही सकेंगे । रिश्वत बन्द हो जाने से कोर्ट-कचहरी में मुकदमों की तादाद बढ़ जायेगी । एक तो यों ही हमेशा कोर्ट-कचहरी में चार-पाँच हजार मुकदमे जमे रहते है, इसके बाद दस हजार मुकदमे जम जायेंगे । और इसके अलावा···"

"क्या ?"

"इसके अलावा अभी तो रिश्वत देने से ही आदमी का काम चल जाता है मगर तब मामूली रिश्वत देने से काम नहीं चलेगा । वकील, एटर्नी, मुशी और पेशकार आम लोगो को तहस-नहस कर डालेंगे । इसीलिए आँखों की ओट रिश्वत जैसे चल रही है, चलने दें ।"

आश्चर्य है, इतने दिनों के बाद आज खुद मैंने भी रिश्वत ली है । बाँधों के मालिक रथीन सिकदार के द्वारा दी गयी ताजा गोड़रा मछली मैंने आज ही खायी है । थोड़ी देर पहले स्टेशन के प्लेटफार्म का वेण्डर जो रसगुल्ला देने आया था, वह भी तो रिश्वत ही है । सच कहा जाये तो रिश्वत मैंने भी ली है। सभा-समिति मे जाकर फूलों की बड़ी-बड़ी मालाएँ जो मैंने पहनी हैं, वह भी तो रिश्वत ही है । अखबारवाले मेरी बड़ी-बडी तसवीरें जो छापा करते हैं वह भी तो एक किस्म की रिश्वत ही है । वे लोग मुझसे कुछ उम्मीद करके ही मेरी तसवीरें छापते हैं । मैं ठहरा सरकारी विज्ञापन देने का मालिक । मैं बिगड़ जाऊँ तो उन्हें हानि ही हो ।

यानी रिश्वत सारी दुनिया मे चल रही है । कभी वह सीधी राह से चलती है और कभी टेढ़ी राह से । गुलजारीलाल नन्दा ने केन्द्रीय सरकार के मन्त्री बनने के बाद रिश्वतखोरी रोकने के लिए 'सदाचार समिति' की स्थापना की थी । उसी के चलते उन्हें मन्त्रिमण्डल से हट जाना पड़ा ।

मेरे सचिव ने इसीलिए मुझसे कहा था, "जैसा चल रहा है, चलने दें सर ! उसमें हस्तक्षेप मत करें । नही तो मन्त्रिमण्डल मे दरार पड़ने लगेगी···"

मैंने कहा था, "मगर मैं यह सब कैसे बरदाश्त करूँ ? इससे मेरी बदनामी फैलेगी । चीजों की कीमतें बढ़ जायेंगी । गरीब आदमी चिढ़ जायेंगे तो हमें वोट ही नही देंगे ।"

लेकिन अन्त में मैं कोई उपाय नहीं निकाल सका। मेरे पहले भी रिश्वत जिस तरह चलती थी मेरे शासन-काल में भी वैसे ही चलेगी। और हो सकता है कि मेरे बाद जो युग आयेगा उसमें भी ऐसे ही चलती रहेगी।

उस दिन हरिसाधन बाबू रहते तो क्या कहते, मालूम नहीं। और हरिसाधन बाबू की नौकरी तो मेरे ही कारण चली गयी थी—मेरी उच्छृंखलता के कारण। लेकिन मैं कर ही क्या सकता था? मैं अगर रिश्वत लेने को तैयार हो जाता तो मुझे घर नहीं छोड़ना पड़ता। मैं भी आज काफी जायदाद का मालिक रहता। और तब मुझे वोट की उम्मीद में लोगों के सामने भला आदमी नहीं बनना पड़ता। सुबह से शाम तक एक ओर आँखों का काँटा और दूसरी ओर माथे का मुकुट बनकर नहीं रहना पड़ता। सभी की भलाई करने की जिम्मेदारी से बच जाता और सहजता और सरलता से जीवन जीने का अवसर मिलता।

लेकिन महत्त्वाकांक्षा?

जीवन में बड़ा होने, सर्वश्रेष्ठ होने की आकांक्षा नहीं रहती तो मैं फिर किसके बल जीता? और-और लोगों की तरह विवाह कर सन्तान पैदा करना और आयकर का झंझट झेलकर जीना भी क्या कम दायित्वपूर्ण है? इससे तो अच्छा है महत्त्वाकांक्षी होना। लेकिन प्राप्ति में जो झमेला है, वही है अप्राप्ति में भी। कभी-कभी लगता है कुछ न होने के झमेले से कुछ होने का झमेला ही शायद बड़ा है। यानी दुनिया में जीवित रहना भी एक झमेला है—भले ही इसमें कम या अधिक का अन्तर हो सकता है। अगर मैं साधारण आदमी होता तो अखबारों में मेरी तसवीर नहीं छपती। मुझे केन्द्र मानकर आज जैसी चहल-पहल है, वैसी चहल-पहल नहीं रहती। इतने जो आयोजन और आन्दोलन हो रहे हैं सब-कुछ मुझे ही केन्द्र मानकर चल रहे हैं। दरअसल किसान सम्मेलन तो उपलक्ष्य है, लक्ष्य तो मैं ही हूँ। हो सकता है कि मेरे भाषण को अब तक अखबारवालों ने कम्पोज करना शुरू कर दिया हो। मेरे सचिव ने उन लोगों के पास मेरे भाषण की प्रतिलिपि पहले ही भेज दी है। उनके स्टाफ रिपोर्टर यहाँ आयेंगे, नोट लेंगे लेकिन कम्पोजिटरों को पहले ही पता चल गया होगा कि आज मैं यहाँ क्या बोलूँगा।

उन्तीस

उस दिन अस्पताल जाकर नुटु को ले आया और उसे अपने गाँव भेज दिया। नुटु की आँखों से आँसू चू रहे थे। मानो उसका सारा कथ्य आँखों के आँसू से धुलकर समाप्त हो गया था।

मैंने कहा, "तुम्हारे लिए मैं कुछ भी नहीं कर सका नुटु ! मैं अपने वचन का पालन नही कर सका।"

नुटु ने उत्तर मे एक शब्द भी नही कहा। उसकी आँखों से केवल आँसू ही ढुलकते रहे।

मैंने कहा, "तुम्हारी आँखों में क्या हुआ ?"

नुटु ने उस बात का उत्तर दिये बिना कहा, "तुमने मेरा सारा कर्ज चुका दिया ?"

मैंने कहा, "मेरी खातिर तुमने अपने वैकुण्ठ को कसाई की दुकान में बेच डाला था। वह कर्ज क्या चुकाया जा सकता है ? तुम्हारा कर्ज चुकाने के लिए मुझे फिर से एक बार इस धरती पर जन्म लेना पडेगा।"

नुटु उत्तर में कुछ कहने जा रहा था लेकिन तभी उसकी गाड़ी चल पड़ी। मैंने कहा, "मैं जल्द ही फिर से मयनाडाँगा आऊँगा। तुम फिक्र मत करना···"

नुटु का चेहरा आहिस्ता-आहिस्ता आँखों से ओझल हो गया और उसके बाद मैं घर लौट आया।

उफ् ! मयनाडाँगा जाने का मैंने जो वचन दिया था, वह इतने दिनों के बाद सच होगा, इसे कौन जानता था। वह कितने दिन पहले की बात थी। शायद पचास वर्ष पहले की बात। पचास सालों के बाद मैं मयनाडाँगा आऊँगा, यह बात मैंने ही कब सोची थी ? ऑपरेशन कराने के बाद नुटु का पैर अच्छा हो गया था। नुटु के बदले जैसे मैं ही स्वस्थ हो गया था। उसका इलाज कराने के साथ-ही-साथ मेरे मन की भी सारी बीमारियाँ दूर हो गयी थी। कुछ लोग कहा करते हैं कि मुख्यमन्त्री बनने के बाद मैंने देश के लिए बहुत काम किया है। जहाँ-जहाँ पानी का कष्ट था, उसे दूर किया, जहाँ स्कूल नही था, वहाँ स्कूल खोला। मैंने और क्या-क्या किया है, यह बात मेरे अभिनन्दन के समय विस्तारपूर्वक कही जाती है। किसी-किसी की दृष्टि में मैं देश-गौरव, देश-पूज्य और देश-सेवक हूँ। व्याकरण में जितने प्रकार के विशेषण है वे सब अलग-अलग अवसरों पर मेरे नाम के साथ व्यवहृत किये जाते हैं। लेकिन मुझे मालूम है कि यह सब रिश्वत है। मेरे पद के कारण ही सभी ने यह रिश्वत मुझे दी है। मैं जब चुनाव में हार जाऊँगा तो फिर जो आदमी इस कुरसी पर बैठेगा उसे भी लोग इन्ही विशेषणों से अलंकृत करेंगे। यही नियम है। लेकिन जीवन में यदि सचमुच मैंने किसी का उपकार किया तो वह नुटु ही है। मैंने नुटु को अस्पताल भेजकर उसका पैर ठीक करा दिया—इससे बडा काम मैंने न तो किसी व्यक्ति के लिए किया है और न किसी चीज के लिए ही।

लेकिन जब मैं घर लौटकर आया तो अवाक् रह गया।

देखा, मेरे कमरे का बिस्तर, चादर, पर्दा सबके-सब बदल गये हैं। एक-

वारगी कोरे और नये। ठीक उसी तरह के जैसे बाबूजी के कमरे में थे।

मैंने रघु को पुकारकर पूछा, "यह सब किसने किया ?"

रघु ने कहा, "मैंने।"

"किसने तुमसे करने को कहा ?"

"नयी अम्मा ने।"

मैं तत्क्षण समझ गया कि यह रिश्वत है। नयी अम्मा ने अपनी प्रतिष्ठा के लिए मुझे रिश्वत दी है। इतने बरसों से मैं रिश्वत खाता आ रहा हूँ। रिश्वत लेते-लेते मेरे हाथ काले पड़ गये हैं। लेकिन जीवन में भेंट की गयी पहली रिश्वत की पीड़ा मुझे असाध्य प्रतीत हुई।

मैंने अब देर नहीं की। बिस्तर, चादर, तकिये के खोल वगैरह फाड़-फाड़कर बाहर फेंक दिये। "इन चीजों को सड़क पर फेंक दो," मैंने कहा, "मुझे इनकी जरूरत नहीं है।"

देखा, कमरे के बाहर नयी अम्मा खड़ी हैं। "यह सब क्या हो रहा है ?" उन्होंने कहा।

जेल में बैठा-बैठा त्रैलोक्यदा से मैं यह सब बात किया करता था।

त्रैलोक्यदा पूछते, "इसके बाद क्या हुआ ?"

ये घटनाएँ पिछले महायुद्ध के बहुत पहले की हैं। तब जीवन इतना जटिल नहीं था। हम सबों का एकमात्र दुश्मन अंग्रेज था। सभी का शत्रु जब एक ही व्यक्ति होता है तो प्रतिपक्षियों में मेल और प्रेम की भावना रहती है।

यही वजह है कि त्रैलोक्यदा कहते, "अबे हमारी लड़ाई आसान है। हम लोग सभी ब्रिटिश सरकार के खिलाफ हैं। लेकिन जब अंग्रेज सरकार चली जायेगी तब ?"

मैं पूछता, "चली जायेगी ?"

"जायेगी क्यों नहीं ? कोई हमेशा रहने के लिए नहीं आता है। अकबर बादशाह क्या गये नहीं थे ? रेजाखाँ नहीं गया था ? बर्गियों की जमात नहीं गयी ? ईस्ट इण्डिया कम्पनी नहीं गयी ? लेकिन किसी एक अत्याचारी के चले जाने से ही सारी मुसीबतें टल जायेंगी ऐसी बात नहीं है। अंग्रेजों के चले जाने के बाद अशान्ति और भी बढ़ जायेगी।"

इतना कहकर वह मुझे समझाने के खयाल से कहते, "एक घर में सास और बहू में रात-दिन झगड़ा मचा रहता था। महल्ले के लोगों के लिए झगड़े के कारण घर में टिकना मुश्किल हो गया। वे लोग सोचते, सास अब थोड़े ही ज्यादा दिनों तक जिन्दा रहेगी ! उसके मरते ही सारी मुसीबत टल जायेगी। सास भी तब बूढ़ी हो चुकी थी। उसकी उम्र मरने के लायक हो चुकी थी। एक दिन सास की मौत हो गयी। लोग कालीघाट गये और बहुत धूमधाम से

पूजा की। सोचा, अब मुसीबत टल गयी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। बहू ने तब अपने पति से झगड़ा करना शुरू किया। महल्ले के लोगों से भी झगड़ने लगी। यही है संसार का नियम।"

त्रैलोक्यदा वयस्क व्यक्ति थे, बहुत कुछ देख चुके थे, बहुत कुछ भोग चुके थे।

"फिर ?"

मैंने कहा, "उन दिनों स्कूल, कॉलिज छोड़ने का हंगामा मचा हुआ था। लोग दल बाँधकर देश-सेवा के कामों में हाथ बँटा रहे थे। हर पार्क और हर महल्ले में सभा होती थी। पुलिस आती और लाठी से प्रहार कर सभा भंग कर देती थी। इतिहास में एक ऐसा समय आता है जब जीवन बँधे-बँधाये रास्ते पर चलते-चलते अकस्मात् दूसरी दिशा में मुड़ जाता है। तब देशवासियों के मन में एक नयी भावना जन्म लेती है। बहुत दिनों से खड़ी दीवार में दरारें पड़ने लगती हैं। यह भी ठीक वैसा ही समय था। मैं भी उस दल में सम्मिलित हो गया और सम्मिलित होकर विलायती कपड़ों का होलिका-दहन करने लगा।

आदमी जब किसी चीज को तोड़ता-फोड़ता है तो वह स्वयं को भी तोड़ता है और स्वयं को तोड़ने में एक तरह का आनन्द मिलता है। वह जब जान लेता है कि उसने स्वयं को तोड डाला है तो फिर उसे वह आनन्द नहीं मिलता है। मैं भी जान नहीं सका था, इसीलिए विलायती कपड़ों को मन-प्राणों से जलाना शुरू किया। मुझे महसूस होता कि विलायती कपड़े जलाकर मैं एक महान काम कर रहा हूँ। देश की सेवा कर रहा हूँ।

वह दृश्य आज भी मुझे याद है।

मैं तब अपने कमरे के पर्दे, चादर और तकिये के खोल को फाड़कर बाहर फेंक रहा था।

मैंने रघु से कहा, "उनमें आग लगा दो।"

नयी अम्मा दुवारा चिल्ला उठी, "यह क्या हो रहा है ?"

मैंने कहा, "उन चीजों को जलाने को कह रहा हूँ। मेरे कमरे में उन चीजों को किसने लगाया था ?"

नयी अम्मा ने कहा, "मैंने लगाया था। क्यों इसमें क्या हुआ ?"

"आपने विलायती चीजें क्यों दी ? मैं अब कोई विलायती चीज व्यवहार में नहीं लाऊँगा।"

उन दिनों घर में विलायती वस्तुओं की प्रचुरता रहती तो उन्हें ऐश्वर्य के प्रतीक के रूप में देखा जाता था। इस बात में उस काल से आधुनिक काल का कोई अन्तर नहीं है। देश का राजा बदल गया है। आज भी जिसके पास विलायती गाड़ी है, समाज में उसी का सम्मान अधिक है। विलायती सिगरेट से लेकर

विलायती कलम तक के प्रति हममे कम लोभ नही है। यह इसलिए नहीं कि वह विलायती चीज है, बल्कि इसलिए कि अपनी वस्तु से परायी वस्तु के प्रति हममें अधिक लोभ रहता है। जैसा कि अपने से पराये का नाम, पराये के गहने और पराये की पत्नी। अंग्रेजी में 'स्लेव मेण्टलिटी' नामक एक शब्द है। लेकिन आदतन यह दास-मनोवृत्ति नही, बल्कि मानवीय मनोवृत्ति है।

छुटपन में पढ़ा था कि अशान्ति के पीछे पड़ोसियों का ही सबसे बड़ा हाथ रहता है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों के आश्रम के पास कोई पड़ोसी नही रहता था और इसीलिए उनकी साधना और तपस्या नियमपूर्वक चला करती थी। ऋषि-पत्नियों के मन में पड़ोसियों की साड़ी और गहने ईर्ष्या नही जगाते थे। दरअसल पड़ोसी पराया होता है इसीलिए उनकी वस्तुओं के प्रति आदमी मे इतने लोभ और क्षोभ रहते हैं। इस बात में व्यक्ति के बारे में जितनी सच्चाई है उतनी ही राष्ट्र के बारे में भी। कौटिल्य के युग से ही एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र का इसलिए झगड़ा होता आ रहा है कि वे एक-दूसरे के पड़ोसी हैं। दरअसल पराया रहने के कारण ही लोभ का जन्म होता है। चीन अगर पड़ोसी राष्ट्र न होता तो उससे कोई झंझट ही नही होता। पाकिस्तान के साथ भी यही बात होती। इसीलिए राजनीति मे मध्यवर्ती राज्य (Buffer state) रखने का प्रचलन है। उद्देश्य यह है कि जितना आंधी-पानी आये सब उधर से ही गुजर जाये।

परायी वस्तु के प्रति लोभ की एक मिसाल उस दिन देखने को मिली थी। मेरा श्रम-मन्त्री किसी सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए विलायत गया था। आजकल सम्मेलन करना एक प्रकार का फैशन हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन करना और भी बड़ा फैशन। लौटती बार कस्टम ऑफिस में पकड़ा गया। उसके साथ दो कैमरे, चार घड़ियाँ, तीन मेक-अप वाक्स और दो ट्रांजिस्टर सेट थे।

मेरे पास चिट्ठी आयी।

मैंने उसे बुला भेजा और कहा, "यह सब तुम क्यों ले आये ? तुम्हें मालूम नही था कि इन सामानों को लाने से कस्टम ऑफिस में पकड़े जाओगे ?"

श्रम-मन्त्री ने कहा, "बहुत ही सस्ते में मिल गया। सभी ने अलग-अलग तरह की चीजें लाने को कहा था। मेरे साले ने एक घड़ी और साली ने मेक-अप वाक्स लाने को कहा था..."

मेरा श्रम-मन्त्री स्वजातियों के खास वोटों से चुनाव में जीता था। उसके पास बेशुमार पैसा है—बैंक मे रुपया जमा है, दस-बारह मकान हैं। उसने कांग्रेस के फण्ड में पचास हजार रुपये दिये थे। चाहने पर वह उस तरह की घड़ियाँ, मेक-अप वाक्स और कैमरे हजारों की तादाद में खरीद सकता था। फिर

भी उसको परायी वस्तुओं के प्रति लोभ था। वह लोभ विलायती वस्तु के कारण नही, वल्कि परायी वस्तु रहने के कारण था।

बाबूजी सहसा दौड़कर मेरे पास आये।

"यह सब क्या शैतानी हो रही है ?" उन्होंने कहा।

तब कागज धधककर जल रहा था। वह जगह धुएँ से भर गयी थी।

मैंने कहा, "ये सारी विलायती चीजें है इसीलिए जला रहा हूँ।"

गुस्से में आपा खो बैठना बुद्धिमान आदमी के लिए पाप होता है। लेकिन बाबूजी उस दिन वही पाप कर बैठे।

उन्होंने कहा, "वि ऑफ, घर से निकल जाओ, अभी तुरन्त। मैं तुम्हारी सूरत नही देखना चाहता हूँ, वि ऑफ···"

बाबूजी ने सारी बातें अंग्रेजी मे ही कही थी। बंगाली अगर बँगला भापा मे गाली-गलौज करे तो गाली-गलौज का महत्व नही बढता है। महत्त्व बढता है या तो हिन्दी से या अंग्रेजी से। उससे भापा का अर्थ चाहे न बदले लेकिन महत्ता बढ़ जाती है।

मैंने बातचीत करना फिजूल समझा। उसी हालत में घर से निकल पड़ा क्योकि मैंने सोचा, इसके बाद घर मे रहना कोई मानी नही रखता। मेरा रहना न केवल अर्थहीन है बल्कि अपमानजनक भी है।

मैने एक बात पढी थी : When a men and woman are married, their romance ceases and their history commences.[1]

विवाह होने के पहले तक प्रेम प्रेम रहता है, तब प्रेम के अतिरिक्त बाकी चीजे तुच्छ रहती हैं। और जैसे ही विवाह होता है, इतिहास की शुरुआत हो जाती है। तब प्रेम के साथ बीमा, सुरक्षा, डॉक्टर और सम्पत्ति जुड जाती है। इसी का नाम इतिहास है।

उस दिन रात महल्ले के एक पार्क में स्वदेशियों की एक सभा चल रही थी। वहाँ जाने पर दल के दूसरे-दूसरे लोगो के साथ पुलिस मुझे भी पकड़कर ले गयी। मैंने राहत की साँस ली।

एक दिन मैं घर से भागकर नुटु के मयनाडाँगा मे पहुँचा था। वह भी एक तरह का विद्रोह ही था। लेकिन इस बार विद्रोह का रूप कुछ और ही था। यह चिरस्थायी विद्रोह था। उस बार घर लौट आया था। लेकिन इस बार घर लौटने की जगह यह गृह-त्याग था। स्थायी रूप से गृह-त्याग।

गृह-त्याग का अर्थ था 'इस्टेबलिश्मेण्ट' (व्यवस्था) के खिलाफ विद्रोह।

---

१. पुरुष और स्त्री जब वैवाहिक बन्धन मे बँध जाते हैं तो उनका रोमांस खत्म हो जाता है और उनके इतिहास की शुरुआत होने लगती है।

अंग्रेजी भाषा में 'इस्टेबलिश्मेण्ट' शब्द नया-नया आया है। कानसाइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में इसका अर्थ है : An organised body of men maintained for a purpose, as army, navy, civil service.

लेकिन विशालकाय रेनडम हाउस डिक्शनरी में है : The existing power structure in society.

इंग्लैण्ड के राजा जार्ज अष्टम का नाम अब ड्यूक आव विण्डसर है, हाल ही में बी. बी. सी. के एक साक्षात्कार में उसने इस शब्द का उल्लेख किया था। सबको मालूम है कि एक दिन मिसेज सिमसन के कारण उसे राजपाट से वंचित होना पड़ा था।

प्रश्न किये जाने पर उसने कहा, "Even if I had not married Mrs. Simpson, a clash between me and the establishment would have been inevitable."[1]

तब उससे पूछा गया, " 'इस्टेबलिश्मेण्ट' का मानी क्या है ?"

ड्यूक ने कहा, "यह शब्द नया है। पन्द्रह वर्ष पूर्व इस शब्द को मैंने जब पहले-पहल सुना था, तब मैंने भी लोगों से इसका अर्थ पूछा था।"

फिर उसने कहा, "इस शब्द का अर्थ चाहे जो हो, लेकिन मैंने अपने मन के अनुसार इसका एक अर्थ खोज निकाला है। 'इस्टेबलिश्मेण्ट' का अर्थ यदि राजपाट हो तो मेरे पिताजी इस्टेबलिश्मेण्ट थे। मेरे दादा भी वही थे। लेकिन एकमात्र मैं था जो स्वतन्त्र था। So one may give a negative definition of the establishment, caphoever strives to be independent cannot be part of the establishment.[2]

हमारे देश के तथागत बुद्धदेव, राजकुमार सिद्धार्थ, नदिया के निमाई, लाला बाबू, गांधीजी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस—सभी स्वतन्त्र थे। स्वतन्त्रता कभी व्यवस्था को बरदाश्त नहीं कर सकती है। क्योंकि वे बरदाश्त नहीं कर सकते थे, इसीलिए व्यवस्था को अस्वीकार कर उन्होंने गृह-त्याग किया था। छुटपन में मैं सोचता था कि कोई धर्म के लिए, कोई ईश्वर के लिए, कोई साधन एवं तपस्या के लिए और कोई नारी के लिए गृह-त्याग करता है। लेकिन अब समझ गया हूँ कि असल में वे सब उपलक्ष्य मात्र हैं, असली लक्ष्य है स्वतन्त्रता।

---

१. मैं सिमसन से ब्याह नहीं करता तो भी मुझमें और व्यवस्था में टकराहट अनिवार्यतः होती।

२. इसलिए व्यवस्था को नकारात्मक रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जिसमें स्वाधीनता की तड़प है वह व्यवस्था का अंग नहीं हो सकता है।

मेरी स्वतन्त्रता की स्पृहा ने ही उस दिन मुझे व्यवस्था के पंजे से छुड़ाया था। बचपन-भर मेरे पिताजी ने मुझे बन्दी बनाकर रखना चाहा था और वह इसलिए कि महल्ले के लड़कों से हिलकर कहीं मैं खराब न हो जाऊँ। लेकिन आज मैं सोचता हूँ कि यह मेरा सौभाग्य था कि व्यवस्था के जाल को काटकर मैं बाहर निकल आया।

याद है, एक दिन मैं अपने कमरे में बैठा था। बाहर से आकर चपरासी ने मेरे हाथ में एक स्लिप दिया।

उस स्लिप को मैंने पढ़कर देखा। उसमें स्याही से एक नाम लिखा हुआ था—'अजय सेन।'

अजय सेन ! उस नाम से किसी को पहचानता होऊँ, याद नही आया। तब मैं अपने स्टेनोग्राफर को बुलाकर आवश्यक पत्रों का उत्तर लिखा रहा था। एक बार जी में हुआ कि भेंट नहीं करूँ। लेकिन वोट ! कुछ दिनों के बाद ही चुनाव आ रहा था। तब तो मुझे घर-घर जाकर वोट माँगना पड़ेगा !

स्टनोग्राफर को विदा कर अजय सेन को बुला भेजा। देखा, एक भलेमानस ने कमरे मे प्रवेश किया। उसके चेहरे पर खूँटीदार दाढ़ी थी, बदन पर रेशमी चादर, पाँव नंगे और हाथ मे कुश का आसन।

मैंने कहा, "बैठिए, आप क्या कहना चाहते है ?"

वह कुश का आसन बिछाकर बैठ गया। उसने कहा, "आप मुझे पहचान नही सके। मैं आपका छोटा भाई हूँ।"

'छोटा भाई' सुनते ही मैं चौंक पड़ा।

मैंने कहा, "छोटे भाई का तात्पर्य ?"

उस आदमी ने तब मेरे पिताजी का नाम लिया और कहा, "हाल ही में उनकी मृत्यु हुई है।"

और उसने काले बोर्डर से घिरा श्राद्ध का एक निमन्त्रण-पत्र मेरी ओर बढ़ा दिया। उसके ऊपर लिखा था—"गंगालाभ···"

मैंने पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते उनका चेहरा मेरी आँखों के सामने जैसे नाच उठा। मुझे लगा कि मनुष्य के जीवन में मृत्यु ही सबसे बड़ी शिक्षा है। मरने के समय उन्हें अवश्य ही जीवन की सारी घटनाओं का स्मरण हुआ होगा। मुझे जो त्याग दिया था, वह भी जरूर ही याद आया होगा। जब उसकी मृत्यु हुई तब मैं जेल में था, लेकिन जब उनका क्रिया-कर्म होने जा रहा है, मैं मुख्यमन्त्री हूँ। मैं किसी दिन मुख्यमन्त्री बनूँगा, इसकी उन्होंने क्या कभी कल्पना की होगी ? अगर कल्पना करते तो वह क्या सुखी हो पाते ? कल्पना करने से

पिताजी के भाग्यविधाता उस समय हँसते या नही, पता नहीं, लेकिन वह यदि हँसते नहीं तो उनका हँसना अवश्य ही उचित होता।

"बाबूजी की मृत्यु के समय मैं उनके पास नही था।"

"उन्हें बड़ी तकलीफ हुई थी ?"

अजय ने कहा, "हाँ, खूब। मैं तो था नहीं, लेकिन माँ से सुना कि उन्हें बड़ी तकलीफ महसूस हो रही थी। वह रात-दिन रोया करते थे। माँ ने एक दिन पूछा था, ज्योति को खबर भेजूं ? बाबूजी ने कहा, नही।"

मुझे नयी अम्मा की याद आयी। एक दिन जिस नयी अम्मा ने बाबूजी से कहकर मुझे घर से निकलवा दिया था, वही नयी अम्मा मुझे अन्य रास्ते से घर मे बुलाने का मतलब गाँठ रही है।

मैंने कहा, "इसके बाद क्या हुआ ?"

"इसके बाद माँ ने आपको खबर देने को कहा था। इसी उद्देश्य से आपसे मिलने के लिए मैं आपके घर पर गया था लेकिन आपके सचिव ने मिलने नहीं दिया। उन्होंने कहा कि आप मीटिंग कर रहे है। लेकिन आज मैं स्वयं को रोक नही सका। आप दया करके एक बार आयें। माँ बिल्कुल टूट गयी हैं। आपके जाने से माँ को ढाढ़स मिलेगा···"

इसके उत्तर में मैं बहुत-कुछ कह सकता था। कह सकता था कि तुम्हारी माँ तब कहाँ थीं जब पुलिस ने मुझ पर लाठियों से प्रहार किया था ? जब मैं जेल के अन्दर सड़ रहा था, उस समय कितने ही लोगो ने मुझसे कारावास में भेंट की थी। तब तुम लोगों मे से किसी ने मेरे बारे में नही सोचा। जब काँथी मे नमक-सत्याग्रह करने के कारण पुलिस की लाठियो की चोट से मेरा सर फट गया था तब बहुतों ने तार भेजकर मुझे बधाइयाँ दी थी। तब मेरे पिताजी और मेरी नयी अम्मा कहाँ थे ? बाबूजी की इतने रुपये की सम्पत्ति के एकमात्र हिस्सेदार को घर से निकलवाकर आराम से जीवन जीने मे नयी अम्मा को पाप-बोध नहीं हुआ। जिस दिन मैं घर से सड़क पर निकल पड़ा था उस समय पाथेय के नाम पर मेरे सर के ऊपर उदार आकाश और पैरों के नीचे यह धरती ही थी। मनुष्य के जीवन की बुनियादी कहानी यही है : शून्य से आरम्भ कर वह अनेक कुछ जोड़ता, घटाता, गुणा, भाग करता है और पुनः शून्य में आकर समाप्त हो जाता है। इस जीवन की तरह यह दुनिया भी है। शून्य से आरम्भ कर महाशून्य मे विलयन। इस आरम्भ और अन्त के बीच ही सारे झंझट-झमेले आते है। इस 'बीच' में ही पराये का कौर छीनना, जीविका, मामला-मुकदमा, सुख, विरह, प्रतिद्वन्द्विता, प्रतिष्ठा, निराशा, अहंकार आदि का झमेला लगा रहता है। लेकिन कोई-कोई आदमी ऐसा होता है जो उन चीजो में सम्पृक्त नही होता, जो आरम्भ और अन्त के शून्य की बात सोचकर

व्यवस्था का मैं प्रतिनिधि हूँ। ड्यूक ऑव विण्डसर जब अष्टम जार्ज था उस समय उसको जो सम्मान मिला था, वह सम्मान क्या अब उसे प्राप्त होता है? श्रद्धा मिलेगी ही क्यों? अब वह जो स्वतन्त्र है! इसीलिए मैंने कहा था कि आदमी स्वतन्त्रता के प्रति नहीं बल्कि व्यवस्था के प्रति सम्मान प्रकट करता है।

श्राद्ध-घर को बड़े ठाट-बाट से सजाया गया था। घर के अन्दरूनी हिस्से की ओर ताककर देखा—वही घर था, वही मेरा जन्मस्थान। वही रघु, वही कैलास तथा अनेक व्यक्ति। अब मुझे बहुतों का नाम याद भी नहीं है। रघु तब बूढ़ा हो गया था। सामने आकर जमीन पर माथा टेककर उसने मुझे प्रणाम किया।

"मैं रघु हूँ हुजूर···" उसने कहा।

"अच्छे हो न!"

कैलास ने भी जमीन पर माथा टेककर प्रणाम किया और कहा, "नयी अम्मा एक बार आपको बुला रही हैं हुजूर। आप एक बार भीतर चलते···"

एक दिन सभ्य समाज के रीति-रिवाजों को तोड़कर बाबूजी नयी अम्मा को घर ले आये थे। उन्होंने सोचा था कि वह जो चाहेंगे, वही होगा। और यह भी सोचा था कि जीवन के लिए मनुष्य नहीं है बल्कि मनुष्य के लिए ही जीवन है। लेकिन जीवन के दावे के सामने मनुष्य तुच्छ है। वह अपने प्रयोजन के निमित्त एक आदमी को ऊपर उठाता है और दूसरे को नीचे गिराता है। जीवन वह अमोघ इतिहास है जो अपने प्रयोजन को सफल बनाने के लिए किसी व्यक्ति को बनाता है और फिर उसे तोड़ भी देता है। व्यक्ति उसकी दशा है। केवल बाबूजी के साथ ही ऐसी बात लागू नहीं हुई है। राजनीति के क्षेत्र में आने के बाद मैंने देखा है कि जिस किसी ने जब सोचा कि मैं कांग्रेस के निमित्त नहीं हूँ, बल्कि कांग्रेस ही मेरे निमित्त है, उसकी स्थिति बाबूजी की जैसी ही हुई है। अर्थ चिरस्थायी नहीं रहता। मान-सम्मान और गौरव भी चिरस्थायी नहीं हैं। लेकिन जीवन चिरस्थायी है। कहने का मतलब है महा-जीवन। इसी महाजीवन के लेखन को जो पढ़ नहीं पाता, उसका विनाश किसी-न-किसी दिन होता ही है। उसकी रक्षा नहीं हो सकती है।

लेकिन व्यवस्था?"

यह शब्द नया-नया आया है। इस शब्द को लेकर आजकल बहुत चर्चा-परिचर्चा हुआ करती है। अक्सर इस शब्द का उपयोग किया जाता है। उस समय वहाँ चारों तरफ भीड़-भाड़ थी, कीर्तन-भजन हो रहा था, अतिथियों का स्वागत-सत्कार किया जा रहा था लेकिन मेरे दिमाग में यही शब्द चक्कर काट रहा था।

नयी अम्मा की बातें याद आ रही हैं। उन्होंने कहा, "तुम आये हो, इससे बड़ी खुशी हुई बेटा! अजय को तुमसे मिलने के लिए कई बार कहा था मगर

वह इतना शरमीला लड़का है…"

मेरे मन्त्रालय की बैठक में एक दिन एक मन्त्री ने कहा था, "ज्योतिदा, हम लोग जब चले जायेंगे तो लोग समझेंगे कि कम्युनिस्ट कितने बुरे हैं। वे लोग एक बार मिनिस्ट्री में आयें तो सही।"

मैंने कहा, "देखो बात यह है कि उन्हें बदनाम करने के लिए हम लोग गद्दी छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। जिस दिन समझेंगे कि हम लोग गद्दी पर जमकर बैठ गये हैं और देश की हानि हो रही है, उसी दिन हम लोग चले जायेंगे।"

"लेकिन ज्योतिदा, उससे हमारी पार्टी को क्या सुविधा प्राप्त होगी?"

नयी अम्मा ने एकाएक मुझसे कहा, "यह सन्देश खा लो बेटा! कुछ-न-कुछ खाना ही चाहिए।"

उस मन्त्री के प्रश्न का मैंने उत्तर दिया था, "इससे हमारी पार्टी को चाहे कोई सुविधा प्राप्त न हो लेकिन लोगों को सुविधा प्राप्त होगी।"

मैंने एक सन्देश उठाकर मुंह मे रखा और मन-ही-मन हँसने लगा। बैरिस्टर सेन की मृत्यु का अर्थ है मेरे पिता की मृत्यु। लेकिन मैं इसके लिए अशौच का पालन नहीं कर रहा हूँ। अजय की तरह मैंने माथा नहीं मुंड़वाया था। इसके लिए मुझे किसी से कोई शिकायत सुनने को नहीं मिल रही है। सचमुच, सुनने को क्यों मिलेगी? मैं जो मुख्यमन्त्री हूँ।

तीस

एकाएक शंकर कमरे के अन्दर आया। उसने कहा, "अब चलिए ज्योतिदा…"

मैंने शंकर की ओर देखा और उससे पूछा, "अच्छा शंकर, तुम जो मेरी इतनी खातिर कर रहे हो, यह इसलिए न, कि मैं मुख्यमन्त्री हूँ?"

शंकर ने दाँतों से जीभ काटकर कहा, "छि-छि, आप क्या कह रहे हैं ज्योतिदा! आप कितने बड़े महापुरुष हैं। आपने देश के लिए कितना [illegible] किया है। कितनी बार जेल हो आये हैं। यह बात क्या हमें मालूम नहीं है? आपके जैसे निःस्वार्थ और त्यागी पुरुष बंगाल में कितने हैं? आपकी [illegible] करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, यही मेरे लिए बड़ी बात है…"

मैं हँस पड़ा और कहा, "इस बंगाल में लाखों आदर्श [illegible] जी रहे हैं, देश की भलाई के लिए उन्होंने कितना ही त्याग किया है, [illegible] ही स्कूल के शिक्षक [illegible] बना रहे हैं। उन्हें बुलाकर तुमने कभी यह पूछा कि वे कैसे [illegible]

इकत्तीस

दरअसल हम लोगों ने किसी के लिए कुछ नहीं किया है। कभी-कभी मुझे सन्देह होता है कि क्या कोई किसी के लिए कुछ कर सकता है? राजा क्या केवल राजा की ही बात पर चलता है? यह ठीक है कि बैल खीचते हैं तो गाड़ी चलती है। लेकिन दोनों पहिये अगर असमर्थ हो जायें तो गाड़ी क्या चल सकती है? इसीलिए मैं सोचता हूँ कि गाड़ी के चलने में बैलों की जितनी जिम्मेदारी है, पहियों की भी उतनी ही जिम्मेदारी है। और सिर्फ बैल और पहियों की ही क्यों, रास्ते की भी एक जिम्मेदारी है। रास्ते को भी तो सीधा समतल होना पड़ेगा।

नवाब सिराजुद्दौला के चरित्रहीन होने से ही क्या अंग्रेजों ने बंगाल को जीत लिया था। बहुत दिन पहले बंग-दर्शन में पढ़ा था—"जनता के चरित्र और गुण पर ही राज्य निर्भर करता है और जनता के चरित्र-दोष से ही राज्य बरबाद होता है। राजा तो मात्र उपलक्ष्य है। सिराजुद्दौला के दोष से राज्य नहीं गया था। उस समय यदि कोई सर्वगुण-सम्पन्न नवाब भी रहता तो जनता के चरित्र-दोष के कारण राज्य जाता ही।"

तब यह बात सन्देहास्पद प्रतीत हुई थी। लेकिन अब प्रत्यक्षतः राजा की कुरसी पर बैठकर देख रहा हूँ कि जिम्मेदारी न केवल मेरी है बल्कि सभी की है। एक भी व्यक्ति अगर जिम्मेदारी का बोझा नहीं ढोता है तो यह दाय समुदाय का दाय है। अच्छाई का दाय जैसे समुदाय का दाय है, बुराई का दाय भी समुदाय का ही दाय है। सामाजिक नियम यही है कि उत्तराधिकार मे पाये धन का बोझा ढो-ढोकर जीवन व्यतीत करना। इसी का नाम सम्भवतः जीवन है।

याद है, नुटु को जिस दिन मैं रेलगाड़ी के तीसरे दर्जे के डिब्बे में बिठाने गया था उसने मुझसे कहा था, "तुम मयनाडांगा क्यों गये थे? बिना गये काम नहीं चलता क्या?"

मैंने कहा था, "मैं मयनाडांगा नही जाता तो तुम्हारा पैर कैसे अच्छा होता?"

नुटु ने कहा था, "पैर अच्छा होने से मेरा क्या भला हुआ! मैं तो मजे में चलता-फिरता था और काम करता था···"

"बीमारी अच्छा होना क्या अच्छा नहीं है?"

"पैर अच्छा हो जाने से क्या मुझे भरपेट खाना मिलने लगेगा? पैर अच्छा होने से क्या हमारी चाल की मरम्मत हो जायेगी। पैर अच्छा होने से क्या केदार मुनीम मुझे ज्यादा काम देने लगेगा?"

याद है, नुटु की बात सुनकर मेरी आँखें जैसे खुल गयी थीं। उस हावड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म पर खड़ा मैं नुटु से जैसे बहुत बौना हो गया था। लगा था, सचमुच मुझमें प्रबल अहंकार है ! नुटु का उपकार करके जैसे मैं अपनी दानशीलता का प्रदर्शन करने गया था। अब समझता हूँ कि 'उपकार' शब्द अच्छा है, लेकिन ज्यों ही मैं सोचता हूँ कि मैं अमुक व्यक्ति का उद्धारकर्ता हूँ, वैसे ही मुझमें अहंकार जन्म लेता है। इसीलिए शास्त्रों मे अहंकार को निषिद्ध माना गया है।

त्रैलोक्यदा कहा करते थे, "इस तरह का विचार रखोगे तो तुम राजनीति नही कर सकते हो ज्योति !"

मैं पूछता, "क्यों, राजनीति क्या दुनिया से अलग की कोई वस्तु है ?"

"नही दुनिया से अलग नही है लेकिन राजनीति करने के लिए राजनयिक होना पड़ेगा।"

"लेकिन राजनीति का अर्थ ही है भाई चारा अन्याय से भाई चारे का सम्बन्ध।"

त्रैलोक्यदा कहते, "तुम फिर गलती क्यों कर रहे हो ? जो चीज तुम्हारी पार्टी के विरोध मे जाती है, वही अन्याय है। अगर न्याय-अन्याय को मानना चाहते हो तो इस क्षेत्र में मत आओ।"

मैं त्रैलोक्यदा की बातें तब भी नहीं मानता था और अब भी नहीं मान रहा हूँ।

छुटपन में पाठ्य-पुस्तक में जो-जो बातें पढ़ी थीं वे सब क्या गलत ही हैं ? 'सदा सच बोलो', यह बात आजकल भरसक चलती नही है। एक बार एक आदमी मेरे पास ऑटोग्राफ की कापी लेकर आया था। हस्ताक्षर करने के पूर्व मैंने उसमे लिखी बातों को पढ़ा। एक अत्यन्त श्रद्धालु व्यक्ति ने लिखा था : "सदा सच मत बोलो।" यह देखकर मेरा मन खराब हो गया था। कौन किसको उपदेश दे रहा है ? किस चीज का उपदेश ? सच न बोलना ही यदि राजनयिकता है तो फिर क्या राजनयिकता से ही यह दुनिया चल रही है ? लेकिन राजनयिकता का एक दूसरा अर्थ है असत्य। जिसे मुँह देखी बात कहते हैं। वही बात क्या त्रैलोक्यदा ने मुझे सिखायी थी ?

उस दिन ज्योतिर्मय सेन ने कहा था, "मैं राजनयिकता को बिना माने राजनीति करूँगा।"

सचमुच राजनीति का अर्थ है भाईचारा। जो भाईचारा करता है वह भीरु होता है। क्षमा जैसे एक प्रकार का गुण है, वीरता भी एक तरह का गुण है। उसी तरह असहनशीलता और भीरुता दुर्गुण है। लेकिन राजनीति में भाईचारे की ही प्रशंसा की जाती है। अंग्रेजी उसी भाईचारे की ही पुष्टि के लिए

एक शब्द बनाया गया है—'टैक्ट'। 'टैक्ट' का क्या अर्थ है, इसे बंगला में नहीं कहा जा सकता है। 'चालाकी' शब्द दोषपूर्ण है लेकिन शब्दकोश के अनुसार 'टैक्ट' को अच्छे अर्थ में लिया जाता है। इस 'टैक्ट' शब्द के मुकाबले का शब्द बंगला में नहीं है ?

इसी राजनयिकता के षड्यन्त्र से ही आज मैं मुख्यमन्त्री हूँ।

एक दिन चुनाव के पहले मैं ही महल्ले-महल्ले में भाषण दिया करता था—"आप हमें वोट दें, हम आपको नौकरी देंगे। हम तमाम पाठशालाओं की शिक्षा निःशुल्क कर देंगे। देश से अनाज की कमी को दूर कर देंगे। देश से अशिक्षा और बेकारी को दूर भगायेंगे···"

इसी तरह की बहुत-सी बातें कहकर हमने मतदाताओं को बहकाया है। हमने उन्हें अपने दल में खींचा है। हम लोगों की बात पर विश्वास कर उन लोगों ने हमें वोट दिये थे। हमेशा से यही चला आ रहा है। हमारी पार्टी के पहले जो पार्टी थी उसने भी ऐसी ही राजनयिकता की थी। आदमी की कमजोर रगों को गुदगुदाकर हमने उनसे वोट वसूला है। लेकिन हम वचनबद्धता का कभी पालन नहीं कर सके। या यों कह सकते हैं कि नहीं किया। जब-जब उन लोगों ने वचनबद्धता की बात चलायी, बहाने बना-बनाकर हमने उन्हें सान्त्वना दी। सिर्फ मैं ही क्यों, हम लोगों के बाद भी जो पार्टी आयेगी उसके मुख्यमन्त्री भी इसी तरह कूटनीति से काम लेंगे। इसी तरह मिथ्या सान्त्वना देकर वोट वसूलेंगे। और आज मैं जहाँ बैठा हूँ, वह भी किसान सम्मेलन का उद्घाटन करने के लिए इसी कमरे में इसी जगह बैठेंगे। और तब भी प्रतिपक्ष नारे लगाकर हुल्लड़बाजी मचायेगा।

और यहाँ का एस॰ डी॰ ओ॰ ? एस॰ डी॰ ओ॰ मिस्टर राय क्या करेगा ?

मेरे बाद जो दूसरा मुख्यमन्त्री यहाँ आयेगा, उसकी सुरक्षा के लिए तब इसी तरह सादे लिबास में पुलिसों को भेजेगा। जब मैं दमदम जेल में था तब वहाँ के जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट ने हाथ जोड़कर मुझसे कहा था, "कृपया आप लोग गोलमाल मत करें। हम लोग नौकरी करते हैं। जब जो मन्त्री होते हैं, हमें उन्हीं का सम्मान करना पड़ता है। जब आप लोग जेल आये हैं तो जेल के नियम-कानूनों का आपको पालन करना पड़ेगा।"

याद है, बहुत दिनों के बाद और एक बार मैं दमदम के कैदखाने गया था। मेरे साथ मेरा सचिव और कारावास-मन्त्री भी थे। मेरे स्वागत-सत्कार की यथेष्ट तैयारियाँ की गयी थीं। वह कैदखाना अब पहले जैसा कैदखाना न था। मैं कैदखाने को देखने जा रहा हूँ, यह जानकर दीवार-फर्श वगैरह साफ किये गये थे, चूने से कमरों की पुताई की गयी थी। सब-कुछ चमक-दमक रहे थे।

पहले का ही जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट था। पता नहीं, उसने मुझे पहचाना या

नहीं। वह बार-बार 'सर' कहकर मेरा आदर-सम्मान करने लगा। तब वह काफी वयस्क हो चुका था। शायद शीघ्र ही रिटायर्ड होनेवाला था।

जब सारा काम हो चुका तो मैंने उससे एकान्त में पूछा, "आपने मुझे पहचाना मिस्टर बनर्जी ?"

जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट ने विस्मय में आकर कहा, "हाँ, सर !"

"आप कब रिटायर्ड होने जा रहे हैं ?"

"दो साल और बाकी है।"

"आपका नौकरी का जीवन कैसा रहा ?"

जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस्टर बनर्जी क्या उत्तर दे, यह बात उसकी समझ में नहीं आयी।

मैंने दुबारा पूछा, "कहिए न ! आपने अंग्रेजों का जमाना भी देखा है और स्वदेशी काल भी देख रहे हैं। आपको कैसा लगा ? आपके लिए डरने की कोई बात नहीं है।"

मिस्टर बनर्जी का भय सम्भवतः दूर हो गया।

"सच-सच कहूँ सर ?" उसने कहा।

"कहिए न," मैंने कहा, "मैं मुख्यमन्त्री की हैसियत से नहीं पूछ रहा हूँ बल्कि एक साधारण आदमी की हैसियत से ही पूछ रहा हूँ। आपने लाठी के प्रहार से मेरा हाथ तोड़ दिया था। याद है ?"

मिस्टर बनर्जी चुप रहा। उसके मुँह से पहले एक भी शब्द नहीं निकला, फिर उसने कहा, "ऐसा पहले भी होता था..."

मुझमें उत्सुकता जगी। "क्या ?" मैंने पूछा।

अंग्रेजों के जमाने में हम लोगों ने कैदियों पर जितना अत्याचार किया हमारी उतनी ही तरक्की हुई और वेतन में वृद्धि भी। अभी आप लोगों का जमाना है। अब भी हम कैदियों को जितना मारते-पीटते हैं हम लोगों की उतनी ही तरक्की होती है और वेतन में वृद्धि भी।

मैं अवाक् रह गया।

उसने फिर कहा, "मैं आदमी की हैसियत से ही आपकी बात का उत्तर दे रहा हूँ, जेलर की हैसियत से नहीं।"

मैंने पूछा, "मगर ऐसा क्यों हुआ, बता सकते हैं ? हम लोगों का देश अब आजाद हो गया है। अंग्रेज तो अब इस देश को छोड़कर चले गये हैं।"

मिस्टर बनर्जी ने कहा, "इसका उत्तर तो आप लोग ही दे सकते हैं।"

"फिर भी आप अपना विचार तो सुनायें। एक बार सुनना चाहता हूँ।"

मिस्टर बनर्जी को दुविधा का अनुभव हुआ।

उसके बाद संकोच दूर कर उसने कहा, "आप कुछ अन्यथा मत लें। पहले

मेरे स्टाफ के लोग रिश्वत लिया करते थे, यह आपको अच्छी तरह मालूम है ही। पहले आप लोगों से रिश्वत लेकर हम लोग बाहर से सिगरेट, बीड़ी वगैरह लाकर आप लोगों को दिया करते थे। आप लोगों की चिट्ठियाँ बाहर पहुँचाया करते थे। जरूरत पड़ने पर हम लोगों ने आप लोगों के हाथ में पिस्तौल, रिवाल्वर लाकर दिये थे। उनसे आप लोगों ने शत्रुओं की हत्या की थी। अब आप लोगों की सरकार है। अब आप लोग ही रिश्वत लेने को मना करें तो हम आपकी बात मानें ही क्यों? कभी आप लोगों ने ही हमें रिश्वत लेने की कला सिखायी थी। अब हम दूसरी बात क्यों मानें?"

मैं क्या कहता। चुपचाप सुनता रहा।

"और आपने कुछ देर पहले पूछा है कि मेरी नौकरी का लम्बा अरसा किस तरह गुजरा है। मैं उसका भी जवाब देता हूँ। मैं अपने स्टाफ के हर व्यक्ति को आपके पास बुला सकता हूँ। जो लोग पुराने हैं वे जरूर ही कहेंगे कि इस जमाने से अंग्रेजों का जमाना कहीं अच्छा था..."

मैंने उसे टोकते हुए कहा, "लेकिन ऐसा क्यों हुआ, यही बात मैं आपसे पूछ रहा हूँ..."

मिस्टर बनर्जी ने कहा, "अगर मैं आपसे लगे हाथ पूछूँ कि आप लोगों ने ऐसा क्यों किया? आप लोगों ने ऐसा क्यों होने दिया? पहले मैं इस जेल में था और यहाँ नौकरी करता था। कैदखाने के बाहर जाते ही आजाद हो जाता था। लेकिन आज सारा देश ही कैदखाना बन गया है। ऐसा क्यों हुआ? मैं एक ओर जहाँ जेल का सुपरिण्टेण्डेण्ट हूँ वहीं दूसरी ओर एक बड़े कैदखाने का कैदी भी हूँ। बताइए तो इसका क्या कारण है? यह बात न केवल मेरे साथ है बल्कि मेरे साथ-साथ मेरी पत्नी, पुत्र, परिवार के सभी लोग कैदी हैं।"

फिर भी बात मेरी समझ में नहीं आयी और मैंने पूछा, "आपके कहने का तात्पर्य क्या है?"

"इसका तात्पर्य आपको भी समझना होगा। मेरे लड़के की ही बात लीजिए। उसने इंजीनियरिंग की परीक्षा अच्छी तरह से पास की है। उसकी इच्छा है कि वह विदेश जाकर ऊँची शिक्षा प्राप्त करे। मेरे पास जो पैसा है, उससे मैं उसे विदेश रखकर पढ़ा सकता हूँ। लेकिन उसे कैदखाने का बन्दी बनाकर रखा गया है। कुछ अन्यथा न लेंगे सर! आपका लड़का अगर विदेश जाना चाहे तो उसे कोई कठिनाई नहीं होगी। हम लोगों के प्रधानमन्त्री के नाती तो वहीं लिख-पढ़ रहे हैं और उनकी लड़की हमेशा अपने लड़कों को देखने के लिए वहाँ जाया करती है। जो भी रुकावट है हम लोगों के बाल-बच्चों के लिए ही है। और एक बात। उन लोगों के लिए अंग्रेजी भाषा है। वे लोग अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पढ़ते हैं और जब हम लोगों के बाल-बच्चों की बात

आती है तो उन्हें हिन्दी पढ़नी पड़ती है। अगर न पढ़ें तो नौकरी ही नहीं मिलेगी। यह भी एक तरह का कैदखाना नही है क्या ?"

उस दिन फिर मैं देर तक वहाँ नही रुका।

जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस्टर बनर्जी अब जरूर ही रिटायर्ड कर गया होगा। उससे मेरी फिर मुलाकात नही हुई। मिलने का अवसर ही नही मिला। लेकिन उसकी बातें मुझे आज तक याद हैं। बार-बार मैंने सोचा है कि यह बात क्या झूठ है ?

याद है, नुटु को भी एक बार जेल जाना पड़ा था। उस दिन नुटु और मै गाड़ी पर बोझा लादकर ले जा रहे थे। पीछे से घुंघरुओं को बजाता वैकुण्ठ आ रहा था। रेल-बाजार के पास आने पर पुलिस ने नजराने की माँग की। "ए छोकरे, तुमने नजराना नही दिया ?"

वह देहात का रहनेवाला बंगाल पुलिस का एक चौकीदार था।

नुटु ने कहा, "आज नजराना नही है चौकीदारजी !"

चौकीदार को बड़ा ही गुस्सा आ गया। तब ताँबे के दो पैसे चौकीदार को नजराने मे मिलते थे। इतना भी नही देगा !

चौकीदार ने तीखी जबान मे कहा, "बार-बार तुझसे कहा है कि नजराना दिये बगैर नहीं छोड़ूँगा। आज मैं नही छोड़ूँगा। चलो···"

नुटु का अपराध यही था कि गाड़ी में जितना माल लादना चाहिए उससे अधिक उसने लादा था।

नुटु ने हाथ जोड़कर माफी माँगी, "अबकी माफ कर दें चौकीदारजी। कल जरूर ही नजराना पेश करूँगा। मजदूरी मिलेगी तो चावल खरीदूँगा और तभी भात खाने को मिलेगा।"

लेकिन पुलिस हमेशा पुलिस ही रहती है। अंग्रेजों के जमाने मे जैसी थी, मेरे जमाने में भी वैसी ही है।

चौकीदार नुटु को पकड़कर ले गया। मै वैकुण्ठ को साथ लिये घर लौट आया। नुटु का बाप दिगम्बर हालदार रास्ते पर टकटकी लगाये बैठा था। लड़का जब चावल खरीदकर लौटेगा तब घर मे भात बनेगा।

मुझे देखते ही पूछा, "क्यों मुन्ना, नुटु क्यों नही आया ? नुटु कहाँ है ?"

मैंने उसे सारी बातें बतायी।

सब-कुछ सुनकर दिगम्बर हालदार कुछ देर तक गुमसुम बैठा रहा। फिर एकाएक उसने छलांग लगायी और हनहनाता हुआ सदर की ओर चल दिया।

नुटु की माँ चिल्ला पड़ी, "तुम कहाँ जा रहे हो ?"

दिगम्बर हालदार ने जाते-जाते कहा, "घर मे गुमसुम बैठे रहने से काम चलेगा ? घर मे बैठकर अँगूठा चूसूँ ?"

"फिर खाओगे क्या ?"

दिगम्बर हालदार ने कहा, "आज हारान चटर्जी को दमे से अधमरे की हालत मे देख आया हूँ। अगर वह बूढा अभी मर जाये तो मुझ खाने की फिक्र ही क्या ? अभी श्मशान जाने से कम-से-कम एक अद्धा तो मिलेगा..."

शंकर ने कहा, "सर, मिस्टर राय आये हुए हैं ?"

"मिस्टर राय कौन ?"

"मयनाडाँगा के एस. डी. ओ. ।"

एस. डी. ओ. मिस्टर राय कल से ही बेहद खट रहा है। किसी मन्त्री के आ जाने से एस. डी ओ लोगों को खटना ही पडता है। इससे एस. डी. ओ. लोग थोडा ऊबते हैं। न केवल एस. डी. ओ. बल्कि उसकी पत्नी और बच्चे भी खीजते है। मालिक को देखकर कौन ऐसा आदमी होगा जो खीजता न हो। मालिक जब तक सामने नही रहता तब तक नौकर ही मालिक रहता है। किसी के सामने उसे तत्काल कैफियत नही देनी पड़ती है।

एक राजा वेश बदलकर अपने राज्य मे घूमा करता था। घूमने का मकसद यही था कि वह जानना चाहता था कि प्रजा क्या करती और क्या सोचती है। एक दिन राजा रात मे घूमने के लिए निकला। उसने देखा कि महल का एक पहरेदार ताडीखाने मे बैठकर हल्ला-गुल्ला कर रहा है। बिना दाम चुकाये वह ताड़ी पी रहा है।

पहरेदार राजा को पहचान नही सका।

राजा ने कहा, "तुम इस तरह बेअदबी क्यों कर रहे हो ?"

पहरेदार तब नशे मे धुत था। उसने कहा, "खबरदार, राजा के पास ले जाऊँगा तो सारी हेकड़ी निकल जायेगी।"

राजा ने कहा, "तुम्हारे राजा साहब क्या बिना अपराध के सजा देंगे ? सबूत की माँग नहीं करेंगे ?"

प्रहरी ने कहा, "सबूत की जरूरत ही क्या है ? सबूत देखने का राजा के पास वक्त ही कहाँ है ? मैं जो कहूँगा, वही सबूत होगा ?"

राजा ने कहा, "ठीक है, तुम मुझे राजा के पास पकड़कर ले चलो। देखूँ तुममें कितनी ताकत है ?"

और राजा साहब ने अपनी देह की चादर उतार दी। पहरेदार का नशा हवा हो गया। वह राजा के पैरों पर गिरकर माफी माँगने लगा, "मुझे माफ कर दें हुजूर, मैं पहचान नही सका।"

यह एक पुरानी कहानी है। इस युग में उस तरह के पहरेदार यद्यपि हैं,

लेकिन राजा वैसा नहीं है। इस तरह का आज राजा होता तो उसे गद्दी छोड़कर भागना पड़ता।

कहानी का राजा पहरेदार को जैसी सजा देता था वैसा ही क्षमादान भी करता था। लेकिन आज का राजा न तो सजा देता है और न ही क्षमा करता है। प्रहरियों से वोट मिलते ही वह खुश हो जाता है। वोट का आश्वासन पाते ही प्रसन्न हो जाता है।

लेकिन मैं मिस्टर राय से वोट का आश्वासन नहीं चाहता हूँ। तब हाँ, आदमी तो आदत का गुलाम होता है न! वोट पाने के कारण मेरे पूर्ववर्ती मुख्यमन्त्रियों ने एस. डी. ओ. लोगों की इतनी खुशामद की है कि वे लोग भी खुशामद के अभ्यस्त हो गये हैं। सोचते है, मैं भी वैसा ही हूँ।

खुशामद बहुत-कुछ गीत की तरह की चीज है। एकतरफा होने से जमता नहीं, जिस तरह कि एक हाथ से ताली नहीं बजती है। जो गीत गाता है, वह तो गाता ही है। बल्कि जी खोलकर गाता है। लेकिन जो सुनते हैं वे भी गाते हैं। तब हाँ, वे मन-ही-मन गाते हैं। जो खुशामद करता है और जिसकी खुशामद की जाती है, उन दोनों को एक ही स्तर पर आना होगा। तभी खेल जमेगा। खुशामद करनेवाला जब कहेगा, "प्रभो, आप महान् है, तो खुशामद पानेवाले को चालाकी से उसे इकारना पड़ेगा। यह न हो तो वैसा ही लगेगा जैसे भोजन में कम नमक डाला गया हो।"

लेकिन मिस्टर राय उस जाति का अफसर नहीं है।

कमरे में आकर उसने कहा, "अब चलिए, समय हो गया है।"

यह जैसे उसी तरह की 'वेला बीतती जा रही है' आवाज है जो लाला बाबू के कानों में पहुँची थी। मुख्यमन्त्री को जीवन में काव्य-रचना का समय नहीं मिलता है, हालांकि आध्यात्मिकता करने का समय बीच-बीच में मिलता है। किसी-न-किसी महापुरुष की जन्मशती के उद्‌घाटन का उत्सव आता ही रहता है। वहाँ जाकर उस महापुरुष के स्वर्गगत आत्मा के कल्याण की कामना करनी ही पड़ती है। बड़े-बड़े वजनदार शब्दों के माध्यम से जीवन की नश्वरता व्यक्त करनी पड़ती है।

"सब-कुछ तैयार है सर!"

"लोग-बाग आ गये है?" मैंने पूछा।

शंकर ने कहा, "आने की बात कहते है! पण्डाल में बैठने के लिए हुड़दंग मच गया है। हर कोई आपका भाषण सुनने के लिए बेचैन है···"

"और वे लोग?"

"वे लोग हुल्लड़बाजी करने की कोशिश करेंगे, लेकिन मेरी पुलिस तैयार है। कुछ लोगों को सादे लिबास में भी चारों तरफ छोड़ दिया है···"

बत्तीस

याद है, आने के समय नयी अम्मा ने कहा था, "हम लोगों को बिल्कुल भूल मत जाना बेटा ! बीच-बीच में आना..."

बीच-बीच की बात तो दूर है, मैं इस घर में फिर कभी नहीं आऊँगा, यह बात जिस तरह मुझे मालूम थी, उसी तरह नयी अम्मा को भी। फिर भी उम्मीद रखने मे हर्ज ही क्या है ? जिस चीज को कभी पाने की उम्मीद नहीं हो, उसे माँगने में हर्ज ही क्या है ?

मेरे दर्शन के लिए तब चारो ओर बहुत लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। हर कोई टकटकी लगाकर मेरे चेहरे की ओर ताक रहा था। जैसे इस घर में मुझे ही देखने के लिए सभी आये हुए हैं। जो आदमी इस घर से हमेशा के लिए विदा हो गया वह उपलक्ष्य है, लक्ष्य तो मैं हूँ। मेरे स्वागत-सत्कार के लिए यह समारोह है, मेरे अभिनन्दन के लिए ही यह विशाल आयोजन है ! हाय रे, इसी का नाम दुनिया है, इसी का नाम है समाज। इसी समाज को लेकर हम गृहस्थी बसाते हैं, इसी समाज की भलाई के लिए हम इतने प्रयत्न करते हैं। इस छल और असभ्यता को ही मन-प्राणों से हम बरदाश्त करते हैं।

"अजय तुम्हारा वडा ही शरमीला भाई है।"

फिर अजय की ओर देखकर नयी अम्मा ने कहा, "अजय ने ओनर्स के साथ एम. एस-सी पास किया है। मालूम है न ? वह जहाँ नौकरी कर रहा है वह बडी ही खराब जगह है बेटा। वह चाहता है..."

मन में इच्छा हुई कि नयी अम्मा के गाल पर एक तमाचा जड़ दूँ। आदमी जितना सभ्य होता जायेगा, उतनी ही निष्ठुरता से स्वयं को छलता रहेगा ? स्वयं को छलकर आदमी इतना प्रसन्न क्यों होता है ? नयी अम्मा अगर दर-वान के द्वारा मुझे भगा देती तो मुझे वह इसके बनिस्बत कहीं अच्छा लगता। वह अगर पहले की तरह ही व्यवहार करती तो मैं क्या क्रोध में आ जाता ?

तब सन्देश मैं खा चुका था।

नयी अम्मा एकाएक बिगड़ उठी, "अरे, सन्देश दिया और पानी कहाँ है ?"

मुझे लगा कि नयी अम्मा जैसे नौकरों के बजाय मुझ पर बिगड़ रही हैं। नौकर पर बिगड़कर जैसे मुझे ही सीख देना चाह रही हैं और कह रही हैं, "मानती हूँ, तुम बड़े आदमी हो गये हो, लेकिन हम लोग भी छोटे नहीं हुए हैं और न थे ही। इस घर को देखो। इस मकान का मूल्य और भी बढ़ गया है। जिस तश्तरी में तुम्हें खाने को दिया है, उसको ठीक से देखो। वह ऐसी-वैसी तश्तरी नहीं है—चाँदी की तश्तरी है। और वह जो काँच का गिलास है वह बिल्कुल विदेशी है—बेलजियम ग्लास। और उस फर्नीचर की ओर देखो।

अलमारी देखो। कुरसी, सोफा और कोच की ओर देखो। हर चीज चीनी बढ़ई के द्वारा बनायी गयी है। लेकिन जिस चीज पर तुम्हारी नजर नही पड़ रही है, वह और भी ज्यादा कीमती है। मेरे नाम से दो लाख रुपयों का शेयर खरीदा गया है। उसकी कीमत अब दस गुना बढ़कर बीस लाख रुपया हो गयी है। इसके अलावा मैं अब विधवा हो गयी हूँ, अब कीमती जड़ाऊ गहने नही पहन पाती हूँ। अन्यथा तुम देखते कि उनकी कीमत कई लाख रुपये है। अतः तुम यह मत सोचो कि तुम्हारी टुकड़ियों पर जीने के लिए अब मै नीचे आ गयी हूँ!"

"अरे पान दो पान। तुम लोग कहाँ चले जाते हो?"

मैं पान नही खाता। लेकिन न खाने से क्या होगा। पान देने मे तो कोई दोष नही है। दो-चार नौकरो मे होड़ लग गयी कि कौन पान लाकर देगा।

"मैं पान नहीं खाता।"

लेकिन कोई मानने को तैयार हो तब न। तब तक चार-पांच व्यक्ति तश्तरी में पान लेकर पहुँच गये थे। हर व्यक्ति के हाथ में हर तरह की तश्तरी थी। कोई ताँबे की थी, कोई पीतल की, कोई कांच। कोई···

"अरे, इस तश्तरी मे पान देने को किसने कहा? चाँदी की तश्तरी कहाँ है?"

एक आदमी को अजय ने लगभग धकेल ही दिया।

नयी अम्मा ने पुत्र की बात पर आपत्ति करते हुए कहा, "नही। यह चाबी लो, मेरी अलमारी में सोने की तश्तरी रखी हुई है, उसी मे पान ले आओ। छिः-छिः, यह बड़े शर्म की बात है! कही कांच की तश्तरी में पान दिया जाता है!"

और अपने आंचल से चाबी निकालकर उन्होंने अजय के हाथ में दी। अजय चाबी से कमरे की अलमारी खोलने लगा।

तब मेरी सहनशीलता जवाब दे चुकी थी? मैं श्राद्ध-घर में आया हूँ या विवाह-घर में? मेरे सामने जैसे वैभव-प्रदर्शन की प्रतियोगिता चल रही है। मुझे यह जताने की जी-जान से कोशिश चल रही है कि देखो, घर के मालिक की मृत्यु हो जाने के बावजूद हम अभी अनाथ नही हुए हैं। आज भी हमारे पास पहले की तरह ही सोना-चाँदी, रुपया-पैसा, गहने-लत्ते वगैरह हैं। आज भी हम अच्छी हालत में हैं।

त्रैलोक्यदा पूछते थे, "फिर क्या हुआ?"

फिर एक दिन मैं जेल से रिहा हुआ। जन्म के समय बच्चे में अनुभूति

रहती है या नहीं, मालूम नहीं अनुभूति रहने पर अन्धकार से प्रकाश की ओर आने पर मन में क्या भावना जागती है, कह नहीं सकता। लेकिन कारावास से बाहर निकलने पर अपने चारों ओर आकाश और पृथ्वी को देखकर मुझे लगा जैसे मैंने पृथ्वी पर नया जन्म ग्रहण किया है। मुझे लगता है, बीच-बीच में नया जन्म ग्रहण करना आदमी के लिए अच्छा है। एक बार जन्म लेने से आदमी शीघ्र ही वृद्ध हो जाता है। लेकिन सूर्य नित्य नया जन्म ग्रहण करता है, इसी-लिए पृथ्वी अपने यौवन को अक्षुण्ण रखती है। लेकिन आदमी जन्म लेता है तो मृत्यु तक उसका जन्मान्तर होता ही नहीं।

कैदखाने के सामने मेरे स्वागत में कोई नहीं आया है, यह देखकर मुझे बड़ा ही अच्छा लगा। यही तो अच्छा है। नये सिरे से जीवन की शुरुआत करने के लिए मैं एकबारगी निस्संग था। उस दिन भी इस पृथ्वी पर अकेला ही आया था, फिर घर छोड़ने के बाद मेरी मृत्यु हुई थी। लेकिन आज जैसे भ्रूण की स्थिति में दुबारा इस पृथ्वी पर पाँव रखा। यह वही मिट्टी है जिस मिट्टी पर मैंने इसके पहले एक बार और अपने पाँव रखे थे। कहाँ और किधर जाऊँ, समझ में नहीं आया। पैदल चला जा रहा था। सड़क पर ट्राम और बसें जा रही थीं। लोग-बाग दफ्तर जा रहे थे। सभी व्यस्तता में डूबे हुए थे। केवल मैं ही था जिसे कोई काम नहीं था। मैं बेकार था।

लोगों से पूछते-पाछते कांग्रेस के दफ्तर में पहुँचा।

बहू बाजार का कांग्रेस का दफ्तर तब बन्द था। सामने कई ताले लटके हुए थे। वहाँ जाकर मैं कुछ देर तक रुका रहा। फिर विपरीत दिशा की ओर पैदल जाने लगा।

अचानक सड़क पर किसी ने पुकारा और मेरी चेतना वापस आयी।

"कौन ? ज्योति हो ?"

मैंने उसे पहचाना। हम दोनों जेल में बहुत दिनों तक एकसाथ थे।

उसने कहा, "तुम यहाँ किसलिए ? कब रिहा हुए ?"

मैंने कहा, "आज, अभी-अभी !"

"घर नहीं गये ?"

मैंने कहा, "अब घर नहीं जाऊँगा।"

"लगता है, घर से निकाल दिया है। फिर कहाँ ठहरोगे ?"

"यही तो सोच रहा हूँ।"

"महेशपुर चलोगे ?"

"कहाँ है ?"

"चलो, वहाँ हम लोगों ने गांधी आश्रम बनाया है। चरखा चलाया जाता है, करघे पर बुनाई होती है, गो-सेवा की जाती है। चलो…"

बस, वही से मेरे इस काम की शुरुआत हुई। वही मैने सीखा कि मनुष्य को स्वतन्त्रता की आवश्यकता है और स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। रूसो की पुस्तक मे पढ़ा था—"Man is born free but everywhere he is in chains."[१]

लेकिन लेनिन से दूसरी बात सुनने को मिली। लेनिन ने कहा है, "आदमी स्वतन्त्रता नही, ताकत चाहता है।" बात करने की ताकत, सुख-शान्ति से जीने की ताकत और कितनी ही अन्य तरह की ताकतें जिनका कोई अन्त नहीं। वही ताकत जिसे अंग्रेजी में 'पावर' कहते है। उसी ताकत का लोभ हर व्यक्ति में था। मैंने भी स्वतन्त्रता की इच्छा नही की थी। बल्कि सिर्फ ताकत की ही चाह की थी। इस ताकत की लड़ाई मै न केवल अंग्रेजों से लड़ा हूँ बल्कि अपने देश के लोगों से भी लड़ा हूँ। मेरे जो लोग सहकर्मी हैं, उनसे भी ताकत की लड़ाई लड़ा हूँ। अपने दोस्तों-मित्रों से मैंने प्रतिद्वन्द्विता की है। सभी को लँगड़ी मारकर स्वयं शीर्षस्थ होने की कोशिश की है। नेता बनने के लिए, ताकत बटोरने के लिए, मैंने कितना अन्याय, कितना अविचार और कितने ही असत्य आचरणों का सहारा लिया है। जो स्वतन्त्रता हर व्यक्ति को मिलनी चाहिए, उसे मुट्ठी-भर लोगों ने मिलकर आपस में बाँट लिया है। और ताकत की ही बात लें तो तमाम लोगों की ताकत छीनकर मैं जिससे ताकतवर हो सकूँ, इसी की मैने चेष्टा की है। उस चेष्टा मे सफल होने के कारण ही आज मै मुख्यमन्त्री हूँ।

मैं गाड़ी में बैठ गया।

अजय ने जल्दी-जल्दी आगे बढ़कर मेरे चरणों की धूल ली।

मन में सोचा—लेने दो। पैरों की धूल लेने दो। मैं इसमे अड़चन नही डालूंगा। काम निकालने के दुनिया में जितने उपाय हैं, वह सबको अमल में लाये। दुनिया मे आम लोगों की निगाह मे ऊँचा दिखने के लिए जो न केवल पैरों की ही धूल लेता है बल्कि जूतों की धूल लेने में भी जो पीछे नही हटता है, वही आधुनिक काल के कर्मठों का प्रतीक है। बैरिस्टर मिस्टर सेन का पुत्र होकर वह इतना भी न कर सके तो फिर वह पिता का पुत्र ही कैसा!

नयी अम्मा भी गाड़ी के निकट आकर खड़ी हुई। ड्राइवर ने जब इजिन को चालू किया तो नयी अम्मा ने कहा, "फिर आना बेटा…"

सोचा था, अपने कारावास-जीवन का वृत्तान्त लिखकर रख लूँ, ठीक वैसे ही जैसे कि लोग डायरी लिखा करते हैं। उसके लिए एक कापी का भी इन्तजाम किया था। अब साफ-साफ याद नही आ रहा है, लेकिन जहाँ तक मुझे याद है, दो-तीन दिन कुछ लिखा भी था। वह कहाँ खो गयी पता नहीं। अच्छा

---

१. आदमी स्वतन्त्र पैदा होता है लेकिन सर्वत्र जंजीरों से जकड़ा पाया जाता है।

हुआ कि खो गयी । उतनी मेहनत करने का समय अब किसके पास है । सम्भवत: डायरी लिखना आत्मकथा लिखने मे सहायक होता है । लेकिन मैं आत्मकथा नही लिखूंगा । जो लोग आत्मकथा लिखते हैं उनमें प्रच्छन्न रूप में एक प्रकार का अहंकार रहता है । रूसो की 'कानफेशन' पुस्तक के प्रारम्भिक परिच्छेद में चाहे जितनी भी विनम्रता की अभिव्यक्ति क्यों न रहे लेकिन असल में वह भी अहंकार ही है । अहंकार का अर्थ है आत्म-प्रचार । अपने अहंकार की अभिव्यक्ति ।

अंग्रेजी मे एक वाक्य है : "Popularity is a crime from the moment it is sought; it is only a virtue where men have it weather they will or no."[1]

यह कहना गलत होगा कि मैंने लोकप्रियता की चाह नही की है । लेकिन लोकप्रियता के लिए स्वार्थों को त्यागना पड़ता है । क्या यह कहने के लिए मैं कभी तैयार था ? आदमी को दोष देना वृथा है । खुद मैं भी तमाम दोषों से अलग नहीं हूँ । डायरी लिखने पर अपने गुण-गान के साथ-साथ अपने अवगुणों और गलतियों को भी तो लिखना पड़ेगा । उन्हें सबके सामने जाहिर करने का साहस मुझमें कहाँ है ?

हो सकता है कि बात ऐसी नही है । और नही है, यही सोचकर सम्भवत: मैंने कभी डायरी नही लिखी । इसके अतिरिक्त मुझे अपने-आप पर भी कभी क्या पूरा विश्वास रहा है ? ईसा मसीह ने कहा है, "पुराने कपड़े मे नये कपड़े का पैवन्द लगाने से कपड़ा शीघ्र ही फट जाता है ।" हो सकता है कि मैंने यही किया हो । रामकृष्णदेव कहा करते थे—"नयी हांड़ी में दूध रखने से वह ठीक रहता है, लेकिन जिस हांड़ी मे दही जमाया जा चुका है, उसमे रखने से दूध बरबाद हो जाता है ।" मुझे भी कभी-कभी लगता है कि मैं बरबाद हो चुका हूँ । लेकिन बरबाद होने की बात किसी से कह नही पाता हूँ । किससे कहूँ ? कौन इस तत्त्व को समझेगा ? याद है, किसी सभा-सोसाइटी में जाता हूँ तो अब भी मेरी निगाह फोटोग्राफर की ओर ही रहती है । वह इसलिए कि मेरी तसवीर अच्छी निकले । जब मैं मुख्यमन्त्री नही था तब मुझमें लोभ की मात्रा और अधिक थी । सोचा करता था कि क्या करने और क्या कहने से समाचार-पत्रों के प्रथम पृष्ठ पर मेरा नाम छपेगा । तब गरम-गरम बातें करने का लोभ था । कपड़े-लत्ते और भी सँवरे हुए हों, इस पर ध्यान रखा करता था । अब मैं मुख्य-मन्त्री हो गया हूँ । अब मेरे साथ कोई दिक्कत नही है, अब जो भी दिक्कत है,

१. लोकप्रियता उसी क्षण अपराध बन जाती है जब उसकी चाह की जाये, वह तभी वरदान होती है जब बिन माँगे प्राप्त हो जाये ।

वह फोटोग्राफरों के साथ है। मेरी तसवीर खराब निकलेगी तो उन्हीं की बदनामी होगी।

याद है, दूसरे दिन अखबारों में बैरिस्टर सेन के श्राद्ध की खबर विस्तार के साथ छपी थी। और वह इसलिए कि वह मुख्यमन्त्री के पिता थे।

लेकिन जब मैं महेशपुर आश्रम मे था, किसी ने मेरी कोई खोज-खबर न ली। अखबारों के संवाददाताओं की बात तो दूर, हमे खाना मिल रहा है या नहीं, इसके बारे में भी कोई खोज-खबर नहीं रखता था। हम लोग अपने-आप अपने-अपने कपड़ों को कुएँ के पानी में फीचते थे। बाल्टियों में पानी भर-भर कर ग्रोसारे, कमरे और रसोई-घर को साफ किया करते थे। गाँववाले यदि कोई साग-सब्जी दे जाते थे तो हम आराम से खाते थे। जिस दिन कुछ नहीं रहता, हम निराहार रह जाया करते थे।

देश-सेवा उन दिनों कठिन साधना थी। हम लोगों का चरित्र आदर्श होगा तभी न दूसरे-दूसरे लोग उस आदर्श का अनुसरण करेंगे! गाँववालो के लिए भी हमारी मदद करने में अनेक अड़चनें थीं। पुलिस के जासूस रात-दिन आस-पास पहरा देते रहते थे और पता लगाते रहते थे कि हम लोगो की खोज-खबर कौन-कौन लेते हैं और कौन-कौन हम लोगो से मिलने-जुलने के लिए आते रहते है। लेकिन दरअसल हम अहिंसा में आस्था रखते थे। हम लोगो में खोट कौन निकाल सकता था।

फिर भी पता नही क्यों, पुलिस ने आकर हम लोगों के आश्रम में ताला बन्द कर दिया। हम लोग नजरबन्द हो गये।

अपराध इतना ही था कि हम लोग रात्रि-पाठशाला चलाते थे और वहाँ गाँव के अनपढ़ों को पढ़ाया करते थे। पढ़ाने का मानी यही था कि हम लोग उनके मन में स्वदेशी-मन्त्र फूंक देते थे। यह शिकायत अदालत पहुँचती तो टिक नही सकती थी। लेकिन ब्रिटिश सरकार इतनी बेवकूफ नही थी कि अदालत भेजती। अंग्रेजों ने जिस अदालत को खुद बनाया था उस अदालत पर भी वे विश्वास नहीं करते थे और यही वजह है कि अंग्रेज-सरकार इतने दिनों तक टिकी रही।

शंकर को देखकर यही बात याद आती है।

सुबह ही शकर से पूछा, "तुम कभी जेल गये हो शंकर?"

शंकर इस प्रश्न से पहले अचकचा गया। फिर उसने कहा, "मैं जेल क्यों जाऊँगा ज्योतिदा?"

मैंने कहा, "बात तो ठीक ही है। उस वक्त तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ होगा।"

शंकर ने कहा, "जेल गया होता तो अच्छा होता सर..."

"क्यों ?"

"जेल गया होता तो मण्डल कांग्रेस का एक उच्च पद मिला होता। अभी तक एक साधारण सदस्य बना हुआ हूँ। लेकिन जो लोग उन दिनों जेल गये थे उनमें से कोई उपाध्याय, कोई मन्त्री और कोई उपमन्त्री है। मैं बहुत दिनों से काम कर रहा हूँ मगर अब तक मेरी तरक्की नहीं हुई है! आप आये हैं, अगर आप जरा कह दें..."

बस वही बात—नौकरी और तरक्की! लेकिन यह अगर न हो तो ये लोग इतने दिनों से काम कर ही क्यों रहे हैं। खाली पेट रहकर देश-सेवा करने के दिन लद चुके है।

"जानते हैं ज्योतिदा, मेरे जितने भी बड़े भाई हैं, सब-के-सब काफी शिक्षित हैं। बड़ी-बड़ी नौकरी पाकर वे बाहर चले गये हैं। एक दिल्ली में रहते है और एक बम्बई मे। वे लोग पैसा भेजा करते है तभी घर का खर्च चलता है। मैं तो आवारा ठहरा। मै कांग्रेस का काम करता हूँ इसलिए भाईसाहब मुझे आवारा कहते है..."

मैंने शंकर की ओर फिर गौर से देखा।

शंकर ने कहा, "आप मेरे लिए कुछ-न-कुछ अवश्य कर दें ज्योतिदा। अन्यथा मैं माँ और बाबूजी को अपनी सूरत नहीं दिखा पाऊँगा। माँ और बाबूजी का कहना है कि कांग्रेस का काम करते-करते बहुतों को कोई-न-कोई सहारा मिल गया है और तुम आवारा रह गये।"

याद है, शंकर की बातें सुनकर मुझे अपनी भी बात याद आ गयी थी। मैं भी एक दिन शंकर की तरह ही सगे-सम्बन्धी और मां-बाप की आँखों का कांटा बन गया था। लेकिन उसकी वह हालत और मेरी यह हालत क्यों हुई? फिर क्या अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग तरह के कानून हैं? जिस कानून के चलते मैं मुख्यमन्त्री बना हूँ उसी कानून के चलते शंकर हमेशा इस तरह का स्वयं-सेवक क्यों रहा? दरअसल शंकर कांग्रेस का सदस्य है लेकिन उसका मन नौकरी की ओर लगा हुआ है। रामकृष्ण ने कहा है, "सूअर का मास खाने के बावजूद जो ईश्वर को स्मरण करता है, वह धन्य है और हवन करने के बावजूद जिसका ध्यान कामिनी-कंचन में लगा रहता है, वह धिक्कार के योग्य है।"

जानता हूँ, आज धर्म की बात कोई नहीं सुनता है। धर्म-कथा अब परित्यक्त हो रही है। लेकिन धर्म और सत्य क्या अलग-अलग हैं। सत्य को नजरअन्दाज करके आज तक कोई कुछ हो सका है? नेपोलियन के पतन का मूल कारण था अधर्म और असत्य। तब फ्रांस के लोग सत्य या असत्य—चाहे जिस उपाय से क्यों न हों—राज-कृपा के आकांक्षी थे। इसी वजह से वह नहीं टिका। रोम-साम्राज्य के पतन के समय रोमन पशु हो गये थे, यह बात गिब्बन साहब की

पुस्तक में लिखी हुई है। उस समय पुत्र-माँ एवं पिता-पुत्री में अवैध अनाचार का बोलवाला था। मुगल साम्राज्य के पतन होने की सूचना उसी दिन मिल गयी थी कि जिस दिन पुत्र ने पिता को वन्दी वना लिया। वादशाह शाहजहाँ ने इतनी औरतों के साथ ऐशो-आराम किया कि उसके गुनाहों का नतीजा भोगना पड़ा बहादुरशाह और बंगाल के आखिरी नवाब सिराजुद्दौला को। धर्म को वाद भी दिया जा सकता है लेकिन सत्य को तो मानना ही पड़ेगा। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है—इसे धर्म के रूप में स्वीकार नहीं भी कर सकते हो लेकिन इसे वैज्ञानिक सत्य कहकर तो मानोगे न ! वही सूर्य अगर पूरब के आकाश में न उगे तो पृथ्वी घूम सकती है ?

"फिर देर क्यों कर रहे हैं सर ? उठिए।"

"हाँ, उठता हूँ।"

सूर्य भी हर रोज प्रात काल इसी तरह कहता है, "हाँ उठ रहा हूँ।" और वह क्योंकि उगता है इसीलिए पृथ्वी नया जन्म ग्रहण करती है। काश, मेरे उठने से वंगाल प्रान्त नया जन्म लेता। जानता हूँ, मेरे उठने से जो होगा, बैठे रहने से भी वही होगा। कारण यह है कि मैं तो कोई सूर्य हूँ नहीं। सूर्य की तरह पुनः कोई नयी शक्ति यहाँ पैदा होगी तभी उस शक्ति के उदय के साथ-साथ यह देश नया जन्म लेगा। इस वात को सम्भव करके दिखाया था राममोहन राय ने, विद्यासागर ने, विवेकानन्द ने…"

"चलिए, नीचे गाड़ी खड़ी है।"

सीढ़ियाँ उतरकर गाड़ी के अन्दर जाकर मैं बैठ गया। मुझे देखने के लिए काफी लोग जमा हो गये थे। जिस दिन से मैं मुख्यमन्त्री वना हूँ, उसी दिन से मुझे इसके चलते शर्म का अहसास होता है। अपनी हीनता पर मुझे शर्म लगती है। दरअसल वे लोग ज्योतिर्मय सेन को देखने नहीं आते है, बल्कि पश्चिम बंगाल के मुख्यमन्त्री को देखने आते हैं। गाँव के जमीदार को सभी सर झुकाकर प्रणाम करते हैं। वह इसलिए कि वह गाँव का जमीदार है। फिर जमीदार के मरने के बाद जब उसका लड़का जमीदार होता है तो लोग उसको भी सर झुकाकर प्रणाम करते हैं। वह जमीदार अगर लम्पट, पियक्कड़, डाकू या गुण्डा रहता है तो भी सर झुकाकर लोग उसे प्रणाम करते हैं। जमीदारों की जमीदारी ही लोगों में भक्ति पैदा करती है और राइटर्स विल्डिंग की मेरी कुरसी ही मेरे प्रति लोगों में भक्ति जगाती है। लेकिन उन्हें यह मालूम नहीं है कि इसके चलते मैं खुद को शर्मिन्दा महसूस करता हूँ, मुझे इससे घुटन मालूम पड़ती है और मैं इसे घृणा की दृष्टि से देखा करता हूँ।

एस. डी. ओ. मिस्टर राय गाड़ी में बैठने के वाद कहने लगा, "यह सड़क अबकी जिला परिषद् के द्वारा बनवायी गयी है। पहले मयनाडाँगा में कुछ भी

नहीं था। अब यहाँ एक जूनियर हाईस्कूल खुल गया है। दो बेड का एक अस्पताल भी खुल गया है। अब गाँव के लोगों को कोई तकलीफ नहीं है।"

"तकलीफ नहीं है?"

"नहीं, तकलीफ बिलकुल नहीं है।"

मैंने कहा, "आप आदमी की तकलीफ दूर कर सकते हैं मिस्टर राय? सम्राट् अशोक भी यह काम क्या कर सका था?"

"मैं उस तकलीफ की बात नहीं कह रहा हूँ। मेरे कहने का मतलब है कि शिक्षा-दीक्षा, अस्पताल सबका प्रबन्ध हो चुका है। पानी का अभाव दूर हो गया है।"

"खाने-पीने की तकलीफ!"

एस. डी. ओ. ने कहा, "जमीन तो आप लोगों के हाथ में है सर! वह मेरे हाथ में नहीं है। दो साल पहले जगह-जमीन के चलते चालीस हत्याएँ हुई थीं। इस बार मैंने एक भी हत्या नहीं होने दी है।"

"अच्छा, दक्षिणपाड़ा में हालदार नामक कोई परिवार है? आपको यह मालूम है?"

"हालदार?"

मिस्टर राय ने एक पल सोचा फिर कहा, "आप कहें तो मैं पता लगा सकता हूँ। कहिए, क्या पता लगाना है? वे लोग क्या वहाँ के जोतदार हैं? उनका एक लड़का डॉक्टर है।"

"नहीं-नहीं, यह सब बात नहीं है।"

दक्षिणपाड़ा में हालदार नाम से और एक परिवार है। वे लोग वहाँ के पुराने बाशिन्दे हैं।

"पुराने बाशिन्दे का मतलब?"

"यानी किसी जमाने में वे लोग यहाँ रहा करते थे। लेकिन अब घर गिर गया है। अब यहाँ कोई नहीं रहता है। सभी कलकत्ते में रहते हैं।"

मैंने अब उसके बारे में कुछ भी नहीं कहा। बड़े आदमियों के अलावा किसी और के बारे में मैं पूछताछ कर सकता हूँ, इसकी मिस्टर राय कल्पना तक नहीं कर सकता है। मैं बाहर नजर दौड़ा-दौड़ाकर पुरानी जगह को नये सिरे से देखने की कोशिश करने लगा। छुटपन की वह पुरानी जगह जैसे मेरी दृष्टि में बिलकुल अजनबी लगने लगी। वह स्टेशन कहाँ चला गया? वह पेड़, जिसके नीचे मैं लेटा-लेटा सो गया था, कहाँ है? हाँ, वह पेड़ जहाँ बैलगाड़ी हाँकता हुआ नुटु आया था और सोया हुआ देखकर मुझे जगाया था और बैलगाड़ी पर बिठा लिया था। जहाँ बैकुण्ठ को मैंने पहली बार देखा था। ईंट का वह भट्ठा कहाँ है जहाँ नुटु मजदूरी पर खटा करता था? और वह बाजार कहाँ है? वह

केदार मुनीम कहाँ है जो नुटु से हर खेप पर कमीशन वसूलता था। धीरे-धीरे मुझे सब-कुछ याद आने लगा। याद आया, जब मैं बीमार था। दिगम्बर हालदार शायद अब जिन्दा नही है। नुटु की माँ भी मर गयी होगी। मेरी ही जब इतनी उम्र हो गयी तो उनका क्या कहना और नुटु ?

मैंने अचानक पूछा, "अच्छा, मयनाडाँगा का स्टेशन कहाँ है ? देख नहीं रहा हूँ।"

मिस्टर राय ने कहा, "वह पीछे ही छूट गया सर ! क्यों, आप उधर जाना चाहते हैं क्या ?"

मैंने कहा, "स्टेशन से गाँव की ओर जानेवाली सड़क पर बहुत बड़े-बड़े पेड़ थे। वे अब भी हैं क्या ?"

"हाँ, अभी तक हैं। तब हाँ, पहले किस तरह के थे, मुझे मालूम नही है। मैं तो यहाँ पिछले तीन सालों से हूँ।"

शंकर अगली सीट पर बैठा था। उसने पीछे की ओर मुड़कर कहा, "हाँ सर, अभी तक हैं। तब छुटपन मे जितने पेड़ों को देखा था, अब उतने नही है। कोलतार की सड़क हो जाने के कारण पेड़ एक-एक कर मर रहे हैं।"

मिस्टर राय ने एकाएक कहा, "आप इसके पहले यहाँ आ चुके हैं सर ?"

मैंने उस बात का उत्तर दिये बगैर पूछा, "यहाँ एक बाजार था न ?"

"यहाँ दो बाजार है सर ! एक हाट है। सप्ताह में एक बार हाट लगती है। एक नया बाजार बना है जहाँ हर रोज हाट लगती है।"

"वहाँ मास की दुकान है ?"

"हाँ, बगैर मास की दुकान रहे कैसे चल सकता है सर ? डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की ओर से हेल्थ इन्स्पेक्टर रोज आता है और मांस की चेकिंग कर जाता है। उसके बाद ही बेचने की अनुमति मिलती है।"

मुझे लगा कि किसान सम्मेलन जाने के बजाय मयनाडाँगा की सड़को पर चक्कर काटता रहूँ। फिर से यह देख आऊँ कि पुआल की आढत पहले जैसी है या नहीं। उस कसाई की दुकान की अब क्या हालत है। कलिमुद्दीन मियाँ जिन्दा नहीं होगा तो कोई-न-कोई अवश्य होगा। या तो उसका लड़का होगा या पोता। पता नही, अब भी वे लोग वैकुण्ठ जैसे कितनों को काटकर बेचते होगे।

और वह ईंट का भट्ठा ! जहाँ ईंटों का विशाल ढर लगा रहता था। वहीं नुटु मजदूरी पर खटा करता था। उसी कमाई से नुटु और उसके घर के लोगों का पेट-खर्च चलता था।

चारों तरफ खुला मैदान है और बीच-बीच में दो-चार मकान। ये मकान तब नही थे। चारों ओर मैदान था—मैदान और परती जमीन। मन मे लगा, क्या ही अच्छा होता यदि यह राइटर्स बिल्डिंग, यह कांग्रेस, यह सभा-समिति,

अखबार, प्रचार-प्रसार सबको छोड़कर अगर उस अतीत में लौट जाता जहाँ मुझे कोई जानता-पहचानता नहीं, कोई सलाम-वन्दगी नहीं करता, कोई मेरा नाम तक नहीं जानता। वहाँ अब लौटकर जाया नहीं जा सकता है? अकस्मात् मुझे बड़ा कष्ट मालूम होने लगा। जैसे मेरी छाती में दर्द होने लगा है। मुझे लगने लगा कि वही अच्छा था—वही नुटु और वैकुण्ठ के साथ घूमते-फिरते रहना, वही धूप में तपना और पेट-भर न खा पाना। मुझे बायरन की यह पंक्ति याद आने लगी: "The best of prophets of the future is past."[1]

उस दिन का वह छोटा बालक आज के मुख्यमन्त्री से ज्यादा खुशकिस्मत था। वह स्वाधीन था लेकिन आज का मुख्यमन्त्री जो चाहता है, कर नहीं पाता। वह राइटर्स बिल्डिंग छोड़कर एकाएक भाग नहीं पाता है। वह बड़ा ही पराधीन है।

मुझे लगने लगा कि सम्भवतः डायरी लिखने का नियम बहुत ही अच्छा है। डायरी पढ़ते-पढ़ते अन्ततः कुछ क्षणों के लिए अतीत में लौट सकता था। अब उसका उपाय नहीं है। मैं आज खो गया हूँ। वर्तमान और भविष्य के गोरख-धन्धे में लापता होकर अब मैं पैरों के नीचे की मिट्टी को टटोल रहा हूँ। लोग चाहे मुझे लाख भाग्यशाली समझें लेकिन मैं असहाय, निरवलम्ब और निस्संग हूँ।

"देखिए सर, यह हम लोगों का पण्डाल है।" मिस्टर राय की बात एकाएक कानों में आयी।

"पण्डाल तैयार करने में कितना खर्च बैठा है?"

"लगभग डेढ़ लाख रुपये।"

गाड़ी अचानक एक झटके के साथ रुक गयी। गाँव का किसान-जैसा दिखने-वाला एक व्यक्ति दबते-दबते बच गया।

मिस्टर राय ने बुड़बुड़ाकर कोई गाली दी और फिर कहा, "पट्ठे, तकदीर अच्छी थी कि बच गया..."

मैंने कहा, "न केवल उसकी बल्कि हम लोगों की भी तक़दीर अच्छी थी।"

कहने को तो मैंने कह दिया लेकिन मुझे लगा कि हम लोगों की तकदीर कतई अच्छी नहीं है। वह किसान ही नहीं बल्कि हम लोग सभी जैसे गाड़ी के पहियों के नीचे दब गये हैं—मैं, मिस्टर राय, शंकर। हाँ, डेढ़ लाख रुपये की गाड़ी के पहियों के नीचे हम सभी दब गये हैं।

गाड़ी फिर से चलने लगी।

---

१. अतीत ही भविष्य का सबसे बड़ा मसीहा होता है।

तैंतीस

मुझे ऐसे स्थान में रखा गया था जहाँ से पण्डाल बिल्कुल करीब था। किसी जमाने में वह स्थान परती जमीन था। वहाँ कोई काम नहीं होता था। फसल पैदा करने की बात तो दूर रही, मयनाडांगा में फसल पैदा करनेवाले लोग ही नहीं थे। फिर मवेशियों को चराने के लिए गाँव में जगह भी तो रहनी चाहिए। मवेशियों को खाना मिलेगा तभी न आदमी को भोजन प्राप्त होगा। आजकल मयनाडांगा में हर आदमी ने अपने-अपने खेत-खलिहानों को बाड़े से घेर लिया है। कोई किसी को अपने इलाके में घुसने नहीं देना चाहता है। इसका अर्थ है, यह मेरी खास जायदाद है और यहाँ किसी दूसरे का अख्तियार नहीं है।

यह बात मैंने मिस्टर राय से ही सुनी थी। सुनी थी और सुनकर सोचा था कि यह बात न केवल मयनाडांगा में ही है बल्कि सारी दुनिया में यही हो रहा है। कोई किसी को अपने इलाके में पैर नहीं रखने देता है। हम लोगों में से कोई किसी को बरदाश्त नहीं कर पा रहा है। सभी हमारे लिए पराये हैं। दूसरों को हमने पराया बनाकर रखा है इसीलिए हमें सब कोई पराया बना रहे हैं।

मिस्टर राय ने कहा, "ऐसी जगह नहीं है जहाँ ढोर-डाँगर चरें। न तो लोग घर में खिलाते हैं और न मैदान में ही चरने देते हैं···"

"फिर पण्डाल बनाने के लिए जमीन कहाँ से मिली?" मैंने पूछा।

मिस्टर राय ने कहा, "इसके लिए बड़ी ही चालाकी से काम लेना पड़ा है सर! जमीन का मालिक एक जोतदार है। उसे एक काम के लिए दो लाख रुपये का ठेका दिया।"

"काम क्या था?"

"सड़क की मरम्मत। यहाँ की सड़कें खराब हो गयी हैं, इन्हें ठीक कराना है। दूसरे-दूसरे ठेकेदार भी हैं। उसे दो लाख रुपये का ठेका दिया। उसके बदले में उसने यह जमीन हमें तीन दिनों तक उपयोग में लाने के लिए दी है।"

मैंने मन-ही-मन हिसाब लगाया। इससे उस आदमी को कम से कम एक लाख दस हजार रुपये की बचत होगी।

"उस आदमी ने यहाँ चना बोया था जो बर्बाद हो गया। उसकी कुछ-न-कुछ कीमत देनी ही पड़ेगी।"

मैंने सोचा, सो तो है ही। तीन बीघे में कम से कम दस मन चना उपजता। उस दस मन चने से हम लोगों के किसान-सम्मेलन का मूल्य कहीं अधिक है। दस मन चने से कितने आदमियों की भूख मिटायी जा सकती थी। उसके बनस्बित इस सम्मेलन के प्रचार से हम लोगों की पार्टी का बहुत अधिक लाभ होगा। इसमें जितना पैसा फूंका जायेगा उतना ही हम लोगों की पार्टी का प्रचार होगा।

ग्रौर इस युग में प्रचार ही सब-कुछ है। काम के गुण-ग्रवगुण के विचार की जरूरत नही है। सिर्फ प्रचार होना चाहिए। इस युग में प्रचार के बल पर ग्रौरत को भी मर्द कहकर चला दिया जाता है।

गाडी जब थोड़ी दूर ग्रागे बढ़ी तो पण्डाल के सामने भीड़-भाड़ दीख पड़ी। मयनाडांगा के किसान इसलिए खड़े थे कि कब मुख्यमन्त्री ग्रायें। दूर से देखा कि एक ऊँचा प्रवेश-द्वार बनाया गया है। प्रवेश-द्वार के ऊपर लाल सालू पर बड़े-बड़े ग्रक्षरों में लिखा है—'स्वागतम्'।

हो सकता है कि मैं ज्यों ही पहुँचूंगा, मुझे मंच पर ले जाया जायेगा। जैसा कि हर जगह हुग्रा करता है। मैं मंच पर जाकर ज्यों ही बैठूंगा छोटी-छोटी लड़कियों की एक जमात ग्राकर स्वागत-गान गायेंगी। ज्यादातर यह बेसुरा ही लगा करता है। लेकिन जहां हार्दिकता का स्पर्श रहे, वहाँ बेसुरा लगने से ही क्या होता है! इसीलिए जहाँ कहीं मैं गया हूँ, गीत के सुर के चलते मैंने माथापच्ची नही की है। ग्रादमी में ग्रगर ग्रादमियत है तो फिर उसकी पोशाक पर नजर डालने से क्या लाभ है!

मैंने ग्रौर यह भी देखा कि न केवल जनता बल्कि पुलिस भी पंक्तियों में खड़ी है।

मुझे ऊब जैसी लगी। "इतनी-इतनी पुलिसों को क्यों रखा गया है?"

मिस्टर राय ने कहा, "मैंने इसके सम्बन्ध में एस. पी. से बातचीत की थी। उनसे बताया था कि ग्राप पुलिस की सुरक्षा नही चाहते हैं। लेकिन एस. पी. राजी नही हुए। उन्होंने कहा कि मैं रिस्क नहीं ले सकता हूँ।"

मैंने पूछा, "रिस्क की बात ही क्या है?"

पूछा तो जरूर, लेकिन मैं जानता हूँ कि एस. डी. ग्रो. की बात ग्रक्षरशः सत्य है। ग्राज तेईस सालों से मैं मुख्यमन्त्री हूँ। इतने दिनों से हम लोग सभी को केवल सब्जबाग दिखाते ग्रा रहे हैं। ग्रौर सिर्फ मैं ही क्यों, मेरे जैसे दुनिया में जितने भी राजनीतिज्ञ हैं सभी ने जनता से केवल झूठी ही बातें कही हैं। जो विद्वान, बुद्धिमान ग्रौर चतुर है, वे राजनीति से कटकर ग्रलग हो गये हैं। कोई भी भला ग्रादमी, जिसमे भलमनसाहत का थोड़ा भी ग्रंश है, राजनीति की छाँह में पैर तक नही रखता है। चाहे सर्वसाधारण हो या बुद्धिजीवी, ग्राज कोई भी हमारे साथ नहीं है। ऐसा क्यों हुग्रा है? इसकी वजह यह है कि उन्हें हमने ग्रपनाया ही नही। हमारी निर्लज्जता, हमारी धूर्तता ग्रौर हमारी ग्रसज्जनता देखकर वे हमारे पास नही ग्राये।

ग्राज इतने दिनों के बाद उन लोगों ने हमारी शक्ल पहचान ली है। वे लोग समझ गये हैं कि एक दिन हमने झाँसा-पट्टी देकर उनसे वोट वसूले थे। ग्राज ग्रगर वे हमें मारने ग्राते हैं तो हम लोग पुलिस न बुलायें तो क्या करें? पुलिस

के अतिरिक्त हमारी रक्षा कौन करेगा ?

"एक बात कहनी है मिस्टर राय !"

"कहिए।"

मिस्टर राय ने मेरी ओर इस तरह देखा जैसे मेरा काम करके वह कृतार्थ हो जायेगा।

मिस्टर राय के देखने का जो भाव था वह मुझे बुरा लगा। मैं यह नहीं चाहता हूँ कि कोई मेरे आदेश का पालन करे। लेकिन मै क्योंकि मुख्यमन्त्री हूँ इसलिए मेरा अनुरोध भी आदेश ही है। इसके लिए मै जिम्मेदार नही हूँ, बल्कि यह मेरी कुरसी का दोष है। मेरी कुरसी अगर कोई गलती करती है तो मैं क्या करूँ ! हम लोग मुँह से कहते है कि हम जनगण के प्रतिनिधि हैं और जनगण के प्रतिनिधि बनकर हम सबसे वोट माँगते हैं, लेकिन जब हम कुरसी पर बैठते है तो जनता से अलग हो जाते है। इसके लिए बहुत कुछ जिम्मेदार मिस्टर राय जैसे लोग है। सरकारी दफ्तरों के अफसर। ये ही लोग जन-गण के प्रतिनिधियो को सरकार के प्रतिनिधि बना देते है। इन लोगों की खुशामदों की तपिश से ही हम लोगो का दिमाग खराब हो जाता है। ये ही लोग हर रोज सलामी ठोंक-ठोककर हमें भुलाये रहते हैं कि हम मन्त्री नहीं हैं, बल्कि देश-सेवक हैं और देश-सेवक कुरसी पर बैठकर ज्यों ही मन्त्री होते है, जनता से मन्त्रियो के विरोध की शुरुआत होने लगती है।

मैने पूछा, "नुटु नाम का यहाँ कोई आदमी रहता है ?"

"यहाँ ? इस मयनाडांगा मे ?"

"हाँ, उसका असली नाम है नुटु बिहारी हालदार। उसके बाप का नाम था दिगम्बर हालदार। वह दक्षिणपाड़ा का रहनेवाला है। मैं उससे एक बार मिलना चाहता हूँ।"

शंकर ने कहा, "मैं उसे बुलाकर ला सकता हूँ सर !"

मिस्टर राय ने कहा, "मैं अभी तुरन्त एस. पी. से कहे देता हूँ। एस. पी. पण्डाल मे ही है।"

मैंने कहा, "एस. पी. से कहने से वह डी. एस. पी. से कहेगा, डी. एस. पी. ओ. सी. से कहेगा, ओ. सी. कान्स्टेबल से कहेगा और कान्स्टेबल चौकीदार से कहेगा। आप लोगों का काम तो इसी सिलसिले से चलता है।"

"फिर आप कहे तो मैं खुद जा सकता हूँ।"

"नही," मैने कहा, "उसकी जरूरत नही है। आप अपने प्यून को ही भेजकर बुलवा लें तो काम बन जाये। कहिएगा कि मैं उससे एक बार मिलना चाहता हूँ।"

"पण्डाल में ही ले आऊँ ?"

मैंने कहा, "हाँ, अगर सम्भव हो तो उसे मंच पर ही ले आयें।"

"वह क्या किसान है ?"

"ठीक-ठीक किसान नही कहा जा सकता है। दरअसल खेती के लिए उसके पास अपनी जमीन है ही नही।"

मिस्टर राय सम्भवतः मेरी बात सुनकर हैरान हो गया। केस्टो से नहीं, विष्टु से नही बल्कि क्यों मैं मामूली वैसे मजदूर से मिलना चाहता हूँ जिसके पास जगह-जमीन तक नही है, उसके जैसे परले दर्जे के अफसर के दिमाग मे यह बात नही घुसी।

गाड़ी तब तक प्रवेश-द्वार के नीचे से होती हुई एकबारगी पण्डाल के सामने पहुँचकर खड़ी हो गयी। और साथ-ही-साथ जोरों से आवाज हुई, "वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम्..."

'वन्दे मातरम्' सुनकर मुझे एक किस्म की हँसी आयी। आजकल जिस नारे का कोई उच्चारण तक नहीं करता, जिस नारे को लगाकर एक दिन हम जेल गये थे, इतने वर्षों के बाद वही नारा मुझे नया जैसा लगा।

पहले मिस्टर राय उतरा। उसके बाद शकर।

मैं तब उतरा जब सब उतर चुके थे। सभी की श्रद्धा-मिश्रित अवाक् दृष्टि मुझ पर टिकी थी। जैसे मैं किसी और ही दुनिया का आदमी होऊँ। जैसे मेरे प्रति श्रद्धा की जा सकती है, भय किया जा सकता है। मैंने ध्यान से देखा, लोगों की दृष्टि मे प्यार का नामोनिशान तक न था।

चौंतीस

और लोग मुझे प्यार ही करेंगे ? मेरी कुरसी के कारण प्यार करें ? मैंने जो कुरसी प्राप्त की है उसके बदले मैंने उन लोगों के लिए क्या किया है ? मेरा जेल जाना क्या मेरा त्याग है ? जब स्वदेशी आन्दोलन का नेतृत्व किया था, अपने नेतृत्व को कायम रखने के लिए मैंने क्या अप्राण चेष्टा नहीं की थी ? जिससे मुझे सभी नेता के रूप में स्वीकार करें इसके लिए जुलूस में आगे बढ़कर मैंने पुलिस की लाठियों की मार सही थी। फिर स्वयंसेवकों को क्या-क्या काम दूँ इसके बारे में सोचते-सोचते कई रातो तक परेशान रहा था। जब-जब उन्हें लगातार काम नही दे पाता था, मुझे लगता कि मेरा नेतृत्व छिन जायेगा। अलाउद्दीन के चिराग के दानव की तरह उन लोगो का हाल था। अन्त में जब दिमाग में कोई बुद्धि नही आयी थी तो कालेज स्क्वायर जाकर 'देश की पुकार' जैसी वर्जित पुस्तक मैं पढ़ने लगा। पुलिस मुझे पकड़कर ले गयी और जेल में डाल दिया। मुझे जैसे

ज़िन्दगी मिल गयी थी।

इसी से तो कहता हूँ कि जेल जाना क्या कोई त्याग है ?

जेल के अन्दर कोई काम न करो तो भी तुम नेता ही रहोगे। नेता रहोगे फिर भी तुम्हारी कोई जिम्मेदारी नही होगी। संगी-साथी तुमसे कामों की माँग कर तुम्हें परेशान नहीं करेंगे। सिर्फ खाओ, पियो और सोये रहो। और तुम जब कि नेता हो इसलिए तुम्हे कैदखाने में प्रथम श्रेणी के कैदी के रूप में रखा जायेगा। सोने के लिए तुम्हे खाट-बिछावन औरमसहरी मिलेगी, पढ़ने को अखबार दिया जायेगा। वहाँ आराम से कुछ महीने बिताओ। तुम्हारी तन्दुरुस्ती लौट आयेगी। और जब तुम जेल से बाहर निकलोगे तो तुम्हारे भक्त तुम्हारे लिए फूलों की माला लिये खड़े मिलेंगे। वे तुम्हे कन्धेपर बिठाकर मैदान में ले जायेंगे। वहाँ तुम्हारा भाषण सुनकर तुम्हारे भक्तगण ताली बजायेंगे। मानो तुम शहीद हो। तुम्हारी तसवीर अखबारों में छपेगी।

यही तुम्हारा कैरियर है। जो डॉक्टर है, उन्हें पैसा खर्च करके पाँच-छह वर्षों तक डॉक्टरी पढ़नी पड़ी है। परीक्षा देनी पड़ी है। लेकिन तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ा है। तुमने केवल भाषण दिया है और जेल की सजा भोगी है। तुम्हारी योग्यता केवल इतनी ही है कि तुम जेल से हो आये हो। उस जमाने के विलायत से लौटे हुए लोगो के बनिस्बत तुम्हें अधिक सम्मान मिला है। क्यों ?

लेकिन आज !

आज तुम्हारी नब्ज टटोल ली गयी है। सभी जानते है कि तुम धोखेबाज हो। तुम्हारी धोखेबाजी पकड़ मे आ गयी है और इसीलिए तुम्हारी सुरक्षा के लिए पुलिस का इन्तजाम किया गया है। लेकिन यह कुरसी मिलने के पहले तुम्हें इस तरह अंगरक्षकों की सहायता से अपनी हिफाजत नही करनी पड़ती थी।

आज ज्योतिर्मय सेन अपने देश के लोगो के समक्ष ही जैसे पराये हो गये हैं। इतने सम्मान के आसपास ही इतना अपमान।

पूरी सभा मे तब निस्तब्धता छायी हुई थी। मयनाडांगा गाँव में यह पहला किसान-सम्मेलन होने जा रहा है। इसी से वे कृतार्थ हो गये हैं। तमाम साल जो दिन-भर खेतों में खटते रहते हैं वे आज खेत का काम छोड़कर सभा मे उपस्थित हुए है।

लेकिन स्वेच्छा से कोई भी नही आया है। क्यों नहीं आया है, इसका असली कारण ज्योतिर्मय सेन को मालूम है। उन्होने खुद भी एक दिन पार्टी का काम किया है। किसान बड़े ही निरीह प्राणी होते हैं। वे अपने खेत-खलिहानों के अतिरिक्त और किसी को नहीं जानते हैं, उन लोगों को बुलाकर लाना पड़ता है। उन्हें प्रलोभन देना पड़ता है। कहना पड़ता है कि सभा में आने से उनकी भलाई होगी।

यह जो आज यहाँ सभा हो रही है इसके लिए शंकर जैसे लोग इतने दिनों

से गाँव-गाँव में जाकर प्रचार कर आयें हैं। इसके लिए पार्टी के फण्ड से हजारों रुपये खर्च किये गये हैं। हजारों लीटर तेल जीपों में जलाया गया है। शंकर जैसे लोगों ने जीपों पर चढ़कर कितना तेल खर्च किया है उसका हिसाब सम्भवतः पार्टी के खाते में नहीं है। लेकिन लोग-बाग आये हैं।

ज्योतिर्मय सेन का हँसने को मन करने लगा। कितनी बर्बादी है, कितनी बड़ी धोखेबाजी ! हालांकि राजनीति में इसकी भी जरूरत होती है—इस आडम्बर, इस बर्बादी और इस तरह की चहल-पहल की। हमेशा से ऐसा होता आ रहा है। इसी तरह तो हम लोगों की मुट्ठी में ताकत आयी है। लेकिन इससे किसको क्या लाभ हुआ है ? अगर लाभ हुआ भी है तो वह लाभ मुझे हुआ है और मेरे जैसे मुट्ठी-भर लोगों को। और लाभ होगा तो शंकर जैसे लोगों को। लाभ होगा इसी वजह से आज वह इतना उत्साहित है।

शंकर हर वक्त हमारे इर्द-गिर्द मँडराता रहता है। शंकर को मालूम है कि मेरी कृपा-दृष्टि पर उसका भविष्य निर्भर करता है। उसके भाई उसके माँ-बाप के पास एक भी पैसा नहीं भेजते हैं। शंकर को पार्टी की ओर से जो मिलता है उसी से उन लोगों की गृहस्थी चला करती है।

शंकर ने ठीक ही कहा था कि कांग्रेस का काम करके इतने लोगों ने इतना कुछ हासिल कर लिया है और वह बेवकूफ का बेवकूफ ही रह गया।

इस सम्मेलन के खत्म होने के बाद, हो सकता है कि शंकर एक दिन राइटर्स बिल्डिंग आये। सिर्फ शंकर ही क्यों, यहाँ के मण्डल कांग्रेस के जितने भी मुख्य-मुख्य व्यक्ति हैं, सभी आयेंगे। किसी को भी असन्तुष्ट नहीं किया जा सकता है। सभी को परमिट या लाइसेन्स देकर अपनी गद्दी को बरकरार रखना पड़ेगा। अन्यथा वोट का समय नजदीक ही है। चुनाव के पहले फिर से यहाँ आकर मुझे सभा करनी है।

मैंने सामने की ओर गौर से देखा। कहाँ—नुटु कहाँ है ? नुटु भी निश्चय ही मेरी ही तरह बूढ़ा हो गया होगा। हो सकता है कि वह अभी मेरी ओर गौर से देख रहा हो। उसने अवश्य ही सुना होगा कि मैं आज यहाँ आया हूँ। लेकिन कौन उसे मेरे पास आने देगा ? चारों ओर सादे लिबास में पुलिस खड़ी है। वे लोग चारों ओर सतर्कता के साथ देख रहे हैं कि कोई कहीं बम न फेंक दे, कोई कहीं बिजली का तार न काट दे।

आश्चर्य है ! ज्योतिर्मय सेन हजारों लोगों की भीड़ में बैठे अपनी हीनता से अपने-आप संकुचित हो रहे हैं। जनता यह नहीं जानती है कि जिसके लिए वह आज सम्भ्रम के साथ इस सभा में उपस्थित हुई है वह अपने-आपको कितना असहाय महसूस कर रहा है। यह भी एक तरह की विसंगति है ! यह भी एक तरह का परिहास ह !

यहीं बैठे-बैठे उन्हें सारी बातें याद आने लगीं। राइटर्स बिल्डिंग के कमरे की वह निरापद कुरसी। उसी कुरसी पर बैठकर उन्होने कितने ही लोगों के भाग्य को बदल दिया हैं। इसी वजह से कितने ही लोग उन्हें ईर्ष्या की दृष्टि से देखा करते हैं। इसी कुरसी पर बैठने के लिए इतनी पार्टियाँ हैं, इतनी दलबन्दी। इतने वर्षों से उसी कुरसी पर बैठा हुआ हूँ, आज यदि कोई दूसरा व्यक्ति मुझे कुरसी छोड़ने को कहता हैं तो मैं नाराज क्यों होता हूँ? फिर क्या मेरे लिए कार्य-निवृत्ति नहीं है? इतने दिनों तक जब किसी का भला नही कर सका तो फिर कब किसका भला करूँगा? दरअसल कौन किसका भला कर सकता है? मेरे बदले जो लोग आयेंगे वे ही क्या देश के लिए कुछ भला कर पायेंगे? और दूसरे का भला करूँगा यह कहने से ही क्या भला किया जाता है? बहुत ज्यादा करूँ तो कोशिश कर सकता हूँ। लेकिन उस कोशिश के लिए तो स्वयं को प्रस्तुत करना पड़ेगा। मैंने क्या स्वयं को प्रस्तुत किया हैं? यह कुरसी मिलने के पहले मैं जो था, वह अब क्या हूँ? चरित्र-निर्माण के लिए मै सभाओं में भाषण दिये चलता हूँ। लेकिन मैने क्या अपना चरित्र-निर्माण किया है? जर्मनी के एक कवि ने कहा हैं, "We learn from history that we do not learn from history." मेरे पहले जो मुख्यमन्त्री था, उसे भी एक दिन जाना पड़ा था। चुनाव में जिस दिन मैंने उसे पराजित कर दिया उस दिन वह कितनी यातना में था। एक महीने तक उसे नींद नही आयी थी। चुनाव के दिन मिनट-मिनट पर खबर आ रही थी और वह हिसाब लगा रहा था। जब उसने हारना शुरू किया तो उसे धक्का लगा। दूसरे दिन जब पक्की खबर मिली तो वह मेरे घर आया।

मै उसे देखकर हैरत में आ गया।

मैने कहा, "मेरे लिए यह कितने सौभाग्य की बात है कि आपने आने का कष्ट किया!"

उस समय भी वह थर-थर काँप रहा था। जो आदमी राजनीति करता है वह इतना कमजोर हो सकता है, यह नही जानता था।

उसने कहा, "मै तुम्हें बधाई देने आया हूँ ज्योति! तुमने मुझे हराया है इसीलिए मैं खुश हूँ।"

मैंने पूछा, "इसका मतलब?"

"मतलब है कि *We learn from history that we do not learn* from history."[1]

यह बात पहले पढ़ी थी लेकिन याद नही थी। मैं नहीं हारूँगा तो हारेगा

---

1. *इतिहास पढ़कर हम यही शिक्षा ग्रहण करते हैं कि इतिहास से हम कुछ भी नहीं सीखते।*

कौन ? चुनाव में जीतने के बाद मैंने एक बार भी नहीं सोचा कि मुझे पाँच साल के बाद फिर से चुनाव लड़ना है। सोचा था कि हमेशा-हमेशा के लिए मुख्यमन्त्री बना रहूँगा।

इसके बाद वह कुछ भी नही बोला। मैं उसके साथ-साथ उसकी गाड़ी तक आया।

गाडी पर चढ़ने के समय मेरी ओर मुड़कर उसने कहा, "कल रात यह खबर सुनकर मेरे हृदय की गति तीव्र हो गयी थी। तुरन्त ही यह कविता याद आयी। यह बात तुमसे भी कहे जा रहा हूँ। तुम्हारा कार्य-काल पाँच वर्षों के लिए है। पाँच वर्षों के बाद तुम्हें फिर चुनाव में उतरना है। मेरी यह आखिरी कोशिश थी लेकिन तुम्हारे विरोध मे खड़े होनेवाले लोगों की कमी नही होगी। तब यह बात तुम याद रखना : "We learn from history that we do not learn from history. अच्छा चलूँ…"

•

पैंतीस

मुझे लगा था कि वह भला आदमी मुझे नोटिस देकर चला गया।

नोटिस !

मेरी राइटर्स बिल्डिंग में चिरकाल से कितनी ही नोटिसें निकल रही हैं। मेरे आने के पहले भी निकली थी और मेरे आने के बाद भी। कितनी ही बार कितनी ही नोटिसों पर मेरा सचिव मुझसे हस्ताक्षर करा गया है। उन नोटिसों को कुछ लोगो ने पढ़ा है और कुछ लोगों ने नही पढ़ा है। जिन्होंने पढ़ा है उन्हें क्या लाभ हुआ, यह कोई नही जानता और जिन लोगों ने नही पढ़ा है उन्हें क्या नुकसान पहुँचा, यह भी कोई नही जानता।

इसके अलावा और एक बात। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा होता है कि जहाँ नोटिस लिखी हुई मिलती है, उसे वह नहीं पढ़ा करता है। नोटिस को बहुत आदमी उपदेश के रूप में लेते है। जिस तरह उपदेश सुनना कोई पसन्द नहीं करता है, उसी तरह नोटिस भी कोई पढ़ना नही चाहता है। मेरी सरकार ने शहर की सड़कों पर, रेलवे स्टेशनों मे, प्लेटफार्म पर, बस और ट्रामों मे, पार्क और दीवारों पर बहुत-सी नोटिसें टाँग दी हैं। लेकिन कोई उन्हें न पढता है और न किसी ने पढ़ा ही है। न पढ़ने का कारण यह है कि वे प्रमाणित करना चाहते हैं कि वे अबोध नही हैं। तुम उपदेश दो और मैं सुनूँ ? तुम इतने बड़े महापुरुष हो और मैं इतना बड़ा मूर्ख ?

त्रैलोक्यदा ने एक बार कहा था, "यह देखो, इस कैदखाने मे इतने दिन

गुजार दिये लेकिन इस नोटिस में क्या लिखा है इसे कभी पढ़ा तक नहीं···"

जहाँ लिखा रहता है, 'कमिट नो न्यूसेंस' वहीं लोग ज्यादा 'न्यूसेंस' करते हैं। जहाँ लिखा रहता है 'धूम्रपान निषेध' वहीं ज्यादातर लोग बीड़ी पीते मिलते हैं। कारण यह है कि जिन लोगों के लिए यह नोटिस लिखी रहती है वे या तो लिखना-पढ़ना नहीं जानते या जो लिखा रहता है उसे वे पढ़ा नहीं करते हैं। इसके अतिरिक्त वर्जित काम करने के पीछे शायद एक किस्म की आत्म-रति काम करती है। पता नहीं!

भूषणदास बाबू की नोटिस की बाबत भी त्रैलोक्यदा ने बताया था। भूषणदास की उपाधि सरकार या भट्टाचार्य थी। खैर, पदवी से क्या लेना-देना। वह तो गलत परिचय है। जब कि यह गलत परिचय की कहानी नहीं है तो पदवी चाहे जो कुछ रहे, इससे कुछ आता-जाता नहीं है। यह व्यक्ति-विशेष की कहानी है और क्योंकि व्यक्ति-विशेष की कहानी है इसलिए दुनिया के हर आदमी की कहानी है और सबके लिए उपयोगी है।

भूषणदास कम तनख्वाह पानेवाला आदमी था। लड़के-बहू, पोते-पोती लेकर गृहस्थी चलाता था। कलकत्ते के पार्श्ववर्ती अंचल में उसने एक मकान बनवाया था। मकान पूरी तरह बन नहीं पाया था। दोनों लड़के नौकरी करते थे। फिर भी एक लड़की का विवाह करना बाकी ही था। पत्नी मर चुकी थी। घर-भर के झमेलों को जो सँभालता था उसका नाम था केस्टो।

दरअसल भूषण बाबू जब तक घर में रहता था केस्टो का नाम जपता रहता था। "केस्टो, तम्बाकू ले आओ। केस्टो, दुकान से आध पाव सरसों का तेल ले आओ। केस्टो, मुन्ना को तनिक घुमा-फिराकर ले आओ···"

चाहे घर के मालिक हों, चाहे दोनों बहुएँ—सबके लिए केस्टो ही सब-कुछ था। बस हुक्म करने-भर की देर थी। सबका प्यारा था तो बस केस्टो ही।

लेकिन यही सबका प्यारा एक दिन चल बसा।

घर के मालिक, लड़के और बहुओं की आँखों के सामने अँधेरा तैरने लगा। केस्टो न रहे और गृहस्थी की गाड़ी चले, यह कल्पना करना भी असम्भव था। लेकिन देखा गया कि गृहस्थी फिर ठीक से चलने लगी। राजा के चले जाने के बाद भी जिस तरह राज चलता रहता है, उसी तरह केस्टो के न रहने पर भी गृहस्थी चलने लगी। तब सारे झंझटों का बोझ बूढ़े भूषणदास बाबू के कन्धे पर पड़ गया। केस्टो के बदले भूषण बाबू ही सब हो गया। बहुएँ रसोई बनाते-बनाते दौड़ी हुई आती और कहतीं, "बाबूजी, दुकान से नमक लाना पड़ेगा। नमक बिल्कुल खत्म हो गया है···"

इसी तरह किसी दिन नमक, किसी दिन सरसों का तेल और किसी दिन मसाला। इसके अलावा बिस्तर से उठते ही बाजार जाना पड़ता था। दोपहर

में जब महरी ग्राती तो दरवाजा खोलना पड़ता था और दूध की दुकान में पंक्ति में खड़ा होना पडता था।

भूषण बाबू बिल्कुल हैरान-हैरान हो गया।

इसी तरह एक दिन सामने के तालाब के दूसरे किनारे पर बैठकर वह पोते-पोतियों को सँभाल रहा था और तम्बाकू पी रहा था। जाड़े का मौसम था। घर में बहुएँ गृहस्थी के कामों में व्यस्त थी। लड़के अपने-अपने दफ्तर जानेवाले थे। लेकिन घर के मालिक को कोई काम नही था इसीलिए वह उन्हें बाहर ले आया था और बदन में धूप लगाता हुआ हुक्के से तम्बाकू का कश ले रहा था। साथ-ही-साथ वह इस बात पर नजर रखे हुए था कि कोई तालाब के पास नहीं चला जाये।

सहसा उसके एक पोते ने कहा, "दादाजी, वह केस्टो रहा।"

केस्टो! भूषण बाबू अपने पोते की बात सुनकर अवाक् रह गया। उसने कहा, "क्या रे, केस्टो कहाँ है?"

पोते ने कहा, "वही तो पोखर के घाट की सीढी पर खड़ा है···"

बात सही थी। भूषण बाबू ने गौर से देखा। तब बहुत-से लोग घाट में नहाने के लिए पहुँच चुके थे। उपरली सीढी पर केस्टो एकाग्र मन से खड़ा था।

यह कैसे सम्भव हुआ! वह केस्टो को देखकर हैरान हो गया। उसे साफ-साफ याद है कि केस्टो मर चुका है। वह उसे श्मशान मे ले जाकर जला चुका है। फिर वह जिन्दा होकर कैसे लौट आया?

वह अपने कौतूहल को अब दबाकर नही रख सका।

चिल्लाकर पुकारा, "केस्टो, ए केस्टो, केस्टो···"

केस्टो ने दूर से उसे देखकर कहा, "आ रहा हूँ बाबू···"

और वह दौड़ता हुआ उसके पास आया। भूषण बाबू ने कहा, "क्या जी, तू कहाँ से आ गया? तू जो पिछले साल मर गया था। मैं तुझे श्मशान में ले जाकर जला चुका हूँ! तू फिर से जिन्दा होकर कैसे आ गया?"

"अब मैं जिन्दा नही हूँ हुजूर।"

"जिन्दा नही हूँ का मानी? जिन्दा नहीं है तो तू यहाँ क्या कर रहा है?"

"हुजूर, अब मैं यमराज के यहाँ नौकरी करता हूँ। यमराज के हुक्म की तामील करने के लिए ही मेरा यहाँ आना हुआ है। मैं हरिपद बाबू के उस लड़के को लेने आया हूँ। उसे ले जाने का मुझे हुक्म मिला है···"

भूषण बाबू और भी ज्यादा हैरान हो गया। उसने घाट की ओर ध्यान से देखा। सचमुच तब उसके महल्ले के हरिपद बाबू का मँझला लड़का देह मे तेल लगाकर नहाने को खड़ा था।

भूषण बाबू ने कहा, "उसे तू ले जायेगा? क्या कह रहा है तू! वह नहा-

धोकर और खा-पीकर दफ्तर जायेगा। वह जो जवान लड़का है···"

केस्टो ने कहा, "तो मैं क्या करूँ बाबू, मैं तो हुक्म का बन्दा ठहरा। मुझे जो हुक्म मिला है, उस हुक्म को तामील करने के बाद ही मैं खलास हो जाऊँगा। अभी देखिए न क्या होता है···"

बात खत्म भी नही हुई कि हरिपद बाबू का लड़का पानी में उतरते वक्त फिसलन-भरी सीढ़ी से फिसलकर बेहोश हो गया। तुरन्त ही महल्ले के लोगों की भीड़ चारों तरफ जम गयी। डॉक्टर आया, दवा आयी और उसे पकड़-धर-कर लोग घर ले गये। लेकिन तब तक सब समाप्त हो चुका था।

केस्टो ने कहा, "फिर मैं चल रहा हूँ बाबू। देर होगी तो मालिक बिगड़ने लगेंगे···"

"मालिक का मानी ?"

"जी, मालिक का मानी है मेरे स्वामी, यमराज···"

और इतना कहकर केस्टो जाने लगा। भूषण बाबू ने कहा, "अरे, थोडी देर रुक जा। तू तो यमराज के पास नौकरी करता है। फिर मेरे लिए एक काम कर दे।"

केस्टो तब जाने के लिए छटपटा रहा था। उसने कहा, "कहिए काम क्या है ?"

भूषण बाबू ने कहा, "मुझे ले जाने के लिए तुझे एक दिन हुक्म मिलेगा। लेकिन हुक्म मिलने के पहले ही मुझे सूचना मिल जानी चाहिए। कम-से-कम छह महीने का समय। छह महीने पहले सूचना मिलने से मैं सारा काम निबटा लूंगा। यह काम तू कर सकेगा बेटा ? तूने अब तक मेरे घर मे काम किया है, तुझे मैंने बहुत खिलाया-पिलाया है। यह काम मेरे लिए तू नही कर सकेगा बेटा ?"

केस्टो ने कहा, "जरूर करूँगा हुजूर। यह कौन-सा बड़ा काम है। मैं मालिक से कहूँगा तो वह तुरन्त सूचना भेज देंगे।"

और वह चला गया।

उसके बाद से भूषण बाबू निश्चिन्तता के साथ रहने लगा। अब चिन्ता की कोई बात नही थी। छह महीने का समय मिलेगा तो वह सारा काम खत्म कर लेगा। छह महीने का अरसा कोई कम नही होता है। उसी समय से भूषण बाबू को न कोई चिन्ता रही न कोई घबराहट। आराम से वह खाता-पीता था, बाजार करता था और दिन में नीद लेता था। उसका जीवन बड़ा निश्चिन्त और उद्वेगहीन हो गया। केस्टो ने ही उसके जीवन मे यह शान्ति ला दी। केस्टो की आयु लम्बी हो।

इसी तरह जब उनका समय बीत रहा था कि एक दिन दोपहर में किसी ने

उसकी बैठक के दरवाजे को खटखटाया। भूषण बाबू तब खा-पीकर दिवा-निद्रा में मग्न था। दरवाजे पर खटखटाहट होते ही उसकी नींद टूट गयी। शायद महरी बरतन माँजने आयी है। वह हर रोज इसी वक्त आया करती थी।

लेकिन उसने दरवाजा खोलकर देखा तो हैरान रह गया।

"क्या रे, तू एकाएक आ गया ?"

केस्टो ने कहा, "हुजूर आपको लेने आया हूँ। चलिए…"

भूषण बाबू की हैरानी दुगुनी हो गयी। "क्या कह रहा है ? मुझे ले जाने का तुझे हुक्म मिला है ? तुझसे कह दिया था न कि छह महीने पहले मुझे सूचना दे देना। सूचना मिलने पर मैं यहाँ का काम-काज वगैरह निबटा लूंगा। तो तू भूल गया क्या ?"

केस्टो ने कहा, "नहीं हुजूर, मैं भूला नहीं था। मैंने आपको सूचना देने के बारे में मालिक से कहा था। यह सुनकर मालिक गुस्से में आ गये और कहा —सूचना किस बात की ? मेरे दफ्तर में सूचना देने का रिवाज नहीं है। बुढ़ापा आते ही दांत टूटने लगते हैं। बाल पक जाते हैं, आँखों से कम दिखायी पड़ता है —बस यही मेरी सूचना है। यह सूचना मिलते ही काम-काज खत्म कर लेना चाहिए। दूसरी तरह की सूचना देने का मेरे दफ्तर में नियम नहीं है…"

छत्तीस

त्रैलोक्य बाबू की कहानी आज मेरे लिए भी जैसे सच साबित हुई। आज का यह विक्षोभ, ये नारे और यह पुलिस का पहरा—सब-के-सब मेरे लिए सूचना हैं। इस सूचना को देखते ही मुझे समझ लेना चाहिए कि अब मेरे जाने का वक्त आ गया है। अब मुझे काम-काजों को सहेज लेना पड़ेगा। अब विदा की बारी है।

लेकिन इस बात की स्वीकृति अन्तर्मन से जैसे मिल ही नहीं रही है। इस तरह का सजा-सजाया संसार कैसे छोड़ दूं ? जिन्दा रहूँ और मुख्यमन्त्री नहीं रहूँ—इन दो चीजों में सामंजस्य की स्थापना कैसे करूँ ?

हर विचारवान और बुद्धिमान व्यक्ति में इस प्रकार के दो व्यक्ति वास करते हैं। एक व्यक्ति कहता है, 'चलो'। दूसरा कहता है, 'रहो'। एक संसार को चाहता है और अपर अमृत को। 'बाधाओं ने बाँध लिया है, बन्धन कटता तो दुख होता'—यह बात हमारे कवि लिख गये हैं। लेकिन कवि बहुत-कुछ लिख जाते हैं, महापुरुष भी बहुत-कुछ उपदेश दे जाते हैं। लेकिन वे स्वयं भी उन उपदेशों का पालन नहीं करते। उपदेश और वचन के पालन की सारी जिम्मेदारी हमारे लिए ही है। हम यथार्थ को अस्वीकार कर अमृत पीने को

तत्पर नहीं हैं। यहाँ तक कि हम झंझटों को अपना लेते है, फिर भी हम अधिकार से वंचित होना नहीं चाहते हैं। इस अधिकार को जो छोड़ना नही चाहते हैं और सब-कुछ के अधिकारी बनकर बैठ गये हैं, उन्हें अधिकार से वंचित करने में ही हमें आनन्द की प्राप्ति होती है।

सहसा चारों ओर से तालियों की तड़तड़ाहट आयी और मेरा सपना टूट गया।

ध्यान से देखने के बाद मैंने स्वयं को सभापति के आसन पर विराजमान पाया। कब मेरे गले मे माला डाली गयी, इसका मुझे पता तक नही चला। मैंने गौर से देखा—फूलों की एक मोटी-सी माला है। उसे मैंने गले से उतारकर सामने की मेज पर रख दिया है। माला में बड़े-बड़े गुलाब है। उसके साथ राँगे के तबक। प्रारम्भ में ही गुलाब की माला मिली। इतने बड़े-बडे गुलाब मैंने आम तौर से कम ही देखे हैं।

मेरे आस-पास अनेक नामी-गरामी अफसर और नेता फुसफुसाकर बातचीत कर रहे हैं। सभा जिससे बिना बाधा-विघ्न के चल सके, इसके लिए सभी सतर्क हैं। दो लाख रुपये की जमीन पर दस या पन्द्रह रुपये लाख रुपये की सभा हो रही है, इसे क्या आसानी से नष्ट होने दिया जायेगा! अन्यथा उन लोगों की तरक्की नही होगी।

एक मुख्य नेता को मैंने धीमी आवाज में पुकारा, "सुनिए···"

मेरी पुकार सुनकर तीन-चार व्यक्ति घबराकर दौडे-दौडे आये।

"आप कुछ कह रहे है सर?"

"इस माला की कीमत क्या है?" मैंने पूछा।

वे लोग अवाक् हो गये। माला की कीमत! माला की कीमत का पता किसे है? बृहत् कार्य के लिए मामूली एक माला ऐसी कोई चीज नही है कि बड़े-बड़े महारथी उसकी कीमत को लेकर माथापच्ची करें। मामूली पैसों के लिए मुकदमा होने पर जजो को जैसे कोई फिक्र नही रहती है, उसी तरह वकील, मुहर्रिर और पेशकार भी निश्चिन्त रहते हैं। कारण यह है कि मुकदमा बड़ा हो तो रिश्वत मे मोटी रकम मिलती है और मुकदमा छोटा हो तो कम रिश्वत मिलती है। इस युग में माल के गुण को बड़ा नहीं समझा जाता है बल्कि माल से मिलनेवाले मुनाफ के लिए ही होड़ लगी रहती है। माला अगर लाख रुपये की होती तो हर किसी को इसकी कीमत मालूम रहती। जिस तरह जमीन के किराये की कीमत और पण्डाल की कीमत हर किसी को मालूम है। माला की कीमत एक से सौ रुपये तक हो सकती है। इतनी साधारण वस्तु की ओर किसी का भी ध्यान नहीं है। ध्यान बड़े की ओर है। बड़े की ओर रहकर भी जैसे नहीं है।

माला की कीमत जानने के लिए मुख्यमन्त्री सभी को पशोपेश की हालत मे डाल देगा, इस बात की किसी ने कल्पना तक नहीं की थी, अन्यथा पहले से ही माला के लिए एक फाइल तैयार कर ली जाती। मिस्टर राय ने कृषि सम्मेलन के जरूरी तथ्यों की अलग-अलग फाइलें बनवा ली हैं। लेकिन माला जैसी तुच्छ वस्तु का हिसाब-किताब कौन रखने जाये? विवाह-घर के उत्सव को आयोजित करने के लिए घर का मालिक खुद मांस-मछली के लिए माथा-पच्ची करता है लेकिन केले के पत्ते के लिए ऐसा करता है क्या? केले का पत्ता तो तुच्छ वस्तु है। वह चाहे हाराधन या केस्टोधन कोई जाकर ले आये। लेकिन मुझे मालूम है कि हर चीज का मूल्यांकन उसकी कीमत के तारतम्य पर निर्णीत होता है। कोई चीज खराब भी हो सकती है और अच्छी भी हो सकती है। लेकिन पहले उसकी कीमत की जानकारी रहनी चाहिए। पहले यह बताओ कि यह सस्ती चीज है या कीमती चीज? फिर मैं बता दूंगा कि यह अच्छी चीज है या खराब चीज।

एक बार मेरे लोक-निर्माण विभाग के मन्त्री ने खर्च का एक बिल दिया था। मेरे वित्त-सचिव ने उस बिल को पास नहीं किया। उसका कहना था कि खर्च का ब्यौरा विश्वसनीय मालूम नहीं पड़ता है।

वह बिल अन्त में मेरे पास पहुँचा।

मैं रुपयों की राशि देखकर दंग रह गया। लोक-निर्माण विभाग के मन्त्री को बुलाकर पूछा, "क्या बात है? डिनर में तीन हजार का खर्च क्यों दिखाया है?"

लोक-निर्माण विभाग के मन्त्री ने कहा, "मैंने उसे चेक करके देख लिया है सर! वह ठीक ही है। वे तीनों अमरीकी प्रतिनिधि थे। अमरीकी को तीस रुपये का डिनर नहीं खिलाया जा सकता है। और उस पर वे तीनों विश्व बैंक के सदस्य हैं। इजिप्ट या नाइजेरिया के प्रतिनिधि रहते तो सौ रुपये में ही काम निकाल लेता···"

"क्यों?" मैंने पूछा।

"आप क्या कह रहे हैं सर! कहाँ अमरीका और कहाँ नाइजेरिया। अमरीकन कितने बड़े आदमी होते हैं।"

मैंने कहा, "लेकिन चाहे गोरा हो या काला, पेट तो दोनों के बराबर ही होते हैं। और इसके सिवा तीन व्यक्तियों ने तीन हजार रुपये में वैसी कौन-सी चीज खायी? हाथी-घोड़ा खाया? सोना खाया?"

लोक-निर्माण विभाग के मन्त्री ने कहा, "काकद्वीप जैसी जगह में कुछ भी नहीं मिलता है सर! इसीलिए हर चीज नये सिरे से खरीदनी पड़ी। नये काँटे, नये चम्मच, मेजपोश। काँच का गिलास, यहाँ तक कि मेज, कुरसी वगैरह

न्यू मार्केट से खरीदना पड़ा। काकद्वीप जैसी जगह में कुछ भी नहीं मिलता है।"

इतनी देर के बाद बात मेरी समझ में आयी। जापान जाने पर जापान के लोग जापानी खाना देते हैं, चीन जाने पर चीनी चाइनीज खाना देते हैं। हिन्दुस्तान गरीब मुल्क है लेकिन इससे क्या आता-जाता है। अमरीकी हिन्दुस्तान आयेंगे तो हम उनकी खिदमत मे अमरीकी खाना ही पेश करेंगे। इसके चलते चाहे हमारे कितने ही रुपये क्यों न खर्च हो जायें। अमरीकी हिन्दुस्तान मे आयेंगे तो हम उन्हें अमरीकी गाडी ही चढ़ने के लिए देंगे। हिन्दुस्तान में बनी गाड़ी पर चढाने से हमें शर्मिन्दा होना पड़ेगा। हम लोग देखेंगे कि कौन वड़े आदमी हैं और कौन नही है। हमारे व्यवहार का तारतम्य व्यवहार पानेवाले की आर्थिक अवस्था और पद-मर्यादा को मद्दे नजर रखकर हुआ करता है।

इस बीच 'वन्दे मातरम्' गीत शुरू हो गया है।

अकस्मात् उस तरफ भयंकर आवाज करता हुआ एक बम गोला फट पड़ा। मैंने चकित न होने का वहाना किया। लेकिन तब तक सभा की अधिकाश जनता उठ चुकी थी। सोच रही है कि भागे या नहीं। उन लोगो के लिए ही मुझे दुख का अहसास होने लगा—उन लोगों के लिए जिन्हें बुलाकर सभा में लाया गया है। वे लोग मतदाता है। वे न इधर हैं न उधर। वे न तो मुझे पहचानते हैं और न उसे पहचानते है जो मेरे पहले मुख्यमन्त्री था। और न उसे ही पहचानेंगे जो मेरे बाद मुख्यमन्त्री बनेगा। मेरे मुख्यमन्त्री बनने के पहले भी वे अनेक बम-गोलों की चोटें सह चुके है। अंग्रेजो ने उनके सर को निशाना बनाकर गोलियाँ चलायी थी, अब हम लोग उन्हे बम गोलों से मारते हैं। फिर हम लोगों के बाद जो आयेंगे वे भी इन पर बम गोले बरसायेंगे। इसी तरह यह चिरन्तन काल से चला आ रहा है और आनेवाले समय मे भी ऐसा ही चलता रहेगा। पहले भी जिस तरह उन्हें कोई वचा नहीं सका था, वाद मे भी उन्हें कोई वचा नही पायेगा।

मेरे एस. डी. ओ. ने लाउडस्पीकर पर चिल्लाकर उन्हे सम्बोधित करते हुए कहा, "आप लोग मत जाइए, चुपचाप बैठे रहिए, डरने की कोई वात नही है···"

• लेकिन कौन किसकी बात सुनता है! हम लोगों की बात पर किसी-किसी को भरोसा होता है और कोई-कोई हमारी बातों से डर जाता है। हम लोग उन्हे अभय दान करते है लेकिन डरानेवालों की परवाह नही करें, ऐसी ताकत उनमे नही है। वे इतने दिनो के अनुभवो से यह बात जान गये हैं कि आज जो भयदाता है जरूरत पड़ने पर एक दिन छद्मवेश मे वे ही अभयदाता हो जायेंगे। उन लोगों को यह ज्ञान हो गया है कि असल मे वे निरीह प्राणी हैं, राजा-राजा के झगड़े मे बलिवेदी पर चढ़ने के लिए ही उनका जन्म हुआ है। वे शेक्सपियर

के नाटक 'जूलियस सीजर' के ब्रूटस और कैसियस के शतरंज के मोहरे हैं। और इसी का नाम जनता है।

इन बमों, गोलियों और बन्दूकों को हमने पहले भी देखा है और अब भी देख रहे है। कुछ दिन राजनीति में और रहा तो और भी देखूंगा। और सिर्फ राजनीति को ही दोष क्यों दिया जाये! साहित्य, विज्ञान, कला और दर्शन इनमे से किस मे राजनीति नही है? फिर भी उन सब चीजों और राजनीति के दरमियान एक बहुत बड़ा फासला है। साहित्य, दर्शन और कला में 'शाश्वत' ही सब-कुछ है लेकिन राजनीति में 'क्षण' का ही बोलबाला है। राजनीति में जो नेता मनुष्यों के मन मे आशा की जितनी ही कुहेलिका लगा सकता है और अन्त में उन्हें पेड़ पर चढ़ाकर सीढ़ी छीन ले सकता है, वह नेता अपनी गद्दी को उतना ही सुरक्षित रख सकता है। वही और बड़ा नेता हो सकता है। उसी नेता को और अधिक वोट मिलेंगे। लेकिन कला की दुनिया का नियम अलग है। वहां मत की प्रथा नही है। कलाकार भी आशा और आनन्द देता है। लेकिन उसके बाद सीढ़ी छीनकर अपनी गद्दी को सुरक्षित रखने का अभिप्राय कलाकार के लिए अपराध है। राजनीतिक और कलाकार दोनो आनन्द के शेयर खरीदते हैं। लेकिन राजनीतिक उसके लाभांश को स्वयं खाता है और कलाकार के लाभांश को आम लोग उपयोग में लाते हैं। राजनीति मे यश पुराना पड़ जाने पर तमादी होने का डर बना रहता है। लेकिन कला की दुनिया में तमादी का नियम लागू नहीं है।

एकाएक पण्डाल के एक कोने मे आग दिखायी पड़ी।

मेरा एस. डी. ओ. अब अपने को रोक नही सका। "सर, मैं एक बार देखकर आता हूं।" उसने कहा।

और मिस्टर राय खड़ा होकर देखने के लिए जाने लगा। लेकिन उसके पहले ही मेरा पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट दल-बल के साथ पहुंच चुका था।

मैंने स्थिर-प्रज्ञ होने की चेष्टा की। 'सुखेषु विगतस्पृहः, दुःखेषु अनुद्विग्न-मनाः' तो स्थिर-प्रज्ञ के लक्षण हैं।

ज्योतिर्मय सेन किसी भी स्थिति मे विचलित होनेवाले नही है। ज्योतिर्मय सेन एक दिन अंग्रेजों के कैदखाने में भी जाकर विचलित नही हुए थे। पुलिस की लाठी खाकर भी विचलित नही हुए थे। ज्योतिर्मय सेन ने ही कितनी बार अपने भाषण मे सबसे अभय होने के लिए कहा है। उन्होंने कितनी ही बार कहा था, "मैं अंग्रेजों के कैदखाने से नहीं डरता हूं और न पुलिस की बन्दूक से ही मुझे भय है। मैं एकमात्र जिस चीज से डरता हूं वह है डर। आप लोग डर को ही जीतना सीखें। तभी आप स्वतन्त्र हो सकेंगे। जंजीरों से मुक्त होने से बड़ा है डर से मुक्त होना।" ये बातें एक दिन उन्होंने ही कही थी। और

आज वह डर जायें।

आज के इस भाषण में मैंने भय की बातें लिखी है। आज ज्योतिर्मय सेन के भाषण में बहुत सारी बातें हैं। उनके सचिव ने बहुत अच्छी-अच्छी बातें लिख दी हैं। ऐसी-ऐसी बातें लिख दी है जिन्हें महारानी विक्टोरिया, ईसा मसीह, लेनिन, तथागत बुद्धदेव, रामकृष्ण परमहंसदेव और स्वामी विवेकानन्द ने अपने भाषणों में बार-बार कहा था। करोड़ों आदमियों ने ये सब बातें पहले भी सुनी हैं और आज ये लोग भी वही बातें सुनेंगे। वह कहेंगे, "आप अँधेरे से प्रकाश की ओर आयें। मृत्यु से अमृत की ओर; भय से अभय की ओर। आप अन्धकार, मृत्यु और भय पर जय प्राप्त करें। यह जय ही आपके लिए पुरस्कार बनेगी, इस भय की विजय के संग्राम से ही आपको पुनर्जन्म प्राप्त होगा!"

इन अच्छी-अच्छी बातों को सुनकर मेरे श्रोतागण जोर-जोर से तालियाँ पीटेंगे और मैं सोचूंगा कि लोग मुझे कितनी श्रद्धा की दृष्टि से देख रहे है, कितना सम्मान और प्यार दे रहे है! उसके बाद जनता को कृतार्थ कर जनसभा के अन्त मे मैं भी सभी की विगलित दृष्टि के सामने हाथ जोड़कर उनसे विदा माँगूंगा। इस लाखों रुपये के सम्मेलन की खबरें और तसवीरें दूसरे दिन इस देश के तमाम समाचार-पत्रों के मुख्य पृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों में छपेंगी। मैं सवेरे चाय पीने के वक्त उन खबरो को पढ़ूंगा और तसवीरों को देखूंगा। इसके बाद राइटर्स बिल्डिंग मे अखबारों के स्टाफ रिपोर्टर जब मुझसे मिलने आयेंगे तब मैं खुश होकर उन लोगों से कहूँगा, "आप लोगों ने बहुत अच्छी तरह से खबरें निकाली हैं।"

हमेशा से यही होता आ रहा है। मैं जब से मुख्यमन्त्री हूँ, यही करता आया हूँ। मेरे मयनाडाँगा आने के पहले जितनी कार्य-तत्परता थी, सम्मेलन के बाद जब मैं लौट जाऊँगा तब यहाँ उतना ही अँधेरा छा जायेगा। एस. डी. ओ. अपने हेड-क्वार्टर में जाकर फिर से फाइलों को उलटेगा-पुलटेगा और सफर के भत्ते का बिल यथास्थान भेजेगा। फिर बिल की निकासी के लिए राइटर्स बिल्डिंग में बार-बार तकाजे भेजेगा। शंकर फिर से अपने मण्डल कांग्रेस के दफ्तर में मजलिस जमायेगा और मुख्यमन्त्री से उसकी कितनी जान-पहचान है, इसे विस्तार के साथ परत-दर-परत चढ़ाकर दस आदमी से कहेगा। और जिनके लिए यह सम्मेलन आयोजित किया गया है, जिनकी भलाई के लिए लाखों रुपये खर्च किये गये हैं, वे नुटु और दिगम्बर जैसे लोग मयनाडाँगा के गंज में साहा बाबू की आढ़त में या बीर-चक के ईंट के भट्ठे में काम करने के लिए दौड़ेंगे या किसी बड़े आदमी की लाश जलाने के अवसर की उम्मीद मे आसमान की ओर देखकर दिन गिना करेंगे।

"गरीबों का शोषण, मन्त्री का पोषण, नहीं चलेगा, नही चलेगा..."

वही, फिर वही नारेबाजी! लेकिन इस बार नारेबाजी बहुत दूर हो रही

है। अब जरूर ही और ज्यादा पुलिसों का पहरा बिठा दिया गया है। मेरा एस. पी. बड़ा ही कुशल व्यक्ति है। इसी बीच कम-से-कम दो सौ आदमियों को जरूर ही गिरफ्तार कर लिया है। आज की सभा को वह किसी भी हालत में भंग नहीं होने देगा। और अगर भंग हो जाये तो उसकी पदावनति और तबादले को कोई रोक नहीं सकता है, यह बात वह अच्छी तरह जानता है। आजकल जो नौकरी नहीं करते हैं वे प्राणों के डर से काम करते हैं, न कि प्यार के कारण। और जो नौकरी करते हैं वे भय के कारण काम करते है, न कि भक्ति के कारण। प्राणों के भय से और भय के कारण जो काम होता है वह दर-असल काम नहीं है बल्कि जिम्मेदारी टालना है। इस जिम्मेदारी को टालनेवाले लोगों की संख्या मे इतनी वृद्धि हो गयी है कि आज काम मे इतनी त्रुटियां रहती हैं। यह शंकर, यह राय, यह मन्मथ बाबू, यह केस्टो हालदार, रथीन सिकदार सभी जिम्मेदारी टालनेवालों की जमात में हैं।

फिर एक कोने से वही पुराना नारा आ रहा है—"गरीबों का शोषण, मन्त्री का पोषण, नहीं चलेगा, नहीं चलेगा..."

अब मैं स्वयं को संयत करके नहीं रख सका। तब मुझे चिल्ला-चिल्लाकर कहने की इच्छा हुई कि तुम लोग कौन हो, मैं जानता हूँ! तुम लोगों के गले की आवाज सुनकर मैं समझ रहा हूँ कि तुम लोग इस शंकर, मन्मथ बाबू, केस्टो हालदार और रथीन सिकदार की जमात के आदमी हो। ये लोग जिस तरह खुशामद करके अपना-अपना काम निकालना चाहते हैं, तुम लोग भी उसी तरह मुझे हटाना चाहते हो। लेकिन मेरी खुशामद करने से ही क्या तुम्हारा काम निकल जायेगा और मुझे हटाने से ही क्या गरीबों को स्वर्ग मिल जायेगा? गरीब और अमीर—यह सब तो नारेबाजी है। नारे लगाना बन्द करो। जब कोई बात नारे में बदल जाती है तो उसकी क्या कोई कीमत रह जाती है? तुम लोगों ने कभी यह तो नहीं कहा कि आदमी को आदमी बनने का मौका दो। तुम लोगों ने कभी यह तो नहीं कहा कि आदमी को प्यार करने का मौका दो! तुम लोगों ने कभी यह तो नारा नहीं लगाया कि आदमी के द्वारा आदमी का कत्लेआम बन्द करो! तुम्हारी तो जरूरत इतनी ही है कि तुम मन्त्री बनना चाहते हो। इसीलिए मन्त्रियों के खिलाफ लोगों को भड़काकर तुम लोग मनुष्य जाति के शुभाकांक्षी होने का भान करते हो! लेकिन वास्तव में क्या मनुष्य के लिए तुममें प्रेम है? दरअसल तुम लोग यह नहीं जानते कि हर आदमी को पहले आदमी होना चाहिए तब कुछ और। पहले तुम आदमी नहीं बनोगे तो आदमी में जो पशुता है उसे क्योंकर नष्ट कर तुम उसमें मनुष्यता जगा सकोगे? कभी क्या तुम लोगों ने मनुष्य को अपने सगे के रूप में लिया है? पहले तुम्हें आदमी बनना पड़ेगा, तभी तुम डॉक्टर बनकर आदमी का इलाज कर सकोगे, वैज्ञानिक होकर मनुष्य को

ज्ञान दे सकोगे। तुम लोग डॉक्टर होना चाहते हो, वैज्ञानिक होना चाहते हो, मन्त्री होना चाहते हो, इंजीनियर होना चाहते हो, बहुत-कुछ होना चाहते हो। लेकिन यह सब-कुछ मनुष्य की मनुष्यता के विकास के लिए ही है। लेकिन वह आदमी कहाँ है? पहले आदमी का निर्माण करो। चारों तरफ तुम्हारे मतलब की बातों की भीड़ लगी है। लेकिन प्यार की बातें कहाँ हैं? तुम केवल क्षण की बातें करते हो, शाश्वत की बातें कहाँ है? तुम केवल समाज की बातें करते हो, व्यक्ति की बातें कहाँ है? शान्ति की बातें करने से साधुता का आदर्श क्या असत्य साबित होता है? मेघ का जन्म ध्वंस के लिए होता है लेकिन सूर्य क्यों जन्म लेता है? तीन सौ करोड़ वर्षों से सूय ने अपने अस्तित्व को कैसे बचाये रखा है, यह मालूम है? स्वाभाविक नियम से उसका विनाश क्यों नहीं हुआ? विश्व की सृष्टि के प्रथम दिन से ही वह किस तरह एक ही हिसाब से प्रकाश और उत्ताप दे रहा है? इसका कारण यह है कि सूर्य में ही सृष्टि और संहार एकसाथ काम करते आ रहे हैं। एक ओर हिलियम तैयार होता है और दूसरी ओर एलेक्ट्रोन और न्यूट्रन बाहर निकलते रहते हैं। मनुष्य के चरित्र में भी यही बात रहती है: जिसको ग्रहण करना चाहिए उसे ग्रहण करता है और जो कुछ छोड़ना चाहिए उसे छोड़ देता है। इस ग्रहण और वर्जन के समन्वय की साधना से जो जीवन बनता है, उसी को ही महाजीवन कहते है। इस महाजीवन की साधना जिससे सरल हो, इसी के लिए ही तो साहित्य, कला, विज्ञान और समाज है।

ज्योतिर्मय सेन को लगा कि सभा के लोग एक क्षण के लिए अदृश्य हो गये। उनके सामने कुछ भी नही है, कोई भी नही है। अनादि काल और अनागत भविष्य जैसे उनकी आँखों के सामने उद्घाटित हो गये: कब एक दिन वह शिशु थे, कब बैरिस्टर सेन के घर की चहारदीवारी मे कैदी के रूप में थे और कब सारे बन्धनों को तोड़कर बाहर निकल आये थे; कब स्वयं को जानने की प्रक्रिया में उन्होंने सबको जाना था। सब-कुछ जैसे एक पल में उन्हें लीलने के लिए पहुँच गये! मुझे लगा, मैं स्वयं को विभिन्नताओं में कहाँ प्रसारित कर सका! पहले भी मैं इकाई था, आज भी इकाई ही हूँ। यह अनेकता के सम्मेलन में भी विशिष्ट बनकर जीवित रहने जैसा है। लेकिन 'मैं' को प्रसारित किये बिना मेरी कोई उपयोगिता नही है। मैंने व्यक्ति-विशेष बनकर जीवन व्यतीत कर दिया! स्वयं को समष्टि मे व्याप्त किये बगैर मेरा अस्तित्व कोई मानी नहीं रखता है।

चारों ओर जैसे आँधी चल रही है। एक-एक बमगोला फटता है और पूरा मंच थर-थर काँपने लगता है। लेकिन नही, मैं हार नही मानूँगा। मैं विच्छिन्न नहीं हूँगा, विषाद को अपने पास फटकने नही दूँगा, मैं निस्संग नही होने जा रहा हूँ। मैं अगर जिन्दा रहूँगा तो तुम लोगों के साथ जिन्दा रहूँगा। अगर मेरी मृत्यु हो तो वह केवल मेरी दैहिक मृत्यु ही हो, मेरी अदृश्य अन्तरात्मा तुम लोगों के

बीच वर्तमान रहे। एक दिन मैंने घर इसलिए छोड़ा था कि मुझे अपने घर के बनिस्बत बहुत बड़ा घर मिले—बहुत बड़े घर का आश्रय प्राप्त हो। वह घर मुझे प्राप्त हो चुका है। अपने इस देश में, इस देश के निवासियों में, देश के भूत, भविष्य और वर्तमान में मुझे अपनी अस्मिता का सन्धान मिला है। मैंने अपने व्यक्ति-बिन्दु को विश्व-बिन्दु में परिणत कर दिया है। अभी इस कृषि सम्मेलन में आने पर मेरा विश्व-बिन्दु से साक्षात्कार हुआ है। तुम लोग मुझे त्याग भी दोगे तो मैं तुम लोगों को त्याग नहीं पाऊँगा। और इसकी वजह यह है कि मैं अगर तुम लोगों को त्यागता हूँ तो मुझे अपनी अस्मिता को भी त्यागना पड़ेगा।

सहसा तालियों की गड़गड़ाहट हुई तो ज्योतिर्मय सेन की चेतना जैसे वापस आयी।

"वाह अद्‌भुत ! अद्‌भुत···"

मेरे निकट एस. डी. ओ. था। वह अपने-आप बोल उठा। मैंने मिस्टर राय की ओर ध्यान से देखा। उसने कहा, "आपका भाषण अद्‌भुत लगा सर ! देख रहे हैं न, सभी कितने ख़ामोश है। किसी ने जरा-सा भी शोर-गुल नहीं मचाया।"

मैं चौंक पड़ा। "मैंने भाषण दिया है ?"

"हाँ, सर !"

"लेकिन थोड़ी देर पहले बम फटने की जो आवाज सुनायी पड़ी थी।"

मिस्टर राय ने कहा, "नहीं सर, वह तो पुलिस ने अश्रुगैस छोड़ा था। लगभग पचास व्यक्तियों की जब गिरफ्तारी हो गयी तो फिर किसी ने चूँ तक नहीं किया। सब ठण्डे पड़ गये हैं···"

मैं और अधिक विस्मय में डूबने-उतराने लगा। भाषण भी शायद एक तरह का नशा है। शराब के नशे की तरह यह भी आदमी को इस तरह धुत बना दे सकता है, यह मुझे मालूम नहीं था। नशे की झोंक में मुझे कुछ पता ही नहीं चला।

मैंने कहा, "देखिएगा, गोली नहीं चले···"

"नहीं सर, गोली चलाने के पहले आपसे अनुमति ले लूँगा।"

"हाँ, गोली चलाने का मतलब ही है हार स्वीकार कर लेना। गोली चलाने से विरोधी दल को लाभ पहुँचेगा।"

इसके बाद सभा समाप्त होने की बात है। मेरे एस. डी. ओ. ने कहा, "जरा और बैठें सर, और एक मिनट···"

समझ नहीं सका, लेकिन देखा कि सामने के दर्शकों में से एक आदमी मेरी ओर आ रहा है। मैं चौंक पड़ा। यह तो नुटू ही है। तब नुटू क्या मेरे सामने ही अब तक बैठा हुआ था। ठीक पहले का नुटू ही है। तब हाँ, काफी बूढ़ा हो

गया है। नहीं, अब उसके पैर में कोई ऐब नहीं है। बिल्कुल सीधा खड़ा होकर मेरी ओर चला आ रहा है। सर के सारे बाल पक गये है। मेरे भी बाल पक चुके हैं। लेकिन नुटु के सर के बाल मेरे बालों से ज्यादा पक गये हैं। मेरी ओर हाथ जोड़कर वह अभिवादन करने की मुद्रा में है। मेरे प्रति कृतज्ञता प्रकट कर रहा है? या मेरा स्वागत कर रहा है? मै मुख्यमन्त्री बना हूँ इसलिए वह आनन्दित है। दस आदमियों के सामने वह माथा ऊँचा करके कह सकेगा कि आज के मुख्यमन्त्री मेरे दोस्त हैं। यह ज्योतिर्मय सेन एक दिन मयनाडाँगा आया था और हमलोगों ने एक साथ आढ़त से पुआल की खेप ली थी। उसने मेरे साथ वीरचक के ईंट के भट्ठे में सर पर ईंट रखकर ढोयी थी। मेरे घर में हरी मिर्च के साथ पानीदार बासी भात खाया था। अब मुख्यमन्त्री हो जाने से मुझे भले ही पहचान नही सके, लेकिन एक जमाने में हम दोनों में गहरी दोस्ती थी। मैं ज्योति के घर पर गया था। कलकत्ते मे उन लोगों का कितना विशाल घर था, उसमे कितने कमरे थे! मयनाडाँगा के बाबू लोगों से भी उसका मकान बड़ा था।

आओ नुटु, आओ। आज तुम जिसे देख रहे हो वह दरअसल वही पुराना ज्योति ही है। मैं पहले के 'मैं' को भूला नही हूँ और इसीलिए तुमको भी नही भूला हूँ। आज जो मैं मयनाडाँगा मे सभा करने आया हूँ इसके पीछे एकमात्र उद्देश्य है तुमसे मिलना। हो सकता है कि आज तुम्हारे घर पर नही जा सकूँ, तुम्हारे घर की चौखट पर बैठकर पानीदार बासी भात नहीं खा सकूँ और तुमसे एकान्त मे बातचीत नही कर सकूँ। आज मेरा एस. डी. ओ. और मेरा एस. पी. मुझे तुमसे पहले की तरह खुलकर मिलने नही देंगे। लेकिन मैं पहले का ही 'मै' हूँ। मैंने उन दिनों के मयनाडाँगा के जीवन को पार कर और भी अधिक फासले के रास्ते को छान मारा है। बहुत-कुछ देखने-सुनने के बाद फिर से तुम्हारे ही पास मयनाडाँगा लौट आया हूँ। बहुत ख्याति, बहुत प्रतिष्ठा और बहुत सम्मान पाकर मैंने अनुभव किया है कि ख्याति, प्रतिष्ठा और सम्मान कुछ भी नहीं है। उन सबों से मन को तृप्ति नही मिलती है। लेकिन फिर भी ख्याति, प्रतिष्ठा और सम्मान के लिए लड़ाई लड़ रहा हूँ। मणि-माला की तरह वे सब अभी तक मेरे गले में झूल रहे है। वह हार गले में पहनता हूँ तो तकलीफ होती है और खोलने से भी पीड़ा पहुँचती है। मैं क्या करूँ? तुमसे बातचीत करने का मन करता है लेकिन अन्तरंगता के सूत्र में बँधने से संकोच रोक लेता है और मुझे विलगाव की स्थिति में छोड़ जाता है। यह ठीक विवेकानन्द के द्वारा सुनायी गयी कहानी की तरह है। वह कहानी तो तुम्हें सुनायी थी न—वही तातार सैनिक की कहानी! न तो भागने ही देगा और बन्दी बनने से भी इन्कार करेगा। इसी का नाम संसार है नुटु! इसीलिए तो

मैंने तुम्हें बताया था कि मैं ही अपना सबसे बड़ा दुश्मन हूँ और मैं ही अपना सबसे बड़ा दोस्त। रामकृष्ण देव कहा करते थे, अण्डे में जब तक बच्चा बड़ा नही हो जाता है, चिड़िया तब तक चोंच से ठोकर नही मारती है। बरगद के पेड़ को काटने के समय जब सबकुछ कट जाता है तो थोड़ा अलग हटकर खड़ा होना पड़ता है। तब वह पेड़ खुद ही चरमराकर टूट जाता है। लेकिन मैं अलग हटकर खड़ा नही हो सका। जिस दिन अलग हटकर खड़ा हो जाऊँगा उस दिन मुझमें और तुममें बाधा की दूरी नही रह जायेगी। तब मैं मुख्यमन्त्री नही रहूँगा। तब मैं तुम्हारी ही तरह आदमी बन जाऊँगा। और वास्तव में तुम्हारे लिए डरना स्वाभाविक ही है। मिलन होता है आदमी और आदमी में, मुख्यमन्त्री तो आदमी नही रह जाता है। इसलिए आदमी और मुख्यमन्त्री में मिलन कैसे हो सकता है ?

इतनी देर के बाद नुटु के चेहरे पर हँसी की एक हल्की रेखा उभरी है। इस हँसी के साथ तनिक भय भी घुला-मिला है, जिस तरह कि राशन के चावल के साथ कंकड़ रहा करते हैं।

मैं अब तक दार्शनिक बन गया था। उदार हो गया था। मैं जो मुख्यमन्त्री हूँ, यह भूल ही गया था। वह आकर मेरे पैरों की धूल लेने के लिए अपना माथा झुका ही रहा था कि मैंने उसे गले से लगा लिया। "छिः नुटु, छिः-छिः···" मैंने कहा।

मेरी बगल में मिस्टर राय था। उसने कहा, "सर, यह आदमी यहाँ की कृषि-प्रतियोगिता में अव्वल आया है। इसने एक बीघा जमीन में पैंतीस मन धान उपजाया है।"

मैं नुटु की ओर देखकर अवाक् रह गया। नुटु की हालत इतनी अच्छी हो गयी है! एक बीघा जमीन में पैंतीस मन धान! एक दिन यही नुटु बीरचक के ईंट के भट्ठे में सर पर ईंट ढोता था, साहा बाबू की आढ़त से पुआल की खेप स्टेशन ले जाता था। तब उसके पास वित्ता-भर भी जमीन नही थी। आज जो नुटु की हालत सुधर गयी है, इस उपलब्धि के पीछे मेरी भी थोड़ी-बहुत भूमिका रही है। आज मै इस राज्य का मुख्यमन्त्री हूँ। मेरे शासन-काल में ही इस राज्य के किसानों की उन्नति हुई है। इस राज्य के कम-से-कम एक व्यक्ति ने एक बीघा जमीन में पैंतीस मन धान पैदा किया है। यह बात सोचते ही मैं आनन्दित हो उठा।

तब मेरे आसपास के लोग खड़े-खड़े मेरे मुँह की ओर ताक रहे थे। उन लोगों के चेहरे पर ऐसा भाव तैर रहा था जैसे मैंने ही पैंतीस मन धान की फसल पैदा की है।

मन्मथ बाबू ने कहा, "यह सब आपके कारण ही सम्भव हुआ है सर!"

केस्टो हालदार और रथीन सिकदार ने भी यही राय जाहिर की। ये लोग सभी मेरे इर्द-गिर्द खड़े होकर मेरी खुशामद कर रहे हैं। लेकिन कितने आश्चर्य की बात है! तब मुझे ऐसा नहीं लगा कि वे मेरी खुशामद कर रहे हैं। मुझे लगा कि यह मेरा प्राप्य है। लगा कि एक बार ही सही, लेकिन वे सच-सच बोले हैं।

एस. डी. ओ. मिस्टर राय ने हलका चित्र उकेरा हुआ पीतल का एक पात्र मेरे हाथ में थमा दिया। "सर, इसे आप अपने हाथों से इसे दें।"

मैं उस पात्र को देखने लगा। बड़ी ही सुन्दर चित्रकला है। नुटु इसे घर की दीवार पर टाँगकर रखेगा। ज्योति के हाथों मिला है इसलिए यह उसके गौरव को बढ़ायेगा। एकाएक मेरी दृष्टि पड़ी—पीतल के हल की तसवीर के नीचे लिखा है—'भोलाइ मण्डल'।

मैंने पूछा, "यहाँ भोलाइ मण्डल क्यों लिखा हुआ है?"

मिस्टर राय ने कहा, "सर, इस किसान का नाम भोलाइ मण्डल है। इसके पास काफी जगह-जमीन है—लगभग तीन सौ बीघा जमीन का यह मालिक है। इसका ससुर वजीर मण्डल यहाँ का एक बहुत बड़ा जोतदार है।"

पूरी बात सुनने के पहले ही मेरे हाथ से वह पात्र छूटकर मंच पर गिर पड़ा। मैं स्तम्भित हो गया। फिर क्या मैंने अपने सामने भूत देखा! मैं क्या सचमुच नशे में धुत हूँ! मैंने क्या गलत सुना है! नहीं, अब तक मैंने जो कुछ भी देखा वह सब सपना था! यह जो मेरे सामने मन्मथ बाबू, शंकर, केस्टो हालदार, रथीन सिकदार और मिस्टर राय खड़े हैं सबके-सब नुटु की तरह ही असत्य हैं। छिः-छिः, फिर क्या उम्र बढ़ने के कारण मेरा दिमाग गड़बड़ा गया है।

सभी ने एकसाथ पीतल के उस पात्र को उठाकर मेरे हाथ में फिर से रख दिया। मैंने किसी तरह उसे भोलाइ मण्डल की ओर बढ़ाकर राहत की साँस ली।

मैंने कहा, "नुटु के बारे मे क्या हुआ? नुटु बिहारी हालदार के बारे में? मैंने मयनाडाँगा के दक्षिणपाड़ा जाकर जिसे बुला लाने को कहा था।"

मिस्टर राय ने कहा, "मैं दक्षिणपाड़ा गया था सर! मैं खुद गया था। नुटु बिहारी नहीं, बल्कि उसका नाम था नटवर हालदार। लेकिन वह तो नहीं है सर..."

"ओ, हाँ-हाँ, वह वहाँ नहीं है? वहाँ नहीं है तो अब जहाँ है वहाँ से बुलाकर आप नहीं ला सके? मैं तो उसी से मिलने के लिए यहाँ आया हूँ।"

"लेकिन जाने पर पता चला कि वह मर गया है सर।"

"मर गया है?"

"हाँ सर ! नटवर हालदार पिछले साल मर चुका है। उसकी पत्नी, बाल-बच्चे कोई नहीं हैं। वे भी मर चुके हैं।"

मैं कुछ देर तक खामोश रहा। फिर पूछा, "उसकी मृत्यु कैसे हुई?"

मिस्टर राय ने कहा, "पिछले साल यहाँ जो अनावृष्टि हुई थी, उस अनावृष्टि में बहुत-से आदमी मर गये थे।"

"मैंने तो उस समय टेस्ट रिलीफ देने का आर्डर दिया था।"

मिस्टर राय ने कहा, "टेस्ट रिलीफ के लिए सात लाख रुपये दिये गये थे, मगर उसका आधा पेमास्टरों ने मार लिया। उसी के लिए चावल के गोदाम लूटे गये। और उसी लूट में नटवर हालदार पुलिस की गोली से मारा गया।"

मैं चौंक पड़ा। "पुलिस ने किसके हुक्म से गोली चलायी थी?"

"आपने ही गोली चलाने का आर्डर दिया था सर ! मैंने यहाँ से आपको राइटर्स बिल्डिंग में फोन किया था और पूछा था कि क्या करूँ। आपने ही गोली चलाने का आर्डर दिया था..."

यह बात सुनकर कुछ क्षणों के लिए मैं स्तम्भित रह गया। मुझे लगा, इतनी देर के बाद मैंने अपने वास्तविक 'मैं' को देखा। मैंने स्वयं से साक्षात्कार किया। मेरा यह आत्म-साक्षात्कार बड़ा ही मर्मवेधी है। मैंने देखा कि यह 'मैं' ही इतने दिनों तक मुझे मनुष्य-समाज से अलगाकर रखे हुए है। इस मैं ने ही सभी के 'मैं' से मिलने में बाधा डाली है। समझ गया कि तमाम नदियाँ गंगा नदी क्यों नहीं हैं, तमाम पर्वत हिमालय क्यों नहीं हैं, तमाम कवि कालिदास क्यों नहीं हैं, तमाम दार्शनिक कपिल क्यों नहीं हैं, तमाम मृग कस्तूरी-मृग क्यों नहीं हैं और तमाम आदमी आदमी क्यों नहीं हैं। ठीक उसी तरह तमाम मैं 'मैं' क्यों नहीं हैं। तुम्हारे भीतर का मैं 'मैं' को देख नहीं पाता है, इसीलिए 'उसमें' भी 'मैं' अनुपस्थित रहता है। इसलिए 'मैं' कैसे 'तुम्हारा' हूँगा 'उसका' हूँगा, 'सभी' का हूँगा ? सभी के 'मैं' से मिलकर एकाकार हूँगा; तादात्म्य हूँगा ? और इतने दिनों तक अगर यह नहीं हो सका हूँ तो मेरा यह मुख्यमन्त्री होना असत्य है, मेरा तमाम त्याग असत्य है, मेरा समस्त सम्मान असत्य है और लाखों रुपये खर्च कर जो सम्मेलन किया गया है, वह भी असत्य है। और आज जो फूलों की माला दी गयी थी ? उस माला को गले में लटकाये मैं घर जा रहा हूँ ?

मुझे सारी बातें याद आयीं। कब मयनाडांगा में अनावृष्टि हुई थी, कब अनाज के लिए दंगा हुआ था। वह कितने दिन पहले हो चुका है। लेकिन उस दिन मुझे क्या यह मालूम था कि जिस गोली को चलाने के लिए मैंने पुलिस को आदेश दिया था, वही गोली इतने दिनों के बाद मेरी ही छाती को छलनी कर देगी ! मेरी इस पीड़ा को कौन समझेगा ! इसके लिए मैं किसके पास

शिकवा-शिकायत करूँ, किसके पास अर्जी भेजूँ। मेरे इस सम्मान के लिए कौन प्रायश्चित करेगा। मेरे पहले के मुख्यमन्त्री की अन्तिम बात मेरे कानों में बार-बार गूँजने लगी—We learn from history that we do not learn from history. We learn from history."

शंकर की बात सुनकर मेरी चेतना एकाएक लौट आयी। "सर, आपने फूलों की इस माला की कीमत पूछी थी न ?"

मैंने हतप्रभ की तरह उसके चेहरे की ओर ध्यान से देखा।

"इसकी कीमत डेढ़ सौ रुपये है सर ! न्यू मार्केट की सबसे अच्छी दुकान से खरीदकर ले आया था। लेकिन एक भी पैसा नहीं लिया था। उसने कहा था, जब कि आप मुख्यमन्त्री के लिए माला ले रहे हैं तो मैं इसके लिए कीमत क्यों लूं ? इससे बेहतर है कि आप मुझे मुख्यमन्त्रीजी से एक प्रमाण-पत्र दिला दें। मैं उसे फ्रेम में मँढ़वाकर अपनी दुकान में टँगवा दूंगा।"

इतनी देर तक ज्योतिर्मय सेन जिस चीज को रोके हुए थे, शंकर की बात कानों में पहुँचते ही उसे रोककर नहीं रख सके। उनकी आँखों से टप-टप कर आँसू की बूंदें लुढ़कने लगी। आँसू की बूंदें अवश्य ही लुढ़कने लगी लेकिन वे आँसू की बूंदें नुटु के शोक में नहीं, बल्कि अपने 'मैं' के शोक में चू रही थीं।

●●●

श्री जे. बगरह[illegible], श्री [illegible]चन्द्र शर्मा

श्री हरिशंकर श[illegible] [illegible]म्

श्री याज्ञवल्क्य [illegible] [illegible]न में भेंट

द्वारा :- [illegible] बगरहट्टा

[illegible] बगरहट्टा

[illegible]मोहन बगरहट्टा